नयी कविता मे मूल्य-बोध

अभिनव प्रकाशन

शशि सहगल

अप्र

अभिनव प्रकाशन

२१-ए, दरियागज, दिल्ली-११०००६

अपने सहयात्री के नाम—

औपचारिकता

नयी कविता को मिसइन्टरप्रेट करने में हमारे प्रतिष्ठित आलोचकों का योगदान काफी रहा है और इस महत्वपूर्ण कार्य मे कुछ प्रतिष्ठित कवियो ने भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है (नाम लेने से क्या होगा ?) यही कारण रहा कि नयी कविता के महत्वपूर्ण मुद्दो को साफ करने के लिए नए कवियो (नयी कविता के कवियो) को स्वय सामने आना पडा। अपने काव्य-इतिहास मे यह पहला अवसर था, जब अपनी कविता को समझने की शक्ति देने के लिए कवियो का 'कवि' आलोचक भी बना, सृजनकर्ता भी हुआ और व्याख्याता भी यदि वह ऐसा न करता तो सम्भवत नयी कविता की ताकत भी पहचान मे न आती, लेकिन अभी भी क्या ?

नयी कविता बहु आयामी है। उसके सभी आयाम खुल गए हो अभी ऐसा दावा करना थोड़ी जल्दबाजी लगती है क्योकि हमने आज तक नयी कविता की बात तो की है, लेकिन नयी कविता के एक एक रचनाकार को लेकर बात करना अभी शेष है, अज्ञेय हो या मुक्तिबोध, राजकमल चौधरी हो या धूमिल, रघुवीर सहाय हो या धर्मवीर भारती, साही हो या नरेश मेहता तथा अन्य अनेक शक्तिवान कवियो के सृजन का मूल्यांकन अभी नही हुआ। शायद अभी समय न आया हो या यह कि किसी मे अभी इतना साहस ही नही आ पाया कि हा अज्ञेय और मुक्तिबोध पर कुछ काम जरूर नजर आता है। स्तर की बात उठाना तो धृष्ठता होगी।

मैंने भी इस जोखिम से बचकर ही यह काम किया है। 'मूल्य बोध' की दुहाई तो कई दिनो से सुनाई दे रही थी, लेकिन मूल्यबोध है क्या ? नयी कविता मे कहां है ? इसका विस्तृत विश्लेषण नहीं हुआ था। सो एक जोखिम से बचकर दूसरा जोखिम का काम लिया। पहला-पहला काम है आलोचना का इसलिए इसमे गम्भीरता तो होगी ही (बडी मेहनत जो की है) सम्पूर्ण मूल्य-प्रसग मे नयी कविता की बात को मैंने अपने ढग से सोचा और कहा है। हो सकता है आप इसे पसन्द न करें लेकिन ना पसन्द करने का कारण आपको जरूर खोजना होगा।

जिन महानुभावो की पुस्तकों से मैंने सहयोग लिया है, उनके प्रति आभार *व्यक्त करने की सभ्यता का निर्वाह करना ही होगा। पर मैं विशेष रूप से आभारी*

उन कवियों की हूँ, जिनके कारण यह कार्य सम्भव हो सका और आभार व्यक्त करने की धृष्ठता है अपने पति के प्रति, जिनके कारण यह कार्य सम्पन्न हो सका तथा धन्यवाद श्री रणवीर सिंह चौहान का जिनके कारण यह काम आप तक पहुँच रहा है। कृतज्ञ होऊँगी उन लोगों के प्रति जो इस ग्रन्थ पर कुछ प्रश्नचिन्ह लगाकर मुझे दोबारा से सोचने के लिए मजबूर करेंगे। इतना ही—

५ दिसम्बर, १९७५

माता सुन्दरी कालिज शशि सहगल
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
माता सुन्दरी लेन, राउज एवेन्यू,
नयी दिल्ली।

विषय-सूची

नयी कविता और मूल्य वोध के आयाम	७६-१४९

(क) सामाजिक मूल्य—नयी कविता पर असामाजिकता का आक्षेप और निराकरण, सामाजिक दायित्व और रूढ़ियां, संयुक्त-परिवार व्यवस्था का विघटन, सामाजिक अन्तर्विरोध, सामाजिक संवधों में परिवर्तन के सन्दर्भ में वदले हुए सामाजिक मूल्य, प्रगतिशीलता-सामाजिक सन्दर्भों में, श्लीलता-अश्लीलता, आधुनिक वोध वनाम आधुनिकता।

(ख) नैतिक मूल्य—नैतिकता का अर्थ, नैतिक मूल्यों का विकास, नैतिक निषेध : नैतिक अन्तर्विरोध तथा नयी कविता, फ्रायड, एडलर, युंग आदि का प्रभाव : नैतिकता का मनोवैज्ञानिक पक्ष, राजनीति, युद्ध और नैतिक मूल्य, सौन्दर्य और नयी कविता।

(ग) आर्थिक मूल्य—अर्थ-संस्कृति और अर्थ-व्यवस्था, मार्क्सवाद, साम्यवाद, पूंजीवाद, समाजवाद और भारतीय मिश्रित अर्थ व्यवस्था, अर्थ-प्रधान व्यवस्था की स्थापना और आर्थिक शोषण, आर्थिक मूल्यों तथा मानवीय मूल्यों की टकराहट।

(घ) राजनीतिक मूल्य—स्वतन्त्रता पूर्व की राजनीति और राजनीतिक मूल्य, स्वतन्त्रता-आन्दोलन, स्वतन्त्रता और राजनीतिक दलों का उदय, आम चुनाव, सत्ता लोलुपता और राजनीति के आदर्शों से पलायन, चीनी आक्रमण, मोह-भंग की स्थिति, पाकिस्तानी आक्रमण, राजनीतिक अस्थिरता, संयुक्त मोर्चों का गठन और दल-वदल की राजनीति, राजनीतिक अस्थिरता से स्थिरता की ओर तथा व्यापक राजनीतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास।

(च) सांस्कृतिक और दार्शनिक मूल्य--सांस्कृतिक और दार्शनिक मूल्यों से अभिप्राय, भारतीय सांस्कृति-विदेशी संस्कृति का प्रभाव और नयी कविता, नये सांस्कृतिक मूल्यों का उदय और नयी कविता, भारतीय दर्शन और नयी कविता की उपेक्षित दृष्टि, विदेशी प्रभाव, अस्तित्ववाद वनाम व्यक्तिनिष्ठ चेतना, क्षणवाद, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, अन्य दर्शन, नयी कविता के अपने दार्शनिक मूल्य।

(छ) सौन्दर्यगत मूल्य अर्थात् नयी कविता का सौन्दर्य वोध, सौन्दर्य सम्वन्धी विभिन्न मान्यताएं-भारतीय एवं पाश्चात्य, नयी कविता के सौन्दर्य के मूल्य वनाम सौन्दर्यवोध, संस्कार और सौन्दर्य-वोध की समस्या, नयी कविता का विम्व-विधान और सौदर्न्यवोध।

□

मूल्य-विचार

मूल्य—परिभाषा और स्वरूप

नयी कविता के दौर मे कवियो और समीक्षको ने सम्भवत पहली बार कविता के सदर्भ मे बदलते हुए मूल्यों और प्रतिमानो की चर्चा की है। वस्तुत मूल्य अपने कलागत सदर्भों मे या यों कहें कि मूल्यो का प्रभाव-क्षेत्र अपने कलागत सदर्भों मे, कला-प्रतिमानो के क्षेत्र मे जिस जागरूकता को उत्तेजित करते हैं, परिवर्तित मूल्यो की चेतना उसी के परिणामस्वरूप रचनात्मक आधारो पर प्रतिष्ठित होती है। नयी कविता की पूरी 'रचनाभूमि' प्रचलित और स्थापित मूल्यो का अस्वीकार और निषेध मानी जाती रही है। इस प्रसग मे अनिवार्य यह हो जाता है कि इस समग्र मूल्य-प्रसग मे 'मूल्यो' के पारिभाषिक स्रोत का परीक्षण प्रस्तुत किया जाए।

'मूल्य' अपने आप मे क्या है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए यह न भूलना होगा कि जब 'मूल्यों' की बात करते हैं तो सहज ही नीतिशास्त्र (Ethics) की सीमाओ मे प्रवेश कर जाते हैं।

'मूल्य' शब्द अर्थशास्त्र से होकर आया है और अर्थशास्त्र मे, "इसका प्रयोग (अ) प्रचलित मूल्य, अर्थात् किसी वस्तु की मानवीय आवश्यकता अथवा इच्छा-पूर्ति की क्षमता; और (आ) विनिमय दर अथवा अन्य वस्तुओ से विनिमय से प्राप्त किसी वस्तु के मान के लिए किया जाता है, जैसे आधुनिक समय मे मुद्रा के रूप मे सम्बोधित किया जाता है और वस्तु के मूल्य के रूप मे माना जाता है।"[1]

---

1 " It is used for (a) value in use, that is, the capacity of an object to satisfy a human need or desire, and (b) value in exchange or the amount of one commodity that can be obtained in exchange for another, which in modern times is generally reckoned in terms of money and expressed as the price of the commodity."

—An Introduction of Ethics by William Lilie, p 208

अर्थशास्त्र का यह शब्द जब मानवीय सम्वेदनाओं के गहन स्तरों के साथ जुड़ता है तो मानवीय सम्वेदनाओं की तरह उसकी सीमाएं भी फैल जाती हैं। यहीं पर यह प्रश्न उठता है कि क्या किसी वस्तु को उसके अस्तित्व के कारण मूल्यवान मान लें डा० जगदीश गुप्त के शब्दो मे—'कोई भी वस्तु अपने अस्तित्व के कारण ही मूल्यवान नहीं मानी जा सकती, क्योंकि मूल्य-बोध अस्तित्व-बोध से भिन्न है।'[1] लेकिन इसका अर्थ यह नही कि मूल्य-बोध अस्तित्व-बोध का निषेध करता है। सही अर्थों में तो यह अस्तित्व-बोध का एक विशिष्ट स्वीकार ही है, लेकिन कोई वस्तु अस्तित्व रखने पर किसी संदर्भ-विशेष मे मूल्यहीन हो सकती है।

मानव को उसके पूर्ण अस्तित्व मे स्वीकार करके ही 'मूल्य' की कल्पना संभव हो पाती है, क्योंकि 'मूल्य' की स्थिति किसी वस्तु मे न होकर मानव में है। मानव ही मूल्यों का निर्धारण या संचालन करता है और उसी की आवश्यकताओं के अनुरूप मूल्य बनते या बिगड़ते हैं। 'मूल्य' (Value) का तात्त्विक विश्लेषण करते हुए पाश्चात्य दार्शनिकों ने स्पष्ट निर्देश किया है कि आन्तरिक मूल्य (Intrinsic value) वस्तु-आश्रित न होकर मानव की इच्छा, आकांक्षा या परितोष पर आश्रित रहता है।[2] इस सम्बन्ध मे निम्न मत द्रष्टव्य है—

'हमें मूल्य-मान वस्तु में नही, वल्कि उससे उद्भूत (प्रदत्त) इच्छाओं और उनकी पूर्ति के रूप में देखना होगा।'[3]

कोई भी वस्तु अपने-आपमें मूल्यवान नही होती, वल्कि वस्तु से मिलने वाला सुख या आनन्द अपने-आपमे एक मूल्य होता है। 'मूल्य' कोई मूर्त वस्तु नही जिसे हम देख सकें, वल्कि 'मूल्य' अपने में एक धारणा (Concept) है, एक अनुभव है। कोई भी वस्तु मूल्यवान हो सकती है, लेकिन वह अपने में मूल्य नहीं हो सकती। मूल्य अमूर्त है, जिसे व्यक्ति भोगता है, झेलता है और जिसे वह अनुभव के स्तर पर जीता है। यह अनुभव इन्द्रिय-गम्य न होकर आत्मा या कल्पना का अनुभव होता है, जो किसी भी वस्तु को मूल्यवान बना देता है। 'मूल्य' का अस्तित्व व्यक्ति की इच्छा पर आधारित होता है। विचारों तथा इच्छाओं में वैचित्र्य तथा मानव-मन की जटिलता तथा उससे उत्पन्न संघर्ष के समान मूल्यों में भी संघर्ष की स्थिति रहती है। 'हर मान्यता की अस्वीकृति के बाद अपने अनुभव को स्वीकार करने के सिवा और कोई चारा नही होता।'[4] मूल्य-बोध से सम्बद्ध किसी भी प्रश्न पर विचार करते हुए

---

१. लहर : सितम्बर '६० : जगदीश गुप्त, पृ० ३४

2. Contemporary Philosophy by G. E. Moore. P. 42-44

3. "We must look for value not in the things themselves but in the desires and satisfactions which they promote."

—The Analysis of Value by De Witt H. Parker, P. 21

४. आलोचना, अक्तूबर-दिसम्बर '६७ : डा० नित्यानंद तिवारी, पृ० ४६

इस तथ्य को अपनी दृष्टि मे रखना होगा और यह भी न भूलना होगा कि—'मानव-मूल्य मानव-अस्तित्व की व्याख्या करता है। इसके अतिरिक्त मूल्यो का कोई सदर्भ नही है।'[1]

किसी वस्तु मे मूल्यवत्ता का आरोप करने के मुख्यत दो अभिप्राय हो सकते है पहला तो यह कि उस वस्तु का स्वत सिद्ध मूल्य (Postulate value) है और दूसरा यह कि वह किन्ही निर्धारित मूल्यो की वृद्धि मे सहायक है और तीसरा गौण अभिप्राय यह भी हो सकता है कि उसमे मूल्य निहित तो है, लेकिन वह किसी परिस्थिति विशेष मे ही स्फुट होगा।'[2]

कहा जा चुका है कि मूल्य अपने आप मे एक धारणा (Concept) है। क्या मूल्य की परिभाषा की जा सकती है ? किसी भी धारणा, वस्तु या विचारधारा को परिभाषा म बाधना खतरे से खाली नही होता, अत 'मूल्य' के सम्बन्ध मे भी यह कहा जा सकता है कि इसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा दे पाना सम्भव नही है, लेकिन फिर भी एक धारणा को ग्राह्य बनाने और उस पर विचार करने के लिए उसके सम्ब ध म कुछ मत द्रष्टव्य हैं।

द विट एच० पाकर के शब्दो मे—'मूल्य सदा अनुभव होता है, वस्तु या विषय नही।'[3]

डा० कुमार विमल ने 'मूल्य' के सम्बन्ध मे विचार करते हुए कहा है—'मानविकी (Humanity) के सदभ मे मूल्य का अर्थ है जीवन दृष्टि या स्थापित वैचारिक इकाई, जिसे हम सक्रिय 'नाम' भी कह सकते हैं।'[4] गिरिजाकुमार माथुर के मत से—'मानव-मूल्य हमेशा आदश होते हैं, यथाथ मे उन्हें कभी ग्रहण नही किया जाता।'[5] श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा मूल्य की परिभाषा इस प्रकार करते है—'अनुभूति और जीने की अधिकार-वांछा को कलाकार (या साधारण जन) किसी भी कर्म-शृखला के माध्यम से व्यक्त करने की चेष्टा करता है, तो वही वह मानव-मूल्यो की स्थापना करता है।'[6] हेनरी आसबान टेलर न तीन शब्दो मे 'मूल्य' की परिभाषा करते हुए कहा—'मूल्य आत्म-प्रदर्शन है।'[7] मूल्य की विस्तार से व्याख्या करते हुए उन्होने आगे लिखा है—

'सवश्रेष्ठ मानव-मूल्य हमारी सम्पूर्ण प्रकृति से सगति मे होते हैं और सर्वश्रेष्ठ

---

१ 'माध्यम' जनवरी '६६ योगेन्द्र सिंह, पृ० ४४

2 Intrinsic Value by G E Moore, Contemporary Philosophy

3 "A Value is always an experience, never a thing or object"
—The Analysis of Value by De Witt H Parker, p 178

४ आलोचना अक्तूबर दिसम्बर '६७ डा० कुमार विमल, पृ० ६४

५ लहर सितम्बर '६० गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ४३

६ वही, श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ४४

7 "Value is Vanity"
Human Values and Vanities by Henery Osborn Taylor, p 20

रिक इकाई है जिसे आधार बना कर व्यक्ति अपना जीवन जीता है और उसे आत्मोपलब्धि होती है।'

मूल्यों का विभाजन

उपर्युक्त विवेचन से एक बात अत्यन्त स्पष्ट हो गई है कि बिना मानव के मूल्यो की कल्पना नही की जा सकती। अर्थात् प्रत्येक मूल्य मानव की चिन्तन प्रक्रिया और सम्वेदनाओ से होकर गुजरता है, उन्ही से पोषण पाता है, उन्हीं के साथ जुडता है और उसका ध्वस भी मानव के हाथों ही होता है। इस रूप म मानव 'मूल्य' से अधिक महत्वपूर्ण है, वह उसका नियन्ता है, सचालक है और अपनी आवश्यकताओ के अनुरूप ही वह उनका निर्माण या ध्वस करता है।

तो क्या मूल्यो के विभाजन का प्रश्न उठाया जा सकता है? प्राय नैतिक मूल्य, सामाजिक मूल्य या सौन्दर्य-मूल्य जैसे शब्द सुनने पढने को मिलते हैं। विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या मानव के बिना इन मूल्यो की कल्पना की जा सकती है? इस प्रश्न के उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि मूल्य चाहे नैतिक हो या दार्शनिक, सामाजिक हो या सौन्दर्यगत, उनका सीधा और गहन सम्बन्ध सम्वेदनात्मक व्यक्तित्व से ही होता है। अत अन्तत सभी 'मूल्य', 'मानव-मूल्य' ही होते है। दूसरे शब्दो मे मानव-मूल्य मानव-अस्तित्व की अनिवार्यता मे सहज रूप से सम्बद्ध हैं। मानव स्थायित्व के लिए प्रयुक्त विभिन्न सस्कारो, घटना-प्रवाहो, सामाजिक दायित्वो के वैचारिक ग्रहण के अतिरिक्त मानव-मूल्यो का कोई अर्थ नही है। अर्थनीति, दर्शन तथा साहित्य आदि के अपने विशिष्ट सदर्भ है। प्राय मनुष्य को वैचारिक प्रक्रिया के स्तर पर तीन सदर्भों से गुजरना पडता है। किन्ही सदर्भों को वह नकारता है, किन्ही को स्वीकार करता है और किसी सदर्भ म वह मौलिक अस्तित्व की ओर बढता है। कभी स्थापित मूल्यो के प्रति सशय, उनकी निरर्थकता तथा नये मूल्यो की आवश्यकता और वैचारिक अवमूल्यन के स्तरो से मानव गुजरता है। इन आधारो पर हम मानव मूल्यो को तीन वर्गों म रख सकते हैं—

१ वे मानव-मूल्य जो रूढ या स्थिर हो चुके हैं। जैसे काव्य-क्षेत्र मे दण्डी, भामह, मम्मट आदि के विचार या फिर सामाजिक मूल्य, जिनमे धर्मादि की प्रधानता थी और जीवन-चक्र धार्मिक ग्रन्थो या सहिताओ से आबद्ध था।

२ दूसरे वे मानव मूल्य जो विकसित या स्थायित्वप्राप्त है अर्थात् जिनका विकास अब अवरुद्ध हो गया है। स्थायित्व प्राप्तिकाल मे एक ओर तो प्राचीन मूल्यो के प्रति मोह और दूसरी ओर सद्अस्तित्व के प्रति सजगता प्रकट होती है, अर्थात भूत के प्रति मोहग्रस्तता, आस्था तथा नये के प्रति सशय के सघात से जिन मूल्यो का जन्म हुआ, जिसका परिणाम हिन्दी का छायावाद है।

३. तीसरे मानव-मूल्य विकसनशील या नये मूल्य हैं। वैज्ञानिक क्रान्ति और तकनीकी उपकरणों के त्वरित निर्माण से जो सह-अस्तित्व, विश्व-बन्धुत्व आदि मूल्य सामने आये, वे विकसनशील मूल्य हैं और अभी भी निरन्तर इनमें विकास हो रहा है। हिन्दी की नयी कविता इन्हीं मूल्यों से प्रभावित और अनुप्रेरित है।

इसके अतिरिक्त संस्कृति और कई तरह की अन्तरंग अभौतिक प्रवृत्तियों से सम्बद्ध रहने के कारण कुछ मूल्य आत्मनिष्ठ या भावात्मक होते है और आर्थिक-सामाजिक परिवर्तनों से सम्बन्ध रहने के कारण कुछ मूल्य वस्तुनिष्ठ होते है।

इस अर्थ में मूल्य-जगत् आत्मनिष्ठता और वस्तुनिष्ठता का सम्मिश्रण है। मूल्यों का विकास प्रायः दो दिशाओं में होता है—ऊर्ध्व और समदिक्। मूल्य-विकास जब ऊर्ध्व से समदिक् की ओर होने लगता है तो लोग उसे प्रत्यावर्तन या पुरातनता की ओर लौटना कहते है।

कुछ विद्वानों ने मूल्यो को 'शाश्वत मूल्य' और 'सामयिक मूल्य' इन दो वर्गों में भी बांटना चाहा है, लेकिन ऐसा विभाजन उचित नही है, क्योंकि मूल्य कोई देश-काल-व्यक्ति निरपेक्ष वस्तु नही है, बल्कि देश-काल की सीमाओ मे मूल्य भी परिवर्तित होते है, अतः मूल्यों का ऐसा विभाजन संभव नही है।

विलियम लिल्ली ने मूल्यो का विभाजन करते हुए कहा है—

'मूल्यों का एक सामान्य वर्गीकरण यांत्रिक मूल्यों और निरपेक्ष मूल्यों के रूप में किया गया है। वस्तु के यांत्रिक मूल्य का आधार उसकी अन्य मूल्यवान उत्पादन की क्षमता है··· जो वस्तु स्वयं में ही उत्तम है, न कि अपने महत्व के कारण, वह निरपेक्ष मूल्य है।'[१]

यांत्रिक या सहायक मूल्य तो अर्थशास्त्र का विषय है, लेकिन जिन वस्तुओं का मूल्य स्वतःसिद्ध है, ऐसी ही वस्तुओं, धारणाओं या मान्यताओं का अध्ययन मानव-मूल्यों के अन्तर्गत किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्तर्भूत मूल्य (Intrinsic Value) का अध्ययन भी मानव-मूल्यों की ही सीमाओं में आता है।

मानव-मूल्य कितने और कौन-कौन से हैं, इसके निर्धारण मे विचारकों ने बहुत श्रम किया है। भारतीय विचारकों द्वारा प्रतिपादित सत्यं, शिव, सुन्दरम् तथा पाश्चात्य विचारकों द्वारा प्रतिपादित Equality Liberty and Fraternity (समानता, स्वच्छंदता

---

1. "A more common division of values has been into instrumental values and absolute values. An instrumental value is the value that a thing has because it is a means of producing something else of value.... A thing that is good in itself and not because of its consequences has absolute value."

—An Introduction to Ethics by William, Lillie, p. 209

और भ्रातृत्व) आदि मूल्यो ने तो नारो का रूप भी ग्रहण कर लिया। नये विचारो के जन्म के साथ साथ स्वातन्त्र्य (Freedom) तथा मानव स्वाभिमान (Human Dignity) जैसे मूल्यों का उदय हुआ। इन मूल्यो मे मानवता को नये सिरे से स्वीकृति प्राप्त हुई। मानव स्वाभिमान की सार्थकता अन्य व्यक्तियों के स्वाभिमान की सामाजिक स्वीकृति मे निहित है।

इन्हीं मूल्यो के सम्मान और अपमान पर ही प्रजातन्त्र और साम्यवाद का संघर्ष आधारित है। वस्तुत कोई भी वाद अमानवीय आधारों को लेकर नही पनप सकता। किसी वाद की स्थापना इस उद्देश्य से होती भी नहीं, बल्कि एक वर्ग-विशेष की मानवीयता जब दूसरे वर्ग-विशेष की मानवीयता से मेल नही खाती तभी संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। पूँजीवाद और मार्क्सवाद दोनो का आधार मानवीय ही है, लेकिन मार्क्सवाद मे मनुष्य के चेतन-पक्ष की तत्वत उपेक्षा की गई है, जिस कारण से नैतिक मूल्यों के नाम पर अनैतिकता और मानवीयता के नाम पर अमानवीय कृत्यो को सामाजिक समर्थन मिलता है।

'सोवियत नीति शास्त्र चारित्रिक दृष्टि से यान्त्रिक है और लक्ष्यों की अपेक्षा साधनो को गौण मानता है। जिस सर्वहारा के नाम मे क्रान्ति की गई थी और जिसके नाम मे अधिनायकत्व चलाया जाता है, वह वर्तमान सर्वहारा नही, वरन् भविष्य का आदर्शीकृत सर्वहारा है।'[1]

मार्क्सवाद के विशेषज्ञ जब इस प्रकार के निष्कर्ष निकालते हैं तो वे अर्थहीन या निराधार प्रतीत नही होते। दूसरी ओर इस बात को भी नकारा नही जा सकता कि पूँजीवादी व्यवस्था मे समाज के एक बडे वर्ग का शोषण होता है। पूँजीपति वर्ग अपने हितो के लिए मजदूरो और किसानो का शोषण करता है। मानव द्वारा मानव का शोषण अनैतिक और अमानवीय है। दोनो व्यवस्थाओ मे अभाव हैं, फिर भी व्यक्ति या राष्ट्र को इन दोनो मे से एक का चुनाव करना होगा। और या फिर दोनो को मिलाकर एक आदर्श-व्यवस्था के निर्माण का प्रयास मानव-मूल्यों की स्थापना और रक्षा के लिए अधिक बेहतर सिद्ध हो सकता है।

इसके साथ ही एक प्रश्न यह जुडा हुआ है कि क्या मानवीयता के भीतर अमानवीयता को भी समाहित किया जा सकता है, यदि हां, तो कितनी दूर तक?

---

1 "Soviet ethics is instrumental in character and subordinates means to ends The proletariat in whose name the revolution was made and in whose name the dictatorship is exercised, is not so much the existing proletariat but the idealised proletariat of the future"

—The Creed of Karl Marks,
Times Lit Sup, June 5, 1959, p 330

वस्तुतः मानवीयता एक सत्य है और उसमें अमानवीयता के छोटे-से-छोटे अंश को भी समाहित करना तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उससे 'मूल्य' की प्रकृति और पवित्रता दूषित होती है।

मूल्य-परिवर्तन के कारण

यहां यह बात उठाना युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि मूल्यों में परिवर्तन होता क्यों है ? इससे पूर्व कि हम परिवर्तन के कारणों पर विचार करें, इस बात पर विचार करना भी आवश्यक है कि मूल्यों में परिवर्तन होता है या कि मूल्यों का विकास होता है। सुविधा के लिए हम 'परिवर्तन' शब्द का प्रयोग करते हैं, लेकिन वस्तुतः विश्व विकसनशील है और उसके साथ ही मानव-संस्कृति के अनुरूप मानव-मूल्यों में भी विकास होता है, जिसे हम प्रायः परिवर्तन की संज्ञा दे देते हैं। विकासशील मानव-संस्कृति के अनुरूप मानव-मूल्यों में भी विकास होता है, वे निरन्तर विकसित होते रहते हैं, अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप। कभी शीघ्र गति से और कभी धीरे-धीरे।

डा० नित्यानन्द तिवारी के शब्दों में—'मूल्य सदैव विवशता के भीतर उपजता है, सम्बन्धों के संतुलन में उपजता है।'[1] जब डा० तिवारी विवशता की बात करते हैं तो सम्भवतः उसका अर्थ होता है, मन की विवशता अर्थात् जब मानव उपलब्ध मूल्यों को लेकर जीवन जीने में विवश पाता है, तो वह परिवर्तन की आवश्यकता को अनुभव करता है।

इसका एक कारण और भी है। मूल्य इसलिए भी बदलते हैं कि मनुष्य मूल्यान्वेषण करता है और यह मूल्यान्वेषण इसीलिए करता है कि वह बदलते हुए परिवेश के साथ कुछ सृजन करना चाहता है। सृजन का स्वप्न ही वस्तुतः मूल्यों के बदलाव के लिए उत्तरदायी है। सृजन के स्वप्न कब, क्यों, किसे और कैसे आते हैं ? इन प्रश्नों के उत्तर देना सम्भव नहीं, क्योंकि सृजन का न तो कोई क्षण निश्चित होता है, न स्थान, न व्यक्ति, लेकिन मानव-इतिहास इसी बात का साक्षी है कि मूल्यों में सदा परिवर्तन होता रहा है, जिसका प्रभाव साहित्य पर पड़ता है।

- समाज में प्रचलित नैतिक व्यवस्था और मनुष्य की वर्जितोन्मुखी अन्तश्चेतना नैतिक व्यवस्था को तोड़ना चाहती है, जबकि समाज में प्रचलित नैतिक व्यवस्था उसका विरोध करती है। परिणामतः नये मूल्यों का उदय होता है। इसका सबसे सशक्त प्रमाण अमरीका में उपजी 'हिप्पी संस्कृति' है।
- आदर्श और यथार्थ का निरन्तर संघर्ष नये मूल्यों को जन्म देता है। आदर्शवाद यूतोपिया की रचना करता है, वायवी संसार में जन्मता है, जबकि यथार्थवाद का धरातल ठोस होता है। यह दो छोर परस्पर टकराते रहते हैं और मूल्य विकास पाते रहते हैं।

---

१. आलोचना, अक्तूबर-दिसम्बर '६७ : डा० नित्यानन्द तिवारी, पृ० ६१

१०. मूल्यो के चयन, ग्रहण, वर्जन, त्याग और स्थापन मे मनुष्य की वैचारिक जगत मे नवान्वेषणप्रियता नये मूल्यो के उदय मे सहायक होती है।

इनके अतिरिक्त कुछ और कारण भी हैं, जो मूल्यो को बदलाव की दिशा देते हैं। *अनिर्णय और अनिश्चय की स्थिति का होना*, पर-सस्कृति या पर सभ्यता का अनुकरण करना, स्वेच्छा और सुविधा, व्यक्ति, दल या सरकार द्वारा लोकमत तैयार किए जाने से, महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओ के कारण, दो सस्कृतियो के परस्पर मिलन से, *यथास्थिति से ऊब या मोहभग की स्थिति से*, तथा आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक परिवर्तन मूल्य-तन्त्र मे परिवतन लाता है। मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार मूल्य-परिवर्तन का प्रमुख कारण अर्थ तन्त्र है।

वस्तुस्थिति तो यह है कि—'जब भी किसी वस्तु का सदर्भ बदल जाता है तो उसके साथ-साथ उसके मूल्य भी बदल जाते हैं।"[1] और—'समन्वय से मूल्यो का सग्रथन या पारस्परिक अन्तर्विन्यासन होता है, क्योकि मूल्य वास्तव मे एक द्विध्रुवीप्रवर्ग (बाईपोलर कैटेगरी) है।'[2]

नये मूल्यो का उदय एक दो दिन मे नही बल्कि इतिहास की एक लम्बी दूरी नाप कर होता है। परिवर्तन की एक लम्बी प्रक्रिया से छन कर नए मूल्य अस्तित्व में आते हैं और परिवर्तन मूल्यों के सक्रमण से होता है तथा मूल्यगत सक्रमण का कारण दृष्टिकोण के चुनाव की समस्या है।

दार्शनिक पक्ष

मूल्य बनते भी हैं और मूल्य जड भी हो जाते हैं, लेकिन क्या कोई मूल्य ऐसा भी है जो 'मानव मूल्य' कहलाने का अधिकारी न हो और फिर मानव मूल्य की विशेषताएँ या उसका दर्शन क्या होता है ?

वे मूल्य जो मानव के आतरिक सहज स्वरूप के सबसे निकट प्रतीत होते हैं, मानव-मूल्य कहलाते हैं। उनमे मानवीय सम्वेदनाओ की मुक्त और उदार स्वीकृति होती है। जीवन मे उन मूल्यों की प्रतिष्ठा का अर्थ है मानवीयता की प्रतिष्ठा। यही कारण है कि इन मूल्यो को सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है। उनमे मानव के सम्पूर्णत्व की झलक मिलती है।[3] मूल्य परिवर्तन का दर्शन डा० छगन मेहता के शब्दो मे इस प्रकार से है—'परिस्थिति का सारा ताना-बाना, अमूर्त तर्क और गणित की सख्याओं से बना हुआ जो अपने आप मे सर्वथा मूल्यहीन है। व्यक्ति अपने अस्तित्व से ही मूल्य को स्वीकारता-नकारता है। सख्या और तर्क के प्रपच मे ग्रस्त और उसकी मात्रा से त्रस्त व्यक्ति को ऐसा बोध होता है कि इस विभीषिका से या तो यह मुक्ति

१ कल्पना, मार्च, '६१ लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० १६

२ आलोचना, अक्तूबर-दिसम्बर '६७ कुमार विमल, पृ० ६४

३ द्रष्टव्य—Values and Varieties by-Henry Osborn Taylor, P 20

प्राप्त करे, नहीं तो विभीषिका उसे निगल जायगी।"[1] कहना न होगा कि तर्क और संख्या की महामाया से ग्रस्त व्यक्ति नाना प्रकार के ताण्डव किया करता है। दफ्तर, बाजार, सेना, सरकार, सम्प्रदाय या ट्रेड यूनियन—सभी इसी महामाया के अनेक रूप है विभीषिका से मुक्ति प्राप्त करने के प्रयास में ही व्यक्ति सृष्टि करता है—मानवीय मूल्यों की सृष्टि।

प्रत्येक बन्धन से मुक्ति पाना व्यक्ति का सहज स्वभाव है और वह उसके लिए संघर्ष करता है। संघर्ष जीवन और चेतना का लक्षण है। यही कारण है कि स्वतन्त्रता और मुक्ति जैसे मूल्यों को अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई, लेकिन 'आध्यात्मिकता की ओर विशेष झुकाव होने के कारण भारतीय चिन्तन ने मुक्ति को सामाजिक अर्थ में कम और आध्यात्मिक अर्थ में अधिक ग्रहण किया।'[2] धीरे-धीरे यह मुक्ति की कामना इतनी एकांगी हो गयी, कि उसमे सामाजिक सम्बन्धों का भी निषेध होने लगा तो पुनः उसके विरोध में स्वर उठने प्रारम्भ हुए और भौतिकवादी मूल्यों को प्रतिष्ठा मिली।

मूल्य-परिवर्तन किसी निश्चित दिशा या क्रम में नहीं होता क्योंकि 'प्रकृति के व्यक्त स्तर पर दिखाई देने वाली व्यवस्था का अव्यक्त मूलाधार पूर्ण अव्यवस्थित और अप्रकट मे प्रकट होने वाली घटनाओं का क्रम भी सर्वथा अनिश्चित है। यदि दशा मानव-बुद्धि की है मानव के व्यक्त अथवा चेतन स्तर पर व्यवस्थित अथवा चेतन स्तर पर व्यवस्थित और निश्चित पतित होने वाले सफल बुद्धि-व्यापार का अव्यक्त और सचेतन मानसिक मूलाधार सर्वथा अव्यवस्थित है। मन के अव्यक्त अचेतन आधार चेतन स्तर में प्रादुर्भूत होने वाली घटनाओं का कोई भी सुनिश्चित क्रम नही है।'[3] मूल्य-संक्रमण भी इसी तरह से अनिश्चित है और उसका पता तब चलता है, जब उनकी कोई रूपरेखा उभरने लगती है।

यह अनिश्चितता होने पर भी हम इस बात से इन्कार नही कर सकते कि मूल्य-बोध का उदय सचेतन मानसिक स्तर की वस्तु है। यदि मनोविश्लेषकों का मत मानें तो कहना होगा कि चेतन और अचेतन के परस्पर संघात के कारण ही मूल्य-विध्वंस और मूल्य-निर्माण की प्रक्रिया जारी रहती है। इसी सन्दर्भ मे विकासवाद की चर्चा करना भी अभीष्ट है। विकासवाद का सिद्धान्त मनुष्य को विकसित पशु मानते हुए भी पशु की प्रवृत्तियों की तुलना में मानव-प्रकृति को समझने का अभ्यस्त है। अतः उसमे मनुष्य की उच्चतर आकांक्षाओं को उतनी चिन्तन-दृढ़ता के साथ नही पकड़ा गया है, जितना कि भारतीय चिंतन में। अतः इस रूप में भारतीय चिंतन मानव-मूल्यों को अधिक उदात्त और गरिमामय धरातल देता है।

मूल्य-बोध का आधार 'महामानव' माना जाय या 'लघु-मानव', यह एक

---

१. वातायन, डा० छगन मेहता : नवम्बर '६६, पृ० १५
२. लहर, सितम्बर '६० : डा० जगदीश गुप्त, पृ० ३७
३. वातायन, नवम्बर '६६ : डा० छगन मेहता, पृ० १३

और समस्या है। डा० जगदीश गुप्त के विचार से मूल्य-बोध का आधार न तो महामानव' मानना चाहिए और ना ही 'लघु मानव' बल्कि 'सहज मानव' मानना, 'चाहिए।'[1] उनके मत से 'महामानव' और 'लघुमानव' केवल एकांगी दृष्टिकोण ही प्रस्तुत कर पाते हैं। इन दोनों के मध्य का मानव 'सहज मानव' ही वस्तुत समाज का वास्तविक प्रतिनिधि हो सकता है, अत 'सहज' मानव के स्वरूप को ग्रहण करना कठिन नहीं है। यहाँ पर यह प्रश्न भी उठाया जा सकता है कि क्या मानव के साथ कोई विशेषण लगाना अनिवार्य है ? क्या मानव को मानव के रूप मे नहीं देखा जा सकता और क्या मूल्य बोध का आधार यही मानव न होना चाहिए ?

मूल्यों का सामाजिक पक्ष

पश्चिम मे समाज की कल्पना 'मानव-नियति को निर्धारक-शक्ति (Determining Force of Human destiny) के रूप मे की गयी है। इससे भारतीय मनीषा भी प्रभावित है। मूल्यो के सामाजिक पक्ष पर विचार करते हुए यह तथ्य ध्यान म रखना होगा कि समाज की शक्ति सर्वाधिक प्रबल है और यह बात भी तय है कि 'यदि प्रत्येक व्यक्ति कार्य करना बन्द कर दे तो सामाजिक प्रभाव लुप्त हो जाते हैं। उनके लुप्त होते ही नैतिकता-रूपी सर्वाधिक शक्तिशाली रक्षाकवच भी टूट जाता है और नैतिकता के साथ ही मानव-मंगल की भावना भी समाप्त हो जाती है। व्यक्ति द्वारा सामाजिक नैतिकता के प्रति प्रतिबद्धता वह आधार है जिस पर शेष सब निर्मित होता है।'[2]

मूल्यों के परिवर्तन मे सबसे शक्तिशाली समाज का ही हाथ होता है। रूस और चीन की सामाजिक क्रान्ति ने वहा के जीवन-मूल्यो मे आमूल परिवर्तन कर दिये। अमरीका म काले लोगो की दासता अब सामाजिक विरोधों के कारण ही मूल्य नहीं रह गया है। भारत मे ही किसी समय कर्म-काण्ड से जीवन की चर्या निर्धारित होती थी, किन्तु आज समाज मे उसे इतनी स्वीकृति नही है कि उससे दिनचर्या का निर्धारण हो।

मूल्यो की सामाजिकता मूल्यो को जीवित रखती है और जो मूल्य सामाजिक जीवन से कट जाते हैं या असामाजिक हो जाते हैं, उनमे परिवर्तन अवश्यम्भावी हो जाता है। सामाजिक सस्कारो मे व्यक्ति पलता है, उन्हे स्वीकार करता है और जब

---

१ लहर, सितम्बर '६० डा० जगदीश गुप्त, पृ० ३६-४०

2 "If no one acts, social influences disappear With their disappearance, the most powerful safeguards of morality go as well and with morality goes human welfare Individual obedience to the requirements of social ethics is the foundation on which all else is built"

—Practical Ethics, by Viscount Samuel, p 131-32

सामाजिक संस्कार विकास के मार्ग को अवरुद्ध कर देते है तो व्यक्ति सामूहिक रूप से उनसे टक्कर लेता है और इस तरह से नये मूल्यों का उदय होता है।

मूल्यों का आर्थिक पक्ष

आज जीवन का केन्द्र अर्थ है और अर्थ तन्त्र ही आज के व्यक्ति के जीवन को निर्धारित करता है, अतः जीवन-मूल्यों के बदलाव में अर्थ की स्थिति प्रमुख हो गई है। ईमानदारी, निष्ठा, सेवा और त्याग जैसे मूल्यों में विघटन होने का कारण अर्थ ही है। न केवल इतना ही बल्कि विश्व में पनपे हुए पूंजीवाद या साम्यवाद जैसी प्रणालियों के पार्श्व में भी अर्थ कार्य कर रहा है। क्योंकि व्यक्ति का जीवन बहुत कुछ अर्थ-तन्त्र पर निर्भर करता है अतः जैसा अर्थतन्त्र होगा, वहाँ मूल्यों की उद्भावना भी वैसी ही होगी। उदात्त और व्यापक मूल्यों की व्याख्या भी विभिन्न अर्थ-तन्त्रों के अनुरूप बदल जाती है। जब मूल्यों के औचित्य-अनौचित्य पर केवल अर्थ की दृष्टि से विचार किया जाता है, तो वहां सम्भवतः मानव-मूल्यों के साथ न्याय नहीं हो पाता, क्योंकि उससे भौतिक जगत तक की आवश्यकताओं की पूर्ति के तो लिए वे मूल्य काम दे जाते हैं, लेकिन उससे आगे जब मानव भौतिकता से ऊपर उठकर कुछ सोचता है तो वहां वे मूल्य उसका साथ नहीं दे पाते। अतः इस दृष्टि से मूल्यों का आर्थिक पक्ष शिथिल हो जाता है।

वैयक्तिक दृष्टिकोण और मूल्य

किसी भी क्रिया का सबसे पहला केन्द्र व्यक्ति स्वयं होता है, इसके सामने जो भी वस्तु आती है, वह उसे अपने दृष्टिकोण से ही देखता-परखता है। इस आत्म-निष्ठ दृष्टि (Subjective approach) के कारण वह किन्हीं मूल्यों को नकार देता है और किन्ही को स्वीकार करता है। इधर मूल्यों के सम्बन्ध मे वैयक्तिक पक्ष अत्यन्त प्रबल हो उठा है। पाश्चात्य विचारकों द्वारा प्रतिपादित ego और super ego की धारणाओं से प्रभावित व्यक्ति 'स्व' में ही केन्द्रित हो गया है और वह मूल्यों का चयन या उनकी व्याख्या अपनी सुविधा के अनुरूप करता है। यही कारण है कि आज एक ही सामाजिक मूल्य के अनेक व्यक्तिगत प्रारूप दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि कोई भी अपनी सुविधा को छोड़ने के लिए तैयार नही। इस अर्थ में 'सुविधा' ही जैसे अपने आपमें एक मूल्य हो गया है और शेष मूल्यों का निर्धारण संचालन उसी के अनुरूप होता है। इस सम्बन्ध मे श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा के शब्द देखे जा सकते हैं—'यथार्थ संकल्प की भावस्थिति मे एक प्रकार का 'सिनिकल एप्रोच' (Cynical approach) है मूल्यों के प्रति। क्षण के यथार्थ को भोगने की एक यह भी सार्थक स्थिति है। विशेषकर मूल्यों के संदर्भ में यह एक नितान्त नये आयाम को सम्बद्ध करती है। इसीलिए उसकी किसी से शिकायत नही है—न इतिहास से, न दर्शन से, और न जीवन से।"[1] इस

---

1. लहर, मार्च '६१ : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ५६

सिनिकल (मानवद्वेषी) एप्रोच के कारण ही मूल्यों म कटुता जन्म लेती है। सम्भवत यही कारण है कि आज का मानव कल के मानव से सवथा भिन्न हो गया है। कल के मानव का एक ऐतिहासिक सन्दर्भ था, और उस ऐतिहासिक सन्दर्भ म उसका आकलन किया जा सकता था, वह दायित्व को स्वीकारता था, लेकिन आज के मानव ने ऐतिहासिक सन्दभ को तो खो ही दिया है, साथ ही यह दायित्व को भी नकारता है। अकेलापन, भ्रान्ति, निरुद्देश्यता, और निरर्थकता को स्वीकार करके वह सुविधा के मार्ग को अपनाता है। इस दृष्टि मे वैयक्तिकता के स्तर पर आज का मानव 'मानव मूल्यों का आहृत करता है।

राजनीति के आयाम और मूल्य

राजनीति और नीतिशास्त्र मे तत्वत कोई विशेष भेद नही है—'अभी भी नीतिशास्त्र और राजनीति का कोई स्पष्ट भेद नहीं हो पाया है, क्योंकि राजनीति, राज्य के सदस्य होने के नाते व्यक्ति की भलाई या कल्याण से ही सम्बधित है। वस्तुत कुछ आधुनिक लेखक 'नीति शब्द का प्रयोग ही इतनी उदारता से करते हैं कि उसम कम से कम राजनीति का एक हिस्सा भी समाविष्ट रहता है।'[1]

नीतिशास्त्र मानव मूल्यों का ही अध्ययन करता है और वह अच्छे तथा बुरे मूल्यों मे विभेद करने का प्रयास भी करता है। राजनीति का उद्देश्य भी सिद्धान्तत मानव की भलाई ही है। सैद्धान्तिक स्तर पर तो राजनीति मानवीय मूल्यों को ही लेकर चलती है, लेकिन व्यावहारिक स्तर पर राजनीति मानव मूल्यो का हनन करती है। व्यवहारिक राजनीति मे सत्ता हथियाने का कार्य प्रमुख हो जाता है और मानव कल्याण की बात गौण।

विश्व मे होने वाली राजनीतिक उथल पुथल ने मानव मूल्यों को बहुत दूर तक आहृत किया है। राजनीतिक स्तर पर छिड़ा हुआ शीत युद्ध एक दिन भयानक शस्त्र-युद्ध का रूप ले लेता है। परिणामत मूल्यों का नग्न ध्वस मानव निरीहता के साथ देखता है और मानव-गौरव, स्वातंत्र्य तथा समानता आदि उदात्त मूल्यों के स्थान पर अविश्वास, अनास्था और हीनता के स्वर फूटने लगते हैं।

प्रथम महायुद्ध के बाद द्वितीय महायुद्ध और नागासाकी तथा हिरोशिमा का

---

1 "Ethics is not yet clearly distinguished from politics, for politics is also concerned with Good or welfare of men, so far as they are members of states And in fact the term Ethics is sometimes used, even by modern writers, in a wide sense, so as to include at least a part of Ethics"
—Outlines of the History of Ethics, by Henry Sidgewick, page 2

ध्वंस, यूरोपीय राजनीति के परिणामस्वरूप हुआ। मुसोलिनी की फासिस्ट नीति के परिणासस्वरूप इथोपिया की सत्ता का अपहरण, जर्मनी और रूस के अधिनायकों द्वारा पोलैण्ड का बंटवारा, आस्ट्रिया पर बलपूर्वक हिटलर का प्रभुत्व, जर्मनी का विभाजन, भारत का विभाजन और वियतनाम, कोरिया, कांगो आदि की क्रान्तियां तथा अन्य युद्धों को देखने से हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि सैद्धान्तिक स्तर मानव-कल्याण की आकांक्षा रखते हुए और उदात्त एवं व्यापक उद्देश्यों को लेकर चलने के बावजूद व्यवहारिक स्तर पर मानव-मूल्यों का जितना हनन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति ने किया है, उतना अन्य किसी ने नही।

विश्व में अस्थिरता, भय, आतंक, भूख, महामारी, अविश्वास और अनास्था सब के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी राजनीति है। प्रश्न किया जा सकता है कि राजनीति का नियन्ता तो मानव ही है। इस रूप में अन्तत: दोष मानव पर ही आता है लेकिन राजनीति की जो धारणाएँ या विचार बन चुके हैं और जिस धरातल से राजनीति जन्म लेती है, उसे अभी बदल पाना सम्भव नही लगता, क्योंकि विश्व में शक्ति-संतुलन की बात अधिक होती है, वादों की चर्चा अधिक होती है और उन्ही को आधार बनाकर मानव-मूल्यों की हत्या कर दी जाती है। मानव-मूल्यों में राजनीति के दांव-पेच चलाये जाते है, जिससे मूल्यों की गरिमा नष्ट होती है, उनकी उदात्तता और व्यापकता लुप्त प्राय: हो जाती है।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में मूल्यों के बदलाव का संक्षिप्त विवेचन

मूल्यों के इतिहास की शुरुआत मानव-संस्कृति और सभ्यता के विकास के साथ होती है। इसकी कोई निश्चित तिथि या समय खोज पाना तो सम्भव नही है, लेकिन यह अनुमान तो सहज ही लगाया जा सकता है कि आज हम जिन मूल्यों की बात करते हैं, उन्हें इस स्थिति तक पहुँचने मे हजारो वर्ष लगे हैं।

आदिम अवस्था से लेकर आधुनिक युग में वैज्ञानिक क्रान्ति से पूर्व तक मूल्यों का विकास अचेतन स्तर पर ही अधिक होता रहा है। आदि मानव के लिए आधुनिक समाज के अनुरूप कोई नैतिक या सामाजिक मूल्य नही थे। धीरे-धीरे किसी अदृश्य शक्ति की उपासना होने लगी और ईश्वर की कल्पना की गई। ईश्वर की कल्पना भय और आतंक के कारण की गई और या फिर समाज मे एक व्यवस्था उत्पन्न करने के लिए। ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में भी मानव अवतरित हुआ, सम्भवत: वह कोई 'चालाक' आदमी रहा होगा जिसने इस परम्परा का सूत्रपात किया, जो अब तक भी किसी न किसी रूप में चली आ रही है।

भारतीय चिन्तकों ने तो ब्रह्म-ज्ञान की बहुत बात की और कहा कि सृष्टि के प्रारम्भ में ऋषियों को स्वयं ब्रह्म ने ज्ञान दिया और वे समाज के नियामक हो गए। उन्होंने जिन मूल्यों या विधान की रचना की, वही चलने लगा। एक पुरानी कहावत है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है, ज्यों-ज्यों आवश्यकताएँ बदली, मूल्य

बदले। आदि मानव पशुओं का शिकार करता था तो आगे चलकर वही पशुओं को पालने भी लगा—पशु-पालन और कृषि का समय आया। सम्भवतः यही वह समय था जब समाज का निर्माण हुआ तो व्यवस्था ने जन्म लिया, जिसने अधिनायकों को जन्म दिया।

अधिनायकों ने अपनी सुविधा के अनुरूप मूल्य बनाए और उन्हें समाज पर थोप दिया। यहीं से दास-प्रथा का भी जन्म होता है और शक्ति अपने आप में एक मूल्य बन जाता है। जिसकी लाठी उसकी भैंस।

लेकिन मूल्य कभी भी स्थिर नहीं होते। वास्तव में मूल्य-बोध एक शृंखलित प्रक्रिया है और मूल्यों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। अविकसित समाज में मूल्यों में परिवर्तन का प्रमुख कारण रीति-रिवाज होते थे। क्योंकि उस युग में परम्पराएँ ही प्रधान होती थीं। वाइकाउंट सैमुअल के शब्दों में—

'जहाँ तक हम देख सकते हैं यह लगता है कि आदिम समाजों में परम्परा सर्वोच्च और दुर्नम्य है। युवाओं के प्रशिक्षण के माध्यम से इसका स्थिरीकरण किया जाता है और आवश्यकतानुसार शक्ति अथवा चुनौती की स्थिति में अति प्राकृतिक-भय उत्पन्न करके इसे लागू भी किया जाता है।'[1]

यह बात सत्य है कि अतिभौतिक शक्तियों के भय से ही मानव अपने पर थोपे गये मूल्यों को स्वीकार कर लेता था—या शक्ति से उन्हें स्वीकार करने पर मजबूर कर दिया जाता था। लेकिन समय की गति के साथ ही परम्पराएँ टूटती हैं, मूल्य बदलते हैं, परिस्थितियों के अनुसार या उनमें परिवर्तन किया जाता है, या उन्हें उखाड़ फेंका जाता है।

'मौलिक और साहसिक मस्तिष्क (व्यक्ति) नवीन योजनाओं का निर्माण कर लेते हैं। निंदा अथवा उपहास की चिन्ता न कर अवरोधों को दूर करते हुए वे इस बात पर बल देते हैं कि उनके विचारों को प्रायोगिक रूप दिया जाना चाहिए।'[2]

---

1 "It appears that in primitive societies, so far as we are able to observe them, custom is supreme and rigid It is perpetuated through the training of the young, it is enforced by voilence, when necessary, or by supernatural terrors invented to challenge"

—Practical Ethics, Viscount Samuel, p 333

2 "Original and courageous minds strike out along new plans Careless of obloquy or devision, brushing aside obstruction, they insit that their ideas should be put to test"

—Ibid, p 134

चाहे उन्हें सफलता मिले या असफलता, लेकिन मूल्यों के अन्वेषी ऐसा ही करते है।

विश्व में अनेक धर्मों और सम्प्रदायों की स्थापना से मूल्यों की स्थापना हुई और वे मूल्य इतने संकीर्ण और फिर स्थिर हो गये कि औद्योगिक क्रांति के लगभग डेढ़ सौ वर्षों के पश्चात् भी उन्होंने मानव-समुदाय को जकड़ रखा है।

यह आवश्यक नही कि हर बार का बदलाव उन्नति का ही सूचक होता है, लेकिन यह बात तो तय है कि प्रत्येक पीढ़ी अपने परिवेश के प्रति सजग होकर सोचती है और अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ही उसे ढालने का प्रयास करती है। यह भी आवश्यक नहीं कि सभी पुराने मूल्य अच्छे हो और सभी नये बुरे।

'अतः सब पुराना नहीं होता सत्य
मेरे बन्धुओ, और न ही सब नया सत्य होता है।"[1]

बिना परीक्षण के अच्छे-बुरे का फैसला करना कठिन है और आज तो स्थिति यह है कि परीक्षण के बाद भी निर्णय लेना कठिन है, क्योंकि आज इतनी विचार-धाराओं ने जन्म लिया है कि उन सबमे तालमेल बिठाना असम्भव हो जाता है।

आज से लगभग डेढ सौ वर्ष पूर्व मानव ने प्रजातन्त्र को स्वीकार किया जिससे मूल्यो में तेजी से बदलाव आया। एक व्यक्ति का स्थान पूरे समाज ने ले लिया। ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता है, त्यो-त्यों समाज की व्यवस्था अच्छी होती है। न्यायालयो और पुलिस की स्थापना, तथा सुरक्षा के साधन और कार्य करने के लिए अच्छे उपकरण मिलने लगते है। पारिवारिक इकाई टूटती है और व्यक्ति महत्वपूर्ण हो जाता है।

मूल्यो के बदलने का अगला आयाम औद्योगिक क्रान्ति के साथ जुटा हुआ है। यूरोप में हुई औद्योगिक क्रान्ति ने व्यक्ति के महत्व को बहुत सीमा तक कम कर दिया और मशीनी सभ्यता का जन्म हुआ। जीवन की व्यस्तता बढ़ी, आपसी सम्बन्ध कम होने शुरू हो गए। परिवार बिखर गये और व्यक्ति के जीवन का केन्द्र अर्थ हो गया। इसमे भी बड़ा काम जो औद्योगिक क्रान्ति ने किया, वह यह कि अब तक व्यक्ति के मन पर जो एक दैविक शक्ति या ईश्वर बैठा हुआ था, उसकी मूर्ति खण्डित की। ईश्वर की मूर्ति खण्डित होने से भय कम हुआ और नैतिक-मूल्य टूटने लगे, सामाजिक मूल्य बिखरने लगे और व्यक्ति ने स्वयं को अपने भाग्य का नियन्ता माना और उसने अपने इसी रूप की स्थापना की।

मानव-मूल्यों के इतिहास मे यह एक बहुत बड़ा परिवर्तन था। सन्दर्भों के

---

1. "Old things need not to be therefore true O brother men, nor yet the new."

—Quoted in Practical Ethics, by Viscount Samuel, p. 135

बदलने से मूल्य भी बदल जाते है। मशीनी सभ्यता ने ईश्वर की मूर्ति को खण्डित किया तो युद्ध ने मानव की मूर्ति को ही खण्डित कर दिया। युद्ध ने जीवन का सदर्भ बदला और जीवन का सदर्भ बदलने से जीवन स्वत ही बदल गया। क्योंकि 'इस परिवर्तन ने हमारी नैतिकता, हमारे मानदण्ड, हमारी निष्ठा और हमारे प्रतीक बदल दिये। बिम्बो और मान्यताओ की कसौटी बदल दी। उनकी चेष्टा शक्ति बदल दी, और इनके बदलने से, यह भी सत्य है कि हमारे अस्तित्व को एक गहरी ठेस लगी। आदमी नग्न रूप मे बिखरा टूटा और सस्कार-च्युत हो गया। शब्दो ने अपना अर्थ खो दिया। मान्यताओ ने अपनी शक्ति खो दी। चेतना ने अपने स्तरो को खो दिया और दृष्टि ने परिचित आयामो के अभाव मे नये क्षितिजों की ओर दृष्टि की। पूर्व परिचित परम्परा से हस्ता तरित हुई प्रतिभाएँ टूटी। स्थिरता के अभाव से मनुष्य ने अपने ऊपर विश्वास खो दिया, कुछ भटका किन्तु फिर आत्मविश्वास की ओर बढा। उसे तब नये मूल्यो का बोध हुआ।"[1]

यूरोपीय उथल-पुथल को विलिंग ने यूरोप का विश्व विजय तथा नीत्शे ने महामानव के अवतरण की भूमिका माना है। युद्धोत्तर साहित्य को देखें तो उसमे—"एक ओर मूल्यहीन जीवन के अन्धकार मे अपने व्यक्तित्व को खोजने का एक अति वैयक्तिक प्रयास आरम्भ होता है, वही दूसरी ओर देशकाल की सीमाओ के कारण अनिवार्य रूप से आ गये सस्कारो के निवारणार्थ उसमे तीव्रतम आक्रोश के दर्शन भी किए जा सकते हैं और मनुष्य अपने ही विद्रूप पर तीखा व्यग करता हुआ दिखाई देता है।"[2]

वर्तमान स्थिति को देखते हुए हम यह कह सकते है कि आज का मानव आत्मविश्वास के साथ 'आत्मोपलब्धि' के लिए आगे बढ रहा है और यही वास्तविक मूल्य है। मानवता के लिए प्रत्येक मनुष्य को निम्न बातें स्वीकार करनी होगी—

'(१) मानव विशिष्टता, (२) तर्क, (३) मनुष्य की शक्ति, (४) मानव स्वाभिमान, (५) मानव-पवित्रता, (६) मानव सभ्यता, (७) मानव बुद्धि, (८) मानव स्वय अपनी स्थिति का सर्जक, (९) मनुष्य की सचरणशील शक्तिशाली प्रकृति और (१०) मनुष्य का क्षण और यथार्थ।"[3]

सौन्दर्य-बोध के स्तर पर मानव-मूल्यो की चर्चा करते हुए पाच बातें और ध्यान मे रखनी होगी—

(१) आत्मबोध, (२) विशिष्ट और बुद्धिसगत अनुभूति, (३) सघटन की खोज, (४) क्षण की यथार्थता मे चेतन और बुद्धिसगत सहयोग, और (५) अनुभूतियों के साथ सापेक्षिक और सचरणशील सह-सम्बन्ध।[4]

---

१ कल्पना, मार्च '६१ लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० १९
२ वातायन, नवम्बर '६६ प्रकाश परिमल, पृ० ४९
३ लहर, सितम्बर '६० जगदीश गुप्त, पृ० ४९
४ वही, पृ० ४९

नयी कविता के लिए वैचारिक पृष्ठभूमि

विभिन्न-स्रोत

क्षिप्र गति से बदलते हुए मूल्यों ने नयी कविता के लिये आधार बनाया, लेकिन इसके अतिरिक्त और भी कई ऐसे कारण हैं, जिनको बिना देखे हम इस निष्कर्ष पर नही पहुँच सकते कि केवल मूल्यों के संघात के कारण ही नयी कविता ने जन्म लिया।

नयी कविता के लिए वैचारिक पृष्ठभूमि की शुरुआत सन '४० के बाद मानी जा सकती है। वस्तुत: वैचारिक पृष्ठभूमि बनाने में दो बातो का प्रमुख हाथ है—पहला तो बदलते हुए परिवेश का और दूसरा तत्कालीन काव्यान्दोलनों का।

मूल्यों से सम्बन्धित स्थायी नियमों का पोषक रसवादी, अलंकारवादी, ध्वनिवादी या रीतिवादी काव्य कभी का दम तोड़ चुका था। प्रतीकता एवं तत्सम्बन्धी मूल्यों पर आश्रित भक्ति, नीति या उपदेशमूलक काव्यधारा भी लुप्त हो चुकी थी। व्यक्ति की आस्था, मोह तथा संस्कारबद्धता पर आश्रित छायावादी या रोमांटिक काव्य दम तोड़ रहा था और तभी स्थायी मूल्य या वाद पर आश्रित प्रगतिवादी काव्य का जन्म हुआ, जिसने नारो और वादों में दम तोड दिया। उसके बाद जन्म होता है प्रयोगवाद का, जो कि मूल्य-संक्रमण और काव्य-बोध की अस्थिरता से प्रभावित काव्य है। यही पर नयी कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि पुष्ट होती है और इसी नयी कविता के माध्यम से निरन्तर विकासशील या परिवर्तनशील मूल्यों को अभिव्यक्ति मिली है।

लेकिन यदि पाश्चात्य देशों से भारतीय कवियों का परिचय न हो पाता तो सम्भवत: इतनी तीव्रता से प्रयोगवाद जन्म न ले पाता और ना ही वह इतनी जल्दी नयी कविता में परिवर्तित हो जाता।

नयी कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि की यदि हम खोज करें तो पाएंगे कि सन् '४० के बाद भारत एक ओर तो द्वितीय विश्वयुद्ध से आक्रान्त था और दूसरी ओर वह अपने स्वतन्त्रता संग्राम की तैयारी में जुटा हुआ था। महंगाई, महामारी, बेकारी, भूख और अनैतिकता को झेलता हुआ स्वतहीन क्रांति के लिए नैतिक बल का संचयन कर रहा था।

उस भावनात्मक संघर्ष के तीखेपन को छायावाद में अभिव्यक्ति न मिली क्योंकि 'छायावाद के मूल में आध्यात्मिक दर्शन की अवस्थिति थी'[1] और 'छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी था।'[2] जबकि उस युग को न तो वीणा के टूटे हुए तारों की आवश्यकता थी और न ही हृदय के क्रन्दन,

---

१. आधुनिक साहित्य : नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ०३४३
२. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य : सं० गंगाप्रसाद पाण्डेय, पृ० ६०-६१

आखो के आसू या मन के सूनेपन का। छायावादी कवियो में वर्तमान के प्रति असंतोष तो था, लेकिन उसके प्रति रोष या युयुत्सा का भाव न था। अपनी वायवी कल्पनाओं, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता और सूक्ष्म के प्रति व्यामोह के कारण छायावाद तत्कालीन भावनाओं को अभिव्यक्ति देने मे असफल रहा और प्रगतिवाद का जन्म हुआ।

प्रगतिवाद पूर्वाग्रहो से युक्त होने के कारण ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुकूल होते हुए भी वह पूर्ण विकास को प्राप्त न हो सका।[1] क्योकि प्रगतिवाद का जन्म विदेशी प्रेरणा से हुआ था और उसमें अपने देश की जलवायु का नितान्त अभाव था, वस्तुत वह काव्य कम और नारा अधिक लगता था। प्रगतिवाद विषय-वस्तु के प्रति इतना आग्रहशील है, कि शिल्प पक्ष गौण हो गया है और अनुभूति के अभाव मे ही अधिकाश काव्य की रचना की गई है। 'केवल निराला मे ऐन्द्रियता के प्रति आग्रह और यथार्थ पर बढते हुए व्यग-विद्रूप हैं।'[2]

तभी 'तारसप्तक' के प्रकाशन से नवलेखन का सूत्रपात होता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी की पुस्तक हिन्दी नवलेखन के साक्ष्य पर हिन्दी नवलेखन के पीछे यूरोपीय 'न्यू राइटिंग की प्रेरणा' काम कर रही थी। प्रथम महायुद्ध ने यूरोप की मानसिक सम्वेदना को झकझोर दिया, युद्ध जनित क्षतियाँ तो पूरी हो गई, लेकिन संवेदनात्मक घाव बहुत समय तक कलाकारो को आन्दोलित करते रहे।

उस सस्कारहीनता के वातावरण मे सन् १९३० मे न्यू राइटिंग का सूत्रपात हुआ। 'कैथोलिसिज्म, कम्यूनिज्म, ह्यूमैनिज्म जैसे बौद्धिक आन्दोलन चले। कम्यूनिज्म फैशन हो गया और युद्ध की विभीषिका ने मानव के अध्यात्म को नष्ट कर दिया। आर्थिक, सामाजिक कम्यूनिज्म ही मानव-कल्याण का एकमात्र मार्ग दिखाई देने लगा, लेकिन सन् '४० में इसे असफल देवता ('गाड दैट फेल्ड) घोषित कर दिया गया। 'गाड दैट फेल्ड' सकलन के छ लेखक स्टीफेन स्पेन्डर आर्थर कास्लर, रिचार्ड राईट, आन्द्रे जीद, लुई फिशर तथा इग्नेजियो सिलौने तत्कालीन बौद्धिक पीढी के मानसिक सघात का प्रतिनिधित्व करते हैं। इससे पूर्व सन् '३० म 'न्यू राइटिंग इन यूरोप' जान लेमेन के सम्पादन मे प्रकाशित हुई। सन '३२ मे 'न्यू सिग्नेचर्स' काव्य सकलन का प्रकाशन हुआ। इस काव्य सकलन म सकलित सभी कवि महायुद्ध मे भाग लेने के अयोग्य, लेकिन युद्ध से पीडित और आक्रान्त थे और नये अन्वेषण मे तत्पर, लेकिन वह 'नया' क्या था, इसका उत्तर उनके पास न था। ठीक यही स्थिति सन् '४३ मे अज्ञेय के सम्पादन मे प्रकाशित काव्य 'तारसप्तक' की थी। जब उन्होंने घोषणा की कि 'सग्रहीत कवि सभी ऐसे होगे, जो कविता को प्रयोग का विषय मानते हैं—जो यह दावा नही करते कि काव्य का सत्य उन्होंने पा लिया है, केवल

---

१ रामस्वरूप चतुर्वेदी की पुस्तक हिन्दी नवलेखन के साक्ष्य पर।

२ आलोचना, पूर्णाक '१२ गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ५१

अन्वेषी ही अपने को मानते हैं…वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुंचे हुए नही हैं, अभी राही हैं, राही नही, राहों के अन्वेषी…।"[1]

उधर यूरोप में नवलेखन के मूल तत्व बीज रूप से जेम्स जायस, वर्जिनिया वुल्फ तथा टी० एस० इलियट जैसे पुराने खेमे के लेखकों मे थे तो इधर निराला, इलाचन्द्र जोशी, पन्त और जैनेन्द्र आदि मे। इन तत्वों का समुचित विकास नयी कविता में ही हो पाया।

'न्यू सिग्नेचर्स' के एक वर्ष बाद 'न्यू कन्ट्री' का प्रकाशन हुआ, जिसमें मुख्यतः गद्य रचनाएँ थी। यूरोपियन नव लेखन एक ओर तो भावात्मक तीव्रता लिए हुए था और दूसरी ओर वह 'बौद्धिक चेतना' से भी सम्पन्न था।

अंग्रेजी नयी कविता का परिचालन तीन कवियो के हाथ में रहा—आडेन, डे लुइस तथा स्पेन्डर। इन्होंने विज्ञान, मार्क्सवाद तथा दर्शन को काव्य मे अभिव्यक्ति दी।

यूरोपीय नवलेखन आन्दोलन मे अन्य विदेशी लेखको ने भी सहयोग किया, जिनमें क्रिस्टोफर काडवेल, राल्फ फाक्स, वी० एस० नाईपाल, डाम मारेस, हेनरी मिलर, नारमन मेलर तथा जान आपडाईक प्रमुख हैं। नये लेखक बर्न्स, हावर्ड कास्ट, वास्ल, हाप किन्सन तथा वी० एल० कूम्बीज आदि हैं। भारतीय लेखकों में मुल्कराज आनन्द, आर०के० नारायण, वेद मेहता तथा अहमद अली ने सहयोग दिया, लेकिन उनमे आधुनिक साहित्य जैसी तीव्रता नही मिलती। अमेरिकन सभ्यता, संस्कृति तथा साहित्य को अपेक्षाकृत बहुत नवीन होने के कारण लेखकों को युगों से चली आने वाली रूढ़ियों का सामना नही करना पड़ा। अमेरिका के ई० ई० कमिग्ज, विलियम कैरलास विलेचम्स, स्टीन बैक, आर्थर मिलर तथा अर्नेस्ट हेमिंग्वे ने नवलेखन में सहयोग दिया।

इतना सब बताने का तात्पर्य यह ही था कि नयी कविता को केवल राष्ट्रीय संदर्भों मे न देखकर अन्तर्राष्ट्रीय संदर्भों में देखा जा सके। नवलेखन भारत तक सीमित नहीं, बल्कि यहाँ से बहुत पहले उसका सूत्रपात अन्य देशों मे हो चुका है।

'तारसप्तक' में तो प्रयोगवादी कविताएँ थी, लेकिन 'दूसरा सप्तक' से नई कविता की शुरुआत हो जाती है। इस सबके अतिरिक्त महत्वपूर्ण गोष्ठियों के आयोजन ने भी नई कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि को तैयार करने में विशिष्ट योगदान किया, अतः उनका उल्लेख करना भी आवश्यक हो जाता है।

१९५५ — परिमल, प्रयाग की गोष्ठियां—'लेखक और राज्य' तथा 'व्यक्ति स्वातन्त्र्य तथा सामाजिक दायित्व' पर द्वि-दिवसीय परिचर्चा।

१९५६ — वर्षान्त मे नई दिल्ली में आयोजित एशियाई लेखक सम्मेलन।

---

१. तारसप्तक स० अज्ञेय, भूमिका, (तृतीय संस्करण) पृ० १०-११

१९५७ — सभी भारतीय भाषाओ के लेखको की गोष्ठी—परिमल, प्रयाग। त्रिदिवसीय परिचर्चा—लेखक तथा राज्य।

१९५७ — वर्षांत मे कलकत्ता मे अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन।

कुछ पत्रिकाएँ, जिन्होने नई कविता के विकास की भूमि तैयार कर दी—

१९५३ — 'नये-पत्ते' का प्रकाशन—रामस्वरूप चतुर्वेदी, लक्ष्मीकान्त वर्मा

१९५४ — 'नई कविता' का प्रकाशन—जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी।

१९५५ — 'निकष' का प्रकाशन, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा।

इनके अतिरिक्त कल्पना, ज्ञानोदय, युगचेतना तथा राष्ट्रवाणी आदि पत्रिकाओ ने भी महत्वपूर्ण सहयोग किया।

अत एक ओर तो छायावाद, प्रगतिवाद, हालावाद तथा रोमाण्टिक काव्य-धाराओ का लोप, दूसरी ओर राष्ट्रीय सग्राम और भावनात्मक सघर्ष तथा तीसरी ओर 'तारसप्तक' के प्रकाशन और यूरोपीय नवलेखन ने नई कविता के लिए वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार कर दी। गोष्ठियो और प्रारम्भिक पत्रिकाओ का सक्रिय सहयोग इसे पुष्ट कर पाया।

□

इतिहास-बोध

इतिहास के सन्दर्भ और संविधान में मौलिक अधिकारों की स्वीकृति

नयी कविता के जन्म के साथ सामाजिक, आर्थिक एवं राष्ट्रीय आन्दोलनों की इतिहास-यात्रा जुड़ी हुई है। साहित्य—विशेषतः कविता का विकास तत्कालीन परिस्थितियों के अनुरूप होता है और जितनी तेजी से कविता बदल सकती है, उतनी तेजी से और किसी भी साहित्यिक विधा में बदलाव नहीं आ पाता। चाहे यूरोप के साहित्य का इतिहास हो और चाहे भारत या अन्य एशियाई देशों का, नवके परिवर्तन की धारा का क्रम एक-सा ही है। समय का अन्तराल कहीं कम कहीं अधिक अवश्य है, लेकिन जहाँ भी जैसे ही परिस्थितियाँ बदलीं कविता ने स्वयं को बदला है, क्योंकि कविता ही एक ऐसा माध्यम है, जो जनसमूह के आवेगों, कोलाहलों और आत्मिक आवश्यकताओं को अभिव्यक्ति दे पाता है।

राष्ट्रीय आन्दोलन के दिनों में राष्ट्रीय स्वरों का उच्चारण करने वाली कविता ने जन्म लिया तथा छायावादी कविता ने वायवी होने पर भी संस्कृति के बिखरे हुए सूत्रों को तत्कालीन राष्ट्रीय सन्दर्भों में आकलित किया। स्वतन्त्रता से पूर्व प्रयोगवाद का जन्म हो जाना उस समय के व्यक्ति की मानसिक उद्विग्नता का ही परिचय देता है। प्रयोगवाद में आये अनास्था, शंका और अकेलेपन तथा आत्म-पीड़न के स्वर इस बात का प्रमाण हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध में ब्रिटिश सत्ता ने भारतीयों के साथ विश्वासघात किया। उससे भी पूर्व रोलेट ऐक्टय जैसे नियम बनाकर विदेशियों ने (विदेशी सत्ता ने) भारतीयों के स्वतन्त्रता के स्वप्नों को खंडित कर दिया। सन् '४२ में विदेशी दबाव की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। संघर्ष। पाँच वर्ष तक लम्बा संघर्ष। देश ने हजारों लोगों को बलिदान देते हुए देखा और फिर स्वतन्त्रता मिली भी तो उसकी कीमत देश को विभाजन के रूप में चुकानी पड़ी। इन सभी परिस्थितियों को, बदलते हुए परिवेश को कवि असहाय होकर देख रहा था। वह एक तरह से अपने-आपको राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग कर बैठा था। राष्ट्रीय स्वरों का उच्चारण करने के स्थान पर उसकी कविता कुण्ठा-ग्रस्त हो गई, क्योंकि वह स्वयं कुण्ठा-ग्रस्त हो गया था। वह कुण्ठित इसलिए हो गया कि दमन-चक्रों के विरोध में

वह राष्ट्रीय उद्घोष को अपनी कविता का विषय नही बना सकता था। दूसरे युद्ध मे हुए नर-संहार तथा उसके बाद भी उसे स्वतन्त्रता से वंचित करना पड़ा। यही कारण है कि अकेलापन, अवसाद और निराशा उसकी कविता के प्रमुख स्वर हो गये।

स्वतन्त्रता के पश्चात् ढाई वर्ष देश को सम्हालने और संविधान का निर्माण करने मे गुजर गये और फिर २६ जनवरी १६५० को देश पर भारतीय संविधान लागू हो गया। इस संविधान की अन्य विशेषताओ के अतिरिक्त सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसने व्यक्ति के मौलिक अधिकारो को स्वीकृति दी।

संविधान के भाग ३ मे मौलिक अधिकारो की व्याख्या करते हुए कहा गया है—'यदि प्रसंग से दूसरा अर्थ अपेक्षित न हो तो इस भाग मे 'राज्य' के अन्तर्गत भारत की सरकार और संसद तथा राज्यो म प्रत्येक की सरकार और विधान मण्डल तथा भारत राज्य क्षेत्र के भीतर अथवा भारत सरकार के नियन्त्रण के अधीन सब स्थानीय और अन्य प्राधिकारी भी हैं।"[1]

संविधान मे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन न कर सकने की व्यवस्था भी की गई।[2] पहली बार प्रत्येक नागरिक को बिना किसी धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार के वैधानिक समानता का अधिकार दिया गया।[3] समानता के अतिरिक्त वाक् स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य, शान्तिपूर्वक और निरायुद्ध सम्मेलन, संस्था या संघ बनाने, भारत राज्य क्षेत्र मे सर्वत्र अबाध संचरण, निवास-सम्पत्ति के अर्जन, धारण तथा व्ययन और कोई वृत्ति, उपजीविका या व्यापार करने की स्वतन्त्रता के अधिकार भी प्रत्येक भारतीय नागरिक को प्रदान किए गए।[4] मंगलचन्द्र जैन कागजी के मत से— मौलिक अधिकार राज्य के विरुद्ध अधिकार है। यह राज्य के विरुद्ध संवैधानिक प्रत्याभूति (गारंटी) है।"[5]

मौलिक अधिकारो की स्वीकृति से भारतीय जन-मानस मे एक नयी स्फूर्ति, आशा एवं विश्वास का उदय हुआ। पंचवर्षीय योजनाओ के आने से इस आशा और

---

1 In this part, unless the context otherwise requires—'the State', includes the Government and Parliament of India and the Government and Legislature of each of the States and all local or other authorities within the territory of India or under the control of Government of India

—Constitution of India, Part III, p

2 See Ibid , 13(2)

3 See, Constitution of India, Part III, 14, 15 (1,2)

4 Ibid, 19(1)

5 Constitution of India Mangal Chandra Jain Kagzi p. 147

विश्वास को बल मिला। अब भारत के सामने एक भविष्य था, स्वप्निल भविष्य, जिसे साधारण जन ने रामराज्य के नाम से जाना और उसके निर्माण में प्रत्येक वर्ग जुट गया। नव-निर्माण और भावी सुख की आशाओं ने कर्म की प्रेरणा दी। इसके स्वर नयी कविता में भी स्फुट हुए।

मूल्यों का प्रस्थान बिन्दु

सन् '५० के प्रारम्भ को ही मूल्यों का प्रस्थान बिंदु मान सकते हैं। सन् '५० कोई विभाजक रेखा नहीं है, लेकिन संविधान के लागू हो जाने से लोगों की मनःस्थितियाँ तीव्रता से बदलीं। कवियों ने भी पूर्व मूल्यों को छोड़कर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा करने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया। 'छायावादी काव्य एक विशेष युग की मनःस्थिति से सम्बद्ध रहा है, उसकी सम्पूर्ण उपलब्धि और उसकी सारी सीमाएँ अपने युग-जीवन के सन्दर्भ में ही विकसित हो सकी है, उसकी आत्मानुभूति, सौन्दर्य-बोध, जिज्ञासा, विस्मय और प्रकृति के प्रति सर्वचेतनावादी दृष्टिकोण, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक विद्रोह तथा उन्मुक्त प्रेम की प्रवृत्तियाँ स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन के समान है।'[1] गांधीजी के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन के नवजागरण तथा सांस्कृतिक, दार्शनिक एवं आध्यात्मिक चिन्तन को भी छायावाद ने आत्मसात् कर लिया। लेकिन इन समस्त आदर्शों, स्वप्नों तथा आध्यात्मिक चिंतन के बावजूद जनता का जीवन अन्दर से बौना तथा खोखला था। उसी प्रकार से काव्य का सारा सौन्दर्य, सारी कल्पना तथा सारे आदर्श भी वायवी थे। जनता के जीवन का सारा अध्यात्म, सारी भक्ति तथा आस्था, समर्पण और विश्वास केवल बाह्य आकर्षण पर आधारित था। ठीक इसी प्रकार से छायावाद का सारा रहस्यवाद, आनन्दवाद तथा मानवतावाद भी यथार्थ सन्दर्भों से च्युत तथा अन्दर से हीन और खोखला था। प्रयोगवादी काव्य में भी आन्तरिक विश्वास और आस्था की बहुत कमी थी। उसने जीवन को विकृत और खण्डित रूप में देखा है। दूसरा सप्तक की भूमिका में परम्परा के सम्बन्ध में अज्ञेय ने लिखा है—'परम्परा का कवि के लिए कोई अर्थ नहीं है, जब तक वह उसे ठोक-बजाकर, तोड़-मरोड़कर, देखकर आत्मसात् नहीं कर लेता, जब तक वह एक इतना गहरा संस्कार नहीं बन जाती कि चेष्टापूर्वक ध्यान रखकर उसका निर्वाह करना आवश्यक न हो जाय। अगर कवि की आत्माभिव्यक्ति एक संस्कार-विशेष के वेष्टन में ही सहज सामने आती है, तभी वह संस्कार देने वाली परम्परा कवि की परम्परा है, नहीं तो—वह इतिहास है, शास्त्र है, ज्ञान-भंडार है, जिससे अपरिचित भी रहा जा सकता है। अपरिचित ही रहा जाय, ऐसा हमारा आग्रह नहीं…पर इससे अपरिचित रहकर भी परम्परा से अवगत हुआ जा सकता है और कविता की जा सकती है।'[2] इन पंक्तियों में

१. साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य : डा० रघुवंश, पृ० १५०-५१

२. दूसरा सप्तक : स० अज्ञेय, भूमिका, पृ० ७ (दूसरा संस्करण)

अज्ञेय ने परस्पर दो विरोधी बातें कही हैं। एक ओर तो वे कहते हैं कि कवि जब परम्परा को ठोक बजाकर, तोड-मरोड कर, आत्मसात् कर लेता है, तो वह उसके संस्कार का रूप धारण कर लेती है तथा दूसरी ओर वे कहते हैं कि बिना शास्त्र, इतिहास तथा ज्ञान-भडार को जाने भी परम्परा का अर्जन किया जा सकता है जबकि टी० एस० इलियट की धारणा यह है कि परम्परा अर्जन परिश्रम एव निष्ठा से होता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रयोगवाद ने अन्वेषण की प्रक्रिया अवश्य प्रारम्भ की, लेकिन उसने किसी सत्य की उपलब्धि से पूर्व ही दम तोड दिया और उसकी स्थिति त्रिशकु जैसी हो गई। यही कारण है कि उसका दृष्टिकोण प्राय असामाजिक, सकीर्ण, शकालु तथा कुण्ठाग्रस्त है और अनिर्णय की स्थिति मे ही चीत्कार कर उठता है—

> कौन सा पथ है ?
> 'महाजन जिस ओर जायें' शास्त्र हुकारा,
> 'अन्तरात्मा ले चले जिस ओर' बोला न्याय-पडित,
> 'साथ आओ सर्वसाधारण जनो के' क्रान्ति-वाणी,
> 'पर महाजन-मार्ग गमनोचित न रथ है,
> 'अन्तरात्मा-अनिश्चय'-सशय ग्रसित,
> क्रान्ति गति-अनुसरण-योग्या है न पद-सामर्थ्य।"[1]

इसलिए यह कहा जा सकता है कि जिन मूल्यो की स्थापना छायावाद ने की, वे वायवी और आधारहीन थे तथा जिन मूल्यो की प्रतिष्ठा प्रयोगवाद ने की, उनमे मानवीय गरिमा का अभाव था तथा जीवन के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण न होने के कारण उनसे सन्देह, अनास्था और कुण्ठा आदि तत्वों को प्रश्रय मिला।

सन् '५० के आसपास मूल्यो की जडता टूटी और कवि ने मानवीय गरिमा को पहचानने का प्रयास किया। अत यही कारण है कि इस अवधि को मूल्यो का प्रस्थान बिन्दु माना जा सकता है।

अतीत के दो पक्ष—गौरवशील और लज्जाजनक

भारतीय इतिहास के खण्ड अपनी अपनी युग-चेतना को ध्वनित करते हैं। अतीत का बहुत बडा-भाग आज तक भी अन्धेरे मे है, बहुत बडे भाग का पर्यवेक्षण एव अन्वेषण इतिहासकार निरन्तर कर रहे हैं। राष्ट्रीय आन्दोलन के कोलाहल मे जब

---

१ तारसप्तक भारतभूषण अग्रवाल (स० अज्ञेय), पृ० १०६ (तृतीय सस्करण)

युवा-कवि ने आंखें खोलीं और अपने अतीत को समझने का प्रयास किया, तो सामने स्पष्ट रूप से कोई भी समग्र चित्र न उभर सका। चित्र उभरे, खण्डित चित्र। उसने ऐतिहासिक पृष्ठों से सांस्कृतिक तत्वों को टटोला, सामाजिक चेतना का अन्वेषण किया तथा नैतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का लेखा-जोखा लिया। वे कवि इस बात को जानते थे कि—'प्रत्येक युग का अपना सत्य होता है जो स्वयं युग की समाप्ति के साथ इतिहास के पृष्ठों की शोभा बन जाता है पर उसका प्रभाव युग पर भी पड़ता है पर भी पड़ता है···राजनीतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक सभी कारण मिल-जुलकर युग-सत्य का निर्माण करते है। मानव द्वारा इस युग की अनुभूति ही युग-चेतना है।'[1] नये कवि की कठिनाई इतिहास की कठिनाई थी। उसके सामने युग-सत्य के रूप में कई सत्य उभरे।

नये कवि ने भारतीय इतिहास के गौरवशील पृष्ठों को देखा, उन पर गर्व किया और उन्हें अपने काव्य का कथ्य बनाया। उसके माध्यम से भारत की साधारण जनता में प्राण फूंकने का प्रयास किया, उसके मनोभावों को, उसकी नैतिक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक मान्यताओं को अभिव्यक्ति दी। उसके सामने यदि एक ओर अशोक-काल और गुप्त-साम्राज्य के स्वर्णिम चित्र थे, तो दूसरी ओर मुगल सल्तनत और उसके बाद ब्रिटिश साम्राज्य का एक लम्बा और लज्जाजनक इतिहास भी था। इस ऐतिहासिक काल-खण्ड के सामने उसका सिर लज्जा से झुक गया। उसने स्वयं को हारे हुए, टूटे हुए, झुके हुए, तथा मर्दित पूर्वजों की सन्तान के रूप में देखा। अपने इस रूप से वह स्वयं ही आहत हो उठा। उसके सामने इतिहास के दोनों पहलू थे और वह यह निश्चय नहीं कर पाया कि कौन-सा पथ सही है, कौन-सा गलत। उसने दोनों को स्वीकार कर लिया और फिर उनमें वह अपने खोये हुए अस्तित्व को ढूंढ़ने लगा—

जब मैंने पुस्तक खोली
मुझसे इतिहास पुरुष ने कहा
किसे ढूंढ़ते हो : मुझे ? या अपने को ?
मैंने कहा केवल अस्तित्व को।[2]

अपने अस्तित्व को खोजने की अनिवार्यता को नये कवि ने पहचाना और उसने खोये हुए अस्तित्व को, अन्वेषण करने की यन्त्रणा को भोगा।

भारतीय इतिहास के वैविध्य के सम्बन्ध में लिखते हुए पर्सिवल स्पीअर (Percival Spear) ने कहा है—'यह अपने विस्तृत आयाम और परिप्रेक्ष्य, रंग, वैविध्य, व्यक्तित्व-समूहों के कारण प्रेरणादायक है। अपनी जटिलताओं, लम्बे अस्पष्ट

---

१. माध्यम, कुमार विमल '६८ : पृ० ५१
२. अतुकान्त : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ६२

काल, असामान्य आन्दोलनो तथा ऐश्वर्य और निर्धनता के मध्य, दयालुता और निर्दयता के मध्य, निर्माण और विनाश के मध्य तीव्र विरोधाभासो के कारण चुनौती भी देता है। कुछ लोगो के लिए शानदार शोभा-यात्राएँ और भव्य समारोहो की सुविधा उपलब्ध है और दूसरी ओर बडी सख्या ऐसी थी जिनके लिए केवल मिट्टी की झोपडियाँ और दिन-भर के लिए मुट्ठी भर चावल या बाजरा अथवा छत के स्थान पर जलती अगीठी और सुगन्ध के स्थान पर दमघोटू धून ही उपलब्ध थी।'[1]

भारतीय साहित्य का वैविध्य एक तरह से नये कवि के लिए अभिशाप बन गया। उससे पूर्ववर्ती कवियों ने इतिहास के केवल स्वर्णिम चित्रों को ही आका था, प्रयोगवाद ने भी सीधे रूप से इतिहास पर चोट नही की थी, बल्कि वह कछुए के समान अपने मु ह को अपनी कोटर में दुबका कर बैठ गया। नये कवि ने इस पलायन एव जडता को पहचाना। उसके पलायन को छोडा एव जडता को तोडा। जो इतिहास अनभोगा रह गया था, उसे भी नये कवि ने भोगा। न केवल उसने उस अनभोगे इतिहास को निहारा, बल्कि उसके सभी पक्षों को देखकर उसका पुनर्मूल्याकन भी प्रारम्भ कर दिया।

पुनर्मूल्याकन—भविष्य के प्रति आशका

नये कवि को इस बात का बोध हुआ कि उसका इतिहास केवल उतना नहीं है, जितना उसने अपने पूर्वजो से जाना है, बल्कि उसके अतिरिक्त इतिहास का बहुत बडा भाग ऐसा भी है, जिसे उसने स्वय जानना है। यही से आशका एवं अविश्वास की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। नये कवियो पर प्राय यह दोष लगाया जाता रहा है, कि वे उद्दण्ड हैं और उन्हें अपनी पूर्ववर्ती पीढी पर विश्वास नही है। नये कवि पर यह लगाया गया आरोप सही है कि उसे अपनी पूर्ववर्ती पीढी पर विश्वास नही है। लेकिन प्रश्न उठता है—ऐसा क्यो ?

नये कवि ने पहले अग्रज पीढी पर विश्वास किया। यह पीढ़ी अपने अग्रजो एव

---

1 'It inspiress by its vast range and scope, its color, its variety, its rich cluster of personalities, it challenges with its complexities its long period of obscurity, its unfamiliar movements and its stark contrasts between luxury and poverty, between gentleness and cruelty, creation and destruction For the few with gorgeous processions and rainbow pageantry these were the many with mud huts and a handful of rice or millet a day, with the burnig heaven for a canopy and the stifling dust for perfume'

—'India, A Modern History, by Percival Spear p 3

राष्ट्रीय नेताओं के आदेशों से विदेशी सत्ता से जूझती रही। इनके सामने उच्चादर्श रखे गये, लेकिन जब इसी पीढ़ी ने अपने राष्ट्रीय नेताओं को स्वतन्त्रता के लिए समझौते भी करते पाया, तो उनका विश्वास टूट गया। राष्ट्रीय आन्दोलन में जूझने वाले नवयुवकों ने इस बात को कभी नही सोचा था, न माना था कि देश का विभाजन हो। देश का विभाजन उन युवकों के लिए विश्वासघात था, जिसे बुद्धिजीवी एवं युवावर्ग ने महसूस किया और उन्हें इस बात के लिए विवश कर दिया कि वे सारी स्थिति एवं सारे इतिहास का पुनर्मूल्यांकन करें। उन्हें सारे दर्शन, सारा चिन्तन, सारा आवेग और आवेश थोथा लगने लगा तथा भविष्य के प्रति उनके मन में एक अज्ञात आशंका ने घर कर लिया।

यह नही कि वे देश का नवनिर्माण नहीं चाहते थे, यह भी नहीं कि उन्हें जनता का उत्थान स्वीकार न था, न ही वे आर्थिक योजनाओं के विरोधी थे, बल्कि उन्होंने विरोध किया, समझौतावादी मनोवृत्ति का और सहज मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का स्वर उठाया।

नये कवि ने रक्तपात, शोषण, दमनकारी नीतियां तथा घृणा और संघर्ष को देखा था। वह एक ओर तो इन सभी बातों से बहुत दूर तक आहत था, तथा दूसरी ओर राष्ट्रीयता के नाम पर राष्ट्रीय फार्मूलों को वह स्वीकार न कर सकने के कारण अपने अग्रजों का कोपभाजन बना। उसके सम्मुख इसके अतिरिक्त और कोई चारा न था कि वह सारी स्थिति को अस्वीकार कर दे और सारे अतीत का पुनर्मूल्यांकन करे और ऐसा उसने किया तथा बड़ी निर्ममता के साथ किया। इस सारे पुनर्मूल्यांकन में नये कवि ने स्वय को जड़ स्थितियों के लिए दोषी माना, क्योंकि उसने समय पर सारी स्थिति को नही पहचाना। लक्ष्मीकान्त वर्मा तथा जगदीश गुप्त आदि नये कवियों ने लेखों के माध्यम से स्वयं को भी इन प्रतिकूल परिस्थितियों के लिए दोषी ठहराया है।[1]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद नये कवि ने भी खुशहाली के स्वप्न संजोये थे। उस के मन में भी देश को जागृत और उन्नत देखने की बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। वे भी भारत मे चले आ रहे घृणा के खोटे सिक्कों के चलन को बन्द कर देना चाहता था। उन्होंने राष्ट्र को एक भिखारी के रूप में नहीं बल्कि एक समृद्ध और उन्नत राष्ट्र के रूप में देखने की कल्पना की थी। लेकिन यह सब कुछ नहीं हुआ। वो सब भी नहीं हुआ जिसे जनता ने चाहा, न वो सब, जिसे देश के बुद्धिजीवी वर्ग ने चाहा। बल्कि हुआ वह सब जिसे राजनीतिक नेताओं और उनके संकेतों पर चलने वाले मोहरों ने चाहा। दार्शनिकता, कला, समाज, आफिस-रेस्तरां, हर जगह राजनीति प्रधान होती गई और धीरे-धीरे पूरे राष्ट्र को राजनीति ने जकड़ लिया। श्रेष्ठ कवि भी वही हुए जिन्हें राजनीति ने प्रश्रय दिया। राष्ट्रीय मंच से न निराला श्रेष्ठ हो

---

१. साक्ष्य के लिए देखें 'कल्पना', जनवरी-फरवरी, १९६७ के अंक।

सके और न ही मुक्तिबोध। यही कारण था कि नये कवि का मन भविष्य के प्रति आशंकित हो उठा, वह रोमांस के क्षणों में भी इस आशंका को न छोड़ पाया—

> क्या होगा इस कभी कभी के मधुर मिलन की घड़ियों का?
> जीवन की टूटी टूटी इन छोटी-छोटी कड़ियों का?
> कैसे इनकी विश्रृंखलता मुझको तुझको जोड़ेगी
> क्या कल नाता वहीं जुड़ेगा आज जहां यह तोड़ेगी?[1]

स्थितियों की टकराहट और मूल्यों का नवोन्मेष

डा० शम्भूनाथ सिंह के मत से—'नये मूल्यों की खोज तब की जाती है, जब पूर्व-प्रचलित जीवन-मूल्य या तो ध्वस्त हो जाते हैं या इतने निर्जीव और रूढ़िग्रस्त हो जाते हैं कि नये युग के संदर्भ में उनकी कोई उपयोगिता नहीं दिखाई पड़ती, जिससे बुद्धिजीवी वर्ग की उनमें कोई आस्था नहीं रह जाती।'' ऐसा ही भारतीय समाज में हुआ। मूल्यों के बदलने की प्रक्रिया यूं तो थोड़ी बहुत प्रत्येक युग में चलती रहती है, लेकिन छायावाद ने सबसे पहले मूल्यों में संक्रमण प्रस्तुत किया। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद ने छायावादी मूल्यों को नकार नये मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया। प्रगतिवादी आन्दोलन का भावबोध विदेशी था। उसने भारत की समस्याओं का कोई व्यवहारिक हल नहीं दिया। नारों के अतिशय शोर में प्रगतिवाद पनप नहीं सका। प्रयोगशीलता के अतिशय आग्रह से प्रयोगवादी कविता सम्वेदना के स्तर पर पुष्ट न हो सकी और उसकी जड़ें भी शीघ्र ही हिल गयीं।

प्रथम आम चुनाव के बाद राजनीति प्रमुख बन बैठी और उसने बुद्धिजीवी-वर्ग की धारणाओं का प्राय तिरस्कार कर दिया। इससे सम्पूर्ण बुद्धिजीवी-वर्ग के 'अहं' को चोट लगी। एक बड़ा वर्ग ऐसा भी था, जो केवल सुविधावादी हो गया था और उसने राजनीतिक 'महानता' को स्वीकार कर लिया था। दूसरी ओर युवा-बौद्धिक वर्ग था, जिसने पूरे के पूरे तन्त्र को नकार दिया। उनकी दृष्टि में न केवल राजनीतिक, बल्कि भारत की धार्मिक, सामाजिक और दार्शनिक स्थिति भी जड़ हो गई थी। सभी क्षेत्रों में केवल राजनीति प्रधान हो गई थी। नये कवि ने इसे स्वीकार नहीं किया और यहीं से स्थितियों की टकराहट प्रारम्भ होती है।

एक ओर ऐसा वर्ग था जो बौद्धिक रूप में जड़ होने के बावजूद सभी सुविधाएँ भोग रहा था, क्योंकि उस वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी 'बड़े नेता' का मोहरा था। भारतीय राजनीति इन मोहरों की राजनीति हो गई। अशक्त एवं बौद्धिक रूप से अविकसित एवं जड़ लोगों को महत्वपूर्ण पदों पर आसीन देखकर नये कवि का आहत होना स्वाभाविक था। राष्ट्रीय आन्दोलन में वह किसी से कम हिस्से-

---

१ सीढ़ियों पर धूप में रघुवीर सहाय, पृ० १७

२ प्रयोगवाद और नयी कविता डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ० ५२

दार नहीं रहा और अब वह चाह कर भी इस सारी स्थिति को बदल नहीं सकता था, इससे उसके मन में ईर्ष्या, कुण्ठा तथा घुटन आदि भाव पनप आए, लेकिन फिर भी दूसरों का सुविधा से जीने का ढंग उसने स्वीकार नही किया, बल्कि इस परिवेश पर चोट की—

हे ईश्वर ! सहा नहीं जाता मुझसे अब
औरों की सुविधा से
जीने का ढंग।
सही नहीं जाती है मुझसे
कानाफूसी, मूर्खता,
सिनेमाघर, लड़कियाँ,
खुशामद
और
गर्द।[1] (प्रेस वक्तव्य)

जब उसके पूर्वाग्रह और संस्कारों के बन्धन उसे। जिन्दगी को जिन्दगी के रूप में देखने से रोक देते है, क्योंकि उसकी आंखों पर समाज के सांचे में ढले हुए मूल्यों की रंगीन पट्टियां बंधी हुई हैं, तो वह कह उठता है—

जिन्दगी हर मोड़ पर करती रही हमको इशारे
जिन्हें हमने नहीं देखा।
क्योंकि हम बांधे हुए थे पट्टियां संस्कार की
और हमने बांधने से पूर्व देखा था।
हमारी पट्टियां रंगीन थीं।[2]

नया कवि इन संस्कारों से, जड़ मूल्यों और जड़ धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्थितियों से टकराता है। उसकी टकराहट व्यक्ति से व्यक्ति की टकराहट नहीं, बल्कि जड़ मूल्यों से गतिशील मूल्यों की टकराहट है। वह जानता है कि पूरे समाज, समाज के पूरे मूल्यो को वह बदल न पाएगा, क्योंकि समाज उसके मूल्यों को या गतिशील मूल्यों को स्वीकार करने की स्थिति में नहीं है। इसलिए कभी-कभी वह समाज-विरोधी होकर वैयक्तिक हो उठता है। पूर्ण सत्य की उपलब्धि से पूर्व ही खण्डित सत्य को स्वीकार कर लेता है—

अच्छी कुण्ठारहित इकाई
सांचे ढले समाज से
अच्छा

---

१. मायादर्पण : श्रीकान्त वर्मा, पृ० ८२
२. अरी ओ करुणा प्रभामय : अज्ञेय, पृ० ३२

अपना ठाठ फकीरी
मगनी के सुख साज से ।[1]

वह स्वय को दुविधा की स्थिति मे पाता है। शोर और भीड की चाल को बदल सकने मे वह विवशता का अनुभव करता है, लेकिन फिर सतत् अन्वेषण करता है। जड जीवन मूल्यो और जड स्थितियो पर प्रश्नचिह्न लगाता चलता है—

चारो तरफ शोर है
चारों तरफ भरा-पूरा है
चारों तरफ मुर्दनी है
भीडें और कूडा है
हर सुविधा एक ठप्पेदार
अजनबी उगाती है
हर व्यस्तता
और अकेला कर जाती है
भीड और अकेलेपन के क्रम से कैसे छूटें ?

अविश्वास और आश्वासन के क्रम से कैसे छूटें

. .

तर्क और मूढता के क्रम से कैसे छूटें ।[2]

स्थितियो की टकराहट, पुरानी पीढी और मझली पीढी के मध्य जो सिद्धान्तगत मतभेद एव विरोध पनपे, उन्हीं से मूल्यो का नवोन्मेष हुआ। जडता के स्थान पर गतिशीलता आयी, जिसे धीरे-धीरे पुरानी पीढी ने भी स्वीकार कर लिया।

सन् '५० के बाद मूल्यों मे तेजी से बदलाव आया है। यह बदलाव सास्कृतिक, दार्शनिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा मानवीय स्तरो पर हुआ है। जातीय सकट के कारण मूल्यो के बदने के सम्बन्ध मे टिप्पणी करते हुए रामदेव आचार्य ने लिखा है—'इस जातीय सकट मे मूल्यो और सौन्दर्य तत्वो में बोधगत परिवर्तन आना आवश्यक हो गया है। सौन्दय, हर्ष, उल्लास और विषाद की तथ्यगत स्थितिया बदल गयी हैं। छायावादी दौर के भावुक समर्पण और समाज आज के चतुर आनन्द तत्व मे स्पष्ट अन्तर आ गया है . नयी अनुभूतिया सिद्ध करती हैं कि जीवन के रागात्मक सम्बन्ध बदल गये हैं। आदर्शों के हवामहल और जीवन की खुरदुरी जमीन के बीच का व्यापक अन्तर स्पष्ट है। अत कल तक जो लेखकीय मर्यादाए थीं, मूल्य थे, सौन्दर्य तत्व थे, वे अब मृत हो चुके हैं।'[3]

---

१ अरी ओ करुणा प्रभामय अज्ञेय, पृ० १६
२ जो बध नहो सका गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ३
३ मधुमती, परिचर्चा अक रामदेव आचार्य जन०-फर०, ७०, पृ० ६७

रामदेव आचार्य की इसी बात को दूसरे शब्दो मे इस प्रकार कहा जा सकता है कि नयी कविता ने तेजी से बदलते हुए मूल्यों को अभिव्यक्ति दी। उनके नवोन्मेष को अभिव्यंजना प्रदान की। एक भ्रामक धारणा यह भी रही है कि मूल्यों को नयी कविता ने सायास बदलने का प्रयास किया है, जबकि वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। वस्तुस्थिति यह है कि मूल्य, परिवेश एवं समाज की अनिवार्यताओं के परिणामस्वरूप बदले तथा उन्हें नयी कविता ने सशक्त अभिव्यक्ति दी। यह मूल्योन्मेष का दौर केवल काव्य के क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि कहानी, नाटक और उपन्यास के क्षेत्रों में भी चला। अतः स्पष्ट है कि यदि नयी कविता ने ही मूल्यों को बदला होता फिर यह स्वर साहित्य की अन्य विधाओं मे या तो आ ही न पाते और या फिर इतनी तेजी से न आते। नया कवि तो स्वयं स्वीकार करता है, उसने, केवल उसने मूल्यों को सायास नही बदला, बल्कि उसका योगदान तो इस रूप मे रहा है—

किसी का सत्य था
मैंने सदर्भ में जोड़ दिया।
कोई मधुकोष काट लाया था
मैंने निचोड़ लिया
... ...
यों मैं कवि हूं, आधुनिक हूं, नया हूं
काव्य तत्व की खोज में कहां नहीं गया हूं !
चाहता हूं आप मुझे
एक एक शब्द पर सराहते हुए पढ़ें
पर प्रतिमा, अरे वह तो
जैसी आपको रुचे आप स्वयं गढ़ें।[1]

नये कवि की दृष्टि विशाल और उदार रही है। यही कारण है कि उसने आधुनिक जीवन की बदलती हुई आवश्यकताओं, सामाजिक अनिवार्यताओं तथा काव्य की भंगिमाओं के, अनुरूप बदलते हुए नये मूल्यों को सहज रूप में स्वीकार कर लिया है।

खण्डित होते मूल्य

मूल्यों का नवोन्मेष होने पर उनमें स्थायित्व आ गया हो, ऐसा नही हुआ। सातवें दशक के अन्त तक नही हो पाया। आठवे दशक के प्रारम्भ से ही स्थिति बड़ी स्पष्ट रूप से सामने आने लगी है और मूल्यों में स्थायित्व भी आने लगा है। लेकिन सन् '५० से सन् '७० तक का बीस वर्षों का इतिहास खण्डित होते हुए मूल्यों का इतिहास है।

---

१. नदी की करुणा प्रभामय : अज्ञेय, पृ० २०-२१

स्वतन्त्रता से पूर्व एक साधारण या बौद्धिक रूप से उन्नत किसी भी व्यक्ति ने जो स्वप्न सजोये थे, वे जल्दी ही टूटने लगे। पंचवर्षीय योजनाओ के कारण देश विदेशी ऋण के नीचे दब गया। नेहरू सरकार की नीतियों के कारण भारत का 'समाजवाद' धीरे-धीरे इतना व्यूहबद्ध हो गया है कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था न समाजवादी बन पाई और न ही पूरी तरह से पूंजीवादी। सरकारी नीतियों तथा राजनीति के मोहरो के माध्यम से पूंजीवाद को ही अधिक प्रश्रय मिला और साधारण व्यक्ति महगाई के बोझ से पिसता गया। प्रतिदिन मिलते हुए आश्वासनो से भारतीय जनता का पेट कहां तक भरता? बौद्धिक वर्ग इस स्थिति से झुंझला उठा। लेकिन राष्ट्र के कल्याण और उत्थान के नाम पर प्रत्येक भारतवासी इस आशा के साथ काम में लग रहा कि कभी तो अच्छे दिन आयेंगे पर स्वप्न खण्डित हो गये।

सन् '६२ मे तो भारतीय जनता की आशाओं पर तुषारपात हो गया। चीनी आक्रमण ने शेष स्वप्नो को भी अशेष कर दिया। स्वप्न खण्डित हुए। मूल्य भी खण्डित हो गये। दुनियां को देखने का कवि का दृष्टिकोण ही बदल गया—

यह दुनिया
इक फाहशा औरत की अंधियारी डाली है—
मुझे इस फाहशा के प्यार में यों ही
गुजरते जाने से डर लगता है
बेहद।

. .. ...

मुझे इस धरती को पढ़ने से डर लगता है।[1]

केवल इतना ही नहीं, कविता ने राजनीतिज्ञो की अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में विफलता तथा शान्ति के नाम पर हुए फौजी गठबन्धनो पर भी व्यंग्य किया है—

आज कल
सवेरे सवेरे
नहीं आती बुलबुल
न श्यामा सुरीली
न फुदकी न दहगल
सुनाती है बोली

जैसे ही जागा
कहीं पर अभागा

1 अपनी शताब्दी के नाम, दूधनाथ सिंह, पृ० १७

अड़ड़ाता है कागा
कांय ! कांय ! कांय[1]

नया कवि खोखले मूल्यों तथा खोखली सभ्यता पर व्यंग्य करता है।

चीनी आक्रमण ने देश को पूरे वेग के साथ झकझोर दिया। अब शान्ति के स्थान पर युद्ध की बातें होने लगी। देश को एक बार फिर लज्जाजनक दौर से गुजरना पड़ा। इस बात को प्रत्येक भारतवासी ने अन्दर ही अन्दर महसूस किया। उसके बाद की बढ़ती मंहगाई ने व्यक्ति को उसके नैतिक सदर्भो से पूरी तरह से काट दिया तथा धीरे-धीरे समाज मे अर्थ प्रधान हो गया। देश मे अस्थिरता की लहर ने मूल्यों में नया संक्रमण उत्पन्न कर दिया। समस्त राष्ट्र में एकता के स्वर उठे, जिन्हें सन् '६५ के पाकिस्तानी आक्रमण से बल मिला।

युद्धों में उलझे होने पर भी मानवीय गरिमा तथा मानव-स्वाभिमान को नये कवि ने विस्मृत नही किया। कलाकार और सिपाही की तुलना करते हुए नया कवि युद्ध पर व्यग्य करते हुए सत्य, शिव एवं सुन्दर जीवन-मूल्यो की स्थापना करने का ही प्रयास करता हुआ प्रतीत होता है—

वे तो पागल थे
जो सत्य, शिव, सुन्दर की खोज में
अपने-अपने सपने लिए
नदियों पहाड़ों बियाबानों सुनसानों में
फटेहाल भूखे प्यासे
टकराते फिरते थे
अपने से जूझते थे
आत्मा की आज्ञा पर
मानवता के लिए
शिलाएं, चट्टानें, पर्वत काट-काटकर
मूर्तियां, मन्दिर और गुफाएं बनाते थे।
किन्तु ऐ दोस्त !
इनको मैं क्या कहूं—
जो मौत की खोज में
अपनी अपनी बन्दूकें, मशीनगनें लिए हुए
नदियों, पहाड़ों, बियाबानों, सुनसानों में
फटे हाल, भूखे प्यासे
टकराते फिरते हैं,

---

1. पूर्वा : अज्ञेय, पृ० २२५

दूसरों की आज्ञा पर
चन्द पैसों के वास्ते
शिलाएँ चट्टानें, पर्वत काट-काट कर
रसद, हथियार, एम्बुलैंस, मुर्दागाडियों के लिए
सडकें बनाने हैं
वे तो पागल थे
पर मैं इनको क्या कहूं ![1]

युद्ध की विभीषिका, भयकरता एव सम्पूर्ण प्रक्रिया के आगे नया कवि प्रश्न चिन्ह लगाता है। वह वस्तुत शान्ति को महत्वपूर्ण मानता है और इसी की स्थापना का प्रयास भी करता है। वह जानता है कि युद्ध एक सत्य है, लेकिन वह यह भी जानता है कि शान्ति उससे बडा सत्य है।

प्रयोगवाद से नयी कविता की ओर प्रस्थान

पहले तारसप्तक के प्रकाशन से प्रयोगवाद की शुरुआत होती है। हालांकि अज्ञेय ने 'प्रयोगवाद' नाम को स्वीकार नहीं किया, लेकिन अब यही नाम रूढ हो गया है। उन्होंने भाषा, छन्द, अभिव्यजना-सम्बन्धी कई प्रयोग किये तथा तारसप्तक के कवियो को 'राहो का अन्वेषी' कहा। तारसप्तक मे मुक्तिबोध नेमिचन्द्र, भारतभूषण अग्रवाल तथा रामविलास शर्मा—यह चार कवि तो घोषित कम्युनिस्ट थे। प्रभाकर माचवे तथा गिरिजाकुमार माथुर मार्क्सवाद के समर्थक रहे हैं। एक अज्ञेय ही ऐसे थे जिनकी प्रवृत्ति वैयक्तिक अधिक थी। प्राय इन सभी कवियो की कविताओ मे वैयक्तिक, मानसिक उलझनो, शकाओ, सन्देहो, अनिश्चितता, घुटन, बेचैनी तथा रूढियो के प्रति आक्रोश और अनास्था को ही अभिव्यक्ति मिली है। इस बात को यू भी कहा जा सकता है कि इन कवियो की प्रवृत्ति मूर्ति-भजन की अधिक थी निर्माण की कम। इन कवियो के वक्तव्यो से यह बात स्पष्ट हो जाती है। भारतभूषण अग्रवाल ने अपनी कविताओं के सम्बन्ध मे स्वय स्वीकार किया है— 'अपने अनुभव से मैं, इस-लिए इस बात पर जोर देकर कहना चाहता हूं कि कम से कम मुझे मेरी कविता ने भावो का उत्थान (सब्लिमेशन) नहीं दिया, न उसने मेरे हृदय का परिष्कार किया। कर्म से पलायन ही मेरी कविताओ का स्पन्दन रहा है।'[2] नेमिचन्द्र ने इन्हीं भावो को दूसरे शब्दो मे कहा है—'आज के कवि का मन प्रत्येक समस्या को अपने सामने पाकर जैसे किसी की गोद मे मुह दुबका लेना चाहता है। अपने भीतर ही आत्मस्थ हो लेना चाहता है। व्यक्तित्व आज खण्ड खण्ड हो चुका है।'[3]

---

१ काठ की घण्टिया सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ० ३७१ ३७२
२ तारसप्तक (स० अज्ञेय) भारतभूषण अग्रवाल, प० ३३
३ वही, नेमिचन्द्र जैन, पृ० २२ २६

इससे स्पष्ट होता है कि प्रयोगवादी कवि पलायन की प्रवृत्ति से ग्रस्त तथा विदेशी प्रभाव एवं मनोविज्ञान से इतना आक्रान्त था कि स्वयं से भी सामना कर पाना उसके लिए कठिन हो गया था, और सम्भवतः यही कारण है कि प्रयोगवाद अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सका। उसमें भावना के स्थान पर बौद्धिकता का तथा अनुभूति के स्थान पर अनुभव का आग्रह अधिक था। इनके बोझ से कविता दब सी जाती थी।

इन्हीं कवियों ने स्वयं प्रयोगवाद की केंचुल को छोड़कर नयी कविता को स्वीकार किया। कविता की अनिवार्यता को अज्ञेय पहले से पहचानते थे···'उनकी समस्या थी कि···'जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे समष्टि तक कैसे पहुंचाया जाय— यही पहली समस्या है, जो प्रयोगशीलता को ललकारती है।'[1]

प्रयोगवाद बदलते हुए मूल्यों को सशक्त अभिव्यक्ति न दे पाया, क्योंकि उसमें प्रयोगशीलता का आग्रह अधिक और कविता का आग्रह कम था, इसलिए सन् '५० से प्रयोगवाद से नयी कविता की ओर प्रस्थान माना जा सकता है। नयी कविता का विकास तो सही अर्थों में 'नये पत्ते', 'निकष' और 'नयी कविता' आदि पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ-साथ होता है और इसका विकास आज भी निरन्तर हो रहा है, क्योंकि यह अभी तक एक गतिशील काव्य-धारा रही है, जिसने न केवल प्रयोगवाद को, बल्कि प्रगतिवाद को भी अपने में समाहित कर लिया है।

□

---

१. तारसप्तक (सं० अज्ञेय) : भारत भूषण अग्रवाल, पृ० २७१ (तृतीय सं०)

स्थापना

कविता और नयी कविता परिभाषा विभिन्न आलोचकों के मत

किसी भी कविता का नयी कविता होने से पूर्व कविता होना आवश्यक है। कविता का इतिहास एक लम्बी यात्रा करके नयी कविता तक पहुंच पाया है। भामह की 'शब्दार्थौसहितौ काव्यम्'[1] तथा रुद्रट की 'ननु शब्दार्थौ काव्यम्'[2] जैसी परिभाषाओं को देने के बाद संस्कृत काव्य-परम्परा में एक सहस्र वर्ष बाद यह परिभाषा कुछ स्थान पा सकी—'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द काव्यम्',[3] लेकिन कोई भी काव्य-लक्षण सर्वसम्मत न हो पाया।

हिन्दी कविता आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल की यात्रा करती हुई आधुनिक युग में आकर कई रूपों में बट गई तथा प्रत्येक वर्ग ने अपनी सुविधा के अनुरूप कविता को परिभाषित किया। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय में कविता राष्ट्रीय चेतना से जुडी तो छायावादी कविता ने सांस्कृतिक-दार्शनिक तत्वों को अपने अन्दर समाहित कर लिया तथा प्रगतिवाद ने कविता की परिभाषा समाज से जोड़कर की और प्रयोगवाद के प्रणेता ने कहा कि 'साधारण का साधारण वर्णन कविता नहीं है, कविता तभी होती है जब साधारण पहले निजी होता है और फिर व्यक्ति में से छनकर साधारण होता है।'[4] नयी कविता के व्याख्याता डा० जगदीश गुप्त ने कविता की परिभाषा देते हुए कहा—'कविता सहज आन्तरिक अनुशासन से युक्त वह अनुभूतिजन्य सघन लयात्मक शब्दार्थ है जिसमें सह-अनुभूति उत्पन्न करने की यथेष्ट क्षमता निहित रहती है।'[5] एजरा पाउण्ड के मत से—'काव्य एक प्रकार का प्रेरित गणित है, जो हमें समीकरण प्रदान करता है। सख्म संख्याओं, वृत्तों आदि के नहीं, बल्कि मानव-सम्वेदनाओं के समीकरण। यदि किसी

---

१ काव्यालंकार भामह (१।१६)
२ काव्यालंकार रुद्रट (२।१)
३ रस गंगाधर जगन्नाथ, १ म आ०, पृ० ४८
४ आत्मनेपद अज्ञेय, पृ० ४२
५ नयी कविता, अंक ५ ६ डा० जगदीश गुप्त, पृ० २२

की बुद्धि विज्ञान की अपेक्षा जादू की ओर अधिक उन्मुख होती है, तो वह शायद इन समीकरणों को सम्मोहन अथवा जादू-टोना कहेगा, वस्तुतः ये अधिक जादुई, रहस्यात्मक और गूढ़ लगते हैं।"[1]

कविता में अनुभूति की अनिवार्यता को प्रायः सभी ने स्वीकार किया है। नयी कविता पर विचार करते हुए भी हम इस संदर्भ को न छोड़ेंगे।

नयी कविता की शुरुआत सन् १९५० के आसपास मानी जा सकती है। 'तारसप्तक' के प्रकाशन तथा उसके बाद भी प्रयोगवादी रचनाओं ने नयी कविता के लिए एक भावभूमि तो तैयारकर ही दी थी, जिसको आधार मानकर नयी कविता का विकास हुआ।

छायावाद का जन्म द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मकता के विद्रोह के फलस्वरूप हुआ तो प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का जन्म छायावादी वायवी कल्पनालोक के विरोध में हुआ। प्रगतिवाद का आधार विदेशी था और प्रगतिवादी काव्य ने तत्कालीन छायवादी काव्य की कोमलता के विरोध में ठोस सत्यों को मान्यता देने का प्रयास किया। प्रयोगवाद का जन्म भी एक अर्थ में विद्रोहात्मक ही है, लेकिन उसके पीछे यूरोप में 'न्यू राइटिंग' आन्दोलन का प्रभाव भी काम कर रहा था। प्रयोगवाद ने काव्य के क्षेत्र में आमूल परिवर्तन उपस्थित कर दिए। लेकिन नई कविता की स्थिति इससे कुछ भिन्न है।

नयी कविता का स्वर विद्रोह का स्वर नहीं, बल्कि रोष, क्षोभ और मानवीय सत्यों को स्थापित करने का स्वर है। इसलिए यह मानने में संकोच नही होना चाहिए कि नयी कविता प्रयोगवाद का सहज विकास है। प्रयोगवाद की रूक्षता और मात्र प्रयोगशीलता को त्याग कर नई कविता ने सत्य के विविध आयामों का उद्घाटन किया, मानवीय सम्वेदनाओ के गहन स्तरों को प्रतिष्ठापित किया, मानव-मूल्यों को सशक्त अभिव्यक्ति दी। अतः नयी कविता के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि न तो किसी वर्ग सत्य का प्रतिष्ठापन करती है, न अर्द्ध सत्य का और ना ही प्रगतिसत्य या देश सत्य का; बल्कि नयी कविता भोगे हुए सत्य, झेले हुए सत्य, अनुभूत सत्य और उपलब्ध सत्य को अभिव्यक्ति देती है। यही कारण है कि वह अन्य काव्यधाराओं की अपेक्षा मानव के अधिक करीब है। उसमें प्रगतिवाद जैसी

---

1. 'Poetry is a sort of inspired Mathematics, which gives us equations, not for abstract figures, triangles, spheres and the like, but the equations for human emotions. If one has a mind which inclines to magic rather than science, one will prefer to speak of these equations as spells or incontations, it sounds more arcane, mysterious, recondite.'

—The poetry of Ezra Pound—Hugh Kenner, p. 57

अनगढता, द्विवेदीकालीन उपदेशात्मकता, छायावादात्मक भावुक कल्पना या केवल प्रयोग के लिए स्थापित सत्य नही है।

नयी कविता ने किसी भी अनुभूत सत्य से अपने को बचाने का प्रयास नही किया है और सम्भवत यही कारण है कि उसमे सर्वत्र बिखराव आ गया है। वस्तुत 'नयी कविता का बिखराव एक नयी व्यवस्था और नयी अभिव्यक्ति की अकुलाहट है और उसका रूखापन अथवा परम्परा से भिन्न उसका व्यापन स्वय मे एक रस की सृजनानुभूति है।"[1]

नयी कविता पर प्राय ये आक्षेप लगाये गए कि वह कुण्ठाओं से ग्रस्त कविता है। वह परम्परा से पलायन करती है और अनभोगे सत्य की स्थापना का प्रयास करती है, वह अनास्थाशील और अनियोजित विद्रोह की कविता है। विषयवस्तु की दृष्टि से उसमे कोई नवीनता नही। केवल शिल्प की नवीनता है और वह भी मात्र चमत्कार-प्रदर्शन के लिए। रसवादी आलोचको ने उसे रसहीन तथा कतिपय समाजवादी आलोचकों ने उसे समाज से कटी हुई काव्यधारा की सज्ञा से अभिहित किया। लेकिन अब इस बात की स्थापना हो चुकी है कि जितने मुक्त मन से नयी कविता ने समस्त विचारधाराओ का स्वीकार किया है, उतना अन्य कोई भी काव्यधारा नहीं कर पाई है, क्योकि नयी कविता मे प्रश्न विचारधारा का नही, बल्कि अनुभूत या उपलब्ध सत्य का है। यही कारण है कि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनो धाराएँ स्वत ही नयी कविता मे घुल-मिल गईं। इसका प्रमाण यह है कि प्रयोगवादी कवियो जैसे अज्ञेय और प्रगतिवादी कवियो जैसे रामविलास शर्मा ने नई कविता के समृद्ध बनाने मे योगदान दिया।

नयी कविता का रूप बहुत दिनों तक अस्पष्ट-सा रहा। यह तय नही हो पाया कि नयी कविता के मूल्य क्या हैं? उनकी विशिष्टताएँ क्या हैं और वे कौन सी ऐसी बातें हैं जो उसे अपने पूववर्ती काव्य से अलगाती हैं। यह काय कवियो को स्वय करना पडा और उन्होंने अपने दृष्टिकोण से नयी कविता को परिभाषित करने का प्रयास किया।

विश्वम्भर 'मानव' ने कहा कि—'नयी कविता परिस्थितियो की उपज है।"[2] हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार—'नई कविता आज की मानव विशिष्टता से उद्भूत उस लघु मानव के लघु परिवेश की अभिव्यक्ति है जो एक ओर आज की समस्त तिक्तता और विषमता को तो भोग ही रहा है, साथ ही उन समस्त तिक्तताओ के बीच वह अपने व्यक्तित्व को भी सुरक्षित रखना चाहता है।"[3]

डा० रामगोपाल 'दिनेश' ने नई कविता को दो प्रवाहो—व्यक्तिनिष्ठ और

---

१ नयी कविता के प्रतिमान–पुरोवचन लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ३

२ नयी कविता नये कवि विश्वम्भर मानव, पृ० १६

३ हिन्दी साहित्य कोश–भाग १ सम्पादक धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ४०१

समाजनिष्ठ—की कविता माना है।[1] डा० इन्द्रनाथ मदान के मत से—'नयी कविता का उद्देश्य जीवन की नवीन परिस्थिति, उसके नवीन स्तरों एवं धरातलों को व्यक्ति-सत्य की दृष्टि से अभिव्यक्ति देना है।'[2]

अज्ञेय के शब्दों में—'नयी कविता सबसे पहले एक नयी मनःस्थिति का प्रतिबिम्ब है—एक नए मूड का—एक नये राग सम्बन्ध का।'[3] डा० शम्भूनाथ सिंह के मत से—'नयी कविता में नवीन जीवन-मूल्यों की स्थापना का विशेष आग्रह दिखाई पड़ता है।'[4] बालकृष्ण राव ने नयी कविता के स्वर की स्थापना करते हुए कहा है—'नयी कविता का सच्चा, आधुनिक, स्वस्थ स्वर व्यक्ति का स्वर है, समूह का कोलाहल नही, पर उस व्यक्ति के स्वर मे ही समूह मुखरित हो उठा है।'[5] दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि एक मे अनेक की छायावादी कल्पना ने सत्य का रूप नयी कविता मे ही ग्रहण किया है।

मुक्तिबोध का दृष्टिकोण जहाँ एक ओर कवि का दृष्टिकोण है, वहाँ दूसरी ओर एक वैचारिक का भी है। उनके मत से—'नयी कविता उस प्रकार की आईवरी टावर की रोमांटिक स्वप्नशीलता की, एकान्तप्रिय आत्म-रतिमय आध्यात्मिकता की कविता नही है, जैसी कि पुराने रोमांटिक युग की हुआ करती थी। वह मूलतः एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव-हृदय की पर्सनल सिचुएशन की कविता है।'[6]

नयी कविता के स्वरूप को समझने का प्रयास करते हुए कवि आलोचक लक्ष्मीकान्त वर्मा ने कहा है—'नये कवि के नयेपन में···ऐतिहासिक, वैयक्तिक, सामाजिक और आत्म-व्यंजक सत्य के वे आयाम और धरातल विकसित हुए हैं जो परम्परा से भिन्न होते हुए भी, सभी सार्थक एवं समर्थ रूप मे नयी अभिव्यंजना को अवतरित करते हैं।'[7] एक अन्य लेख में वर्मा जी ने कहा है—'नयी कविता का मूल वृत्त उन बिन्दुओं का समूह है जिसमें वे सभी तत्व समन्वित हैं, जो नये सौन्दर्य-बोध से विकसित होते हैं।'[8]

इनके अतिरिक्त रामस्वरूप चतुर्वेदी, धर्मवीर भारती, गिरिजाकुमार माथुर, अजितकुमार तथा रामविलास शर्मा आदि नये कवियो ने भी नयी कविता को कम-बहुत इन्हीं धारणाओं के अनुकूल पारिभाषित किया है। डा० रामदरश मिश्र के शब्दों में—'नयी कविता भारतीय स्वतन्त्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं को कहा

---

१. आलोचना (अस्तित्ववाद और नयी कविता), पृ० ३०
२. आधुनिक कविता का मूल्यांकन : इन्द्रनाथ मदान, पृ० ८७
३. हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य : अज्ञेय, पृ० १४१
४. प्रयोगवाद और नयी कविता : डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ० १४६
५. कल्पना, नवम्बर '५६ : बालकृष्ण राव, पृ० १
६. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र : गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ० ५४
७. नये प्रतिमान-पुराने निकष : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० १७३-७४
८. नयी कविता के प्रतिमान : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ३२

गया, जिनमे परम्परागत कविता से आगे नये मूल्यो, नये भाव-बोधो और नये शिल्प-विधान का अन्वेषण किया गया है।"[1]

इन सभी परिभाषाओ पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो एक शब्द 'नया' सबमे समान रूप से मिलता है। नया शिल्प, नया भावबोध, नये मूल्य, नयी परिस्थितियाँ, नये राग-सम्बन्ध तथा नये मूड। 'नये' से इन कवि-आलोचकों का तात्पर्य क्या है? क्या इससे पूर्व कुछ नया ही नही था और केवल नये कवियो ने ही कुछ ऐसा 'नया' खोजा जो इससे पहले नहीं था।

यह बात सत्य है कि इन कवियो ने नयी कविता को एक अलग भावभूमि दी, लेकिन इसके साथ यह भी सच है कि नयी कविता ने फैशन की कविता को भी प्रश्रय दिया। लेकिन अब स्थिति वह नही रही जो सन् '६० के आसपास थी। सन् '६० के आसपास की कविता के तीन रूप दृष्टिगोचर होते हैं—पहला रूप केवल आकारात्मक अर्थात् शिल्पगत था। कविता का कथ्य उसमे नहीं बदला। दूसरे प्रकार की कविता उन कवियो की थी जो अनुभूति के क्षेत्र से कही भी आधुनिक नही थे। उनकी कविता लक्ष्मीकान्त वर्मा के शब्दो मे संस्कारच्युत कविता (डिबेस्ड पोयट्री) थी, तथा तीसरी प्रवृत्ति आधुनिकतावादी जिसमे केवल आधुनिकता का मोह था। ऐसी कविता को 'छद्म (सूडो) नयी कविता' कह सकते हैं।

वस्तुत नयी कविता को समझने की प्रक्रिया यही से प्रारम्भ होती है। परिभाषा के खतरो से बचते हुए नयी कविता के संबंध मे कहा जा सकता है—

नये भाव-बोधो, नये मूल्यो तथा परम्परा के संघात से उत्पन्न अनुभूति को नये शिल्प-विधान मे सम्प्रेषित करने मे सक्षम कविता नयी कविता है।

नया कवि स्वयं नयी कविता के सम्बन्ध मे क्या सोचता है, इसको देख लेना अवांछित न होगा। 'नया कवि आत्मस्वीकार' मे अज्ञेय ने कहा है—

किसी का सत्य था
मैंने सन्दर्भ मे जोड़ दिया।
कोई मधुकोष काट लाया था
मैंने निचोड़ लिया।

किसी की उक्ति मे गरिमा थी
मैंने उसे थोड़ा सा सँवार दिया
किसी की सम्वेदना मे आग का ताप था
मैंने दूर हटते-हटते उसे धिक्कार दिया।

. .

---

१ हिन्दी कविता-तीन दशक रामदरश मिश्र, पृ० ९७

किसी की पौध थी
मैंने सींची और बढ़ने पर अपना ली
किसी की लगायी लता थी
उसे मैंने दो बल्ली गाढ़ उसी पर छवा ली।

किसी की कली थी
मैंने अनदेखे में बीन ली
किसी की बात थी
मैंने मुंह से छीन ली।

यों मैं कवि हूं आधुनिक हूं, नया हूं
काव्य तत्व की खोज में कहां नहीं गया हूं !
चाहता हू आप मुझे
एक एक शब्द पर सराहते हुए पढ़ें
पर प्रतिमा, अरे वह तो
जैसे आप को रुचे, आप स्वय गढ़ें।[1]

प्रस्तुत नयी कविता आज की कविता के कथ्य एवं आज के कवि की काव्य-प्रक्रिया की ओर स्पष्ट संकेत करती है। सम्प्रेषणीयता तथा साधारणीकरण जैसे विषयों को आज का कवि पाठक पर ही छोड़ देता है। नयी कविता मात्र आज के भाव-बोधों को काव्यात्मक शैली में रूपायित करती है, वह न तो उपदेश देती है और न ही किसी भी प्रकार के घेरों में बांधने का प्रयास ही करती है।

'नयी' शब्द और अर्थ-सन्दर्भ

नयी कविता का 'नयी' नाम भ्रामक है, ऐसा कहा जाता है। कतिपय आलोचकों ने इसका विरोध किया, कुछ अब भी करते हैं, क्योंकि उनका मत है कि प्रत्येक युग में लिखी गई कविता उस काल खण्ड विशेष के लिए नयी ही होती है। कालिदास की कविता अपने समय में नयी ही थी—लेकिन समय के अन्तराल के कारण वह उन अर्थों में 'नयी' नहीं रही।

इस सम्बन्ध में डा० जगदीश गुप्त की यह पंक्तियाँ उल्लेख्य हैं—'नयी कविता लिखना और नयी कविता के स्टाईल में लिखना सर्वथा भिन्न बातें हैं।'[2] बात सत्य भी है, क्योंकि आज जब हम नयी कविता की बात करते हैं, तो जानते हैं कि वह किसी विशेष सन्दर्भ से जुड़कर अपना अर्थ देती है। जिस प्रकार से तत्कालीन हिन्दी साहित्य के युग का 'आधुनिक-काल' तथा पूर्ववर्ती कविता का नाम 'प्रयोगवाद' हो गया है, उसी प्रकार से आज की कविता का नाम 'नयी कविता' हो गया है। रामस्वरूप

---

१. अरी ओ करुणा प्रभामय : अज्ञेय, पृ० २०-२१
२. ज्ञानोदय, नवम्बर १९६६ : डा० जगदीश गुप्त पृ० १२

चतुर्वेदी के शब्दों में—'नव' शब्द लेखक अथवा युग का परिचायक न होकर नवीन परिप्रेक्ष्य का द्योतक है।"[1] उन्होंने यह भी कहा है—'नवलेखन वस्तु, विधान, भाषा अथवा शैली-सम्बन्धी आन्दोलन नहीं है, वही तो समस्त साहित्यिक कृतित्व को नया परिप्रेक्ष्य, एक नवीन मर्यादा प्रदान करता है।"[2]

अत अब 'नयी' शब्द के सम्बन्ध में किसी प्रकार की भ्रामक धारणा नहीं रह गयी है, क्योंकि 'नयी' शब्द एक विशेष प्रकार की काव्य-चेतना के लिए रूढ हो गया है। डा० नित्यानन्द तिवारी का मत है कि 'नयापन' किसी भी अर्थ में चल रही परम्परा का एकरस अनुकरण नहीं है। वह व्यक्ति की अपनी-अपनी दृष्टि के द्वारा युग-सम्वेदना से जुड़ने पर ही हासिल किया जा सकता है।"[3] जैसा कि अज्ञेय ने अपनी कविता में यह कहकर सकेत किया है—

पर प्रतिमा, अरे वह तो
जैसी आप को रुचे, आप स्वयं गढ़ें।[4]

प्रयोगवाद और नयी कविता में अन्तर

प्राय प्रयोगवाद और नयी कविता को एक साथ मिलाकर देखने का प्रयास अधिक हुआ है—उन्हें अलगाने का प्रयास कम। वस्तुत यदि गहराई से देखा जाय तो नयी कविता और प्रयोगवाद को पूरी तरह से अलगा पाना सम्भव भी नहीं है, क्योंकि जिन कवियों ने प्रयोगवादी रचनाएँ लिखीं, वही कवि नयी कविता के क्षेत्र में भी आए। अज्ञेय ने यदि प्रयोगवाद का प्रणयन किया तो नयी कविता में भी उनका स्थान शीर्षस्थ है। एक ही व्यक्ति के दो पहलू चाहे कितने ही अलग-अलग क्यों न हों, उनमें फिर भी कुछ न कुछ मिलावट तो रहती ही है। मनोविज्ञान इस बात की पुष्टि करता है।

प्रयोगवाद का जन्म प्रगतिवाद की कुक्षि से और छायावाद के विरोध में हुआ। तारसप्तक के प्राय सभी कवियों पर, केवल गिरिजाकुमार माथुर को छोड़ कर—मार्क्सवाद का प्रभाव देखा जा सकता है। 'मुक्तिबोध' की कविता 'पूँजीवादी समाज के प्रति', नेमिचन्द्र जैन की कविता 'कवि गाता है', भारत भूषण की 'जागते रहो', प्रभाकर माचवे की 'निम्न मध्यवर्ग' तथा 'दा ज्दास्तव्युन सविस्त्स्की सोयूज' रामविलास शर्मा की 'विश्वशांति' तथा अज्ञेय की 'जनाह्वान' इस बात का प्रमाण हैं कि ये कवि मार्क्सवाद से प्रभावित थे। इस प्रकार प्रयोगवाद विरोध तथा विकास का मिलाजुला रूप है जबकि 'नयी कविता एक सहज विकास के क्रम में है और यद्यपि प्रत्यक ऐसी कविता का उस कविता से प्रत्येक युग में संघर्ष रहा है जो लीक से

---

१ हिन्दी नवलेखन रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ० ११ १२
२ वही, पृ० ११-१२
३ माध्यम, अगस्त '६६ डा० नित्यानन्द तिवारी, पृ० ४६
४ अरी ओ करुणा प्रभामय अज्ञेय, पृ० २१

बंधी होने के कारण दुर्वह हो जाती है। नयी कविता का संघर्ष अपनी पूर्ववर्ती कविता से नहीं के बराबर है, क्योंकि उसका प्रारम्भ ही एक ऐसी रिक्तता से हुआ है, जिसे पूर्ववर्ती कविता छोड़ गयी थी।"[1]

प्रयोगवादी और नयी कविता में दूसरा अन्तर यह है कि प्रयोगवादी काव्य व्यक्तिवादी है जबकि नयी कविता व्यक्तित्ववादी काव्य है। तारसप्तक का कवि घोर अन्तर्मुखी कवि था। हरिनारायण व्यास का यह वक्तव्य द्रष्टव्य है, 'तारसप्तक का व्यक्तिवाद वस्तुतः शेखर की वैयक्तिकता का ही काव्यात्मक रूप था...इस प्रकार हिन्दी का यह व्यक्तिवाद हमारे मन की प्रगति का मेरुदण्ड बनकर सामने आया। तारसप्तक का कार्य घोर अन्तर्मुखी हो जाता है और उसके कण्ठ से चीत्कारें फूट पड़ती हैं। तारसप्तक मे इन्ही चीत्कारों का प्राधान्य है।'[2] इस कथन से यह बात स्पष्ट होती है कि प्रयोगवाद अति अहं से युक्त रहा है, जबकि नयी कविता के कवि ने मानव-व्यक्तित्व को संवारने का प्रयास किया है। इस प्रक्रिया में वह कोरा व्यक्तिवादी नही हो पाया है।

नयी कविता और प्रयोगवाद मे तीसरा बड़ा अन्तर यह है कि नयी कविता सश्लेषण और सामंजस्य की कविता है जबकि प्रयोगवाद द्वन्द्व और प्रतिक्रिया की कविता है। अर्थात् यदि छायावाद को स्थिति (थीसिस) स्वीकार कर लें तो प्रयोगवाद उसका ऐंटी-थीसिस या प्रतिस्थिति कहलायेगा तथा नयी कविता सिंथेसिस या संस्थिति कहलायेगी। इसका अर्थ यह नही कि नयी कविता समझौतावादी है। प्रयोगवाद की तरह से, बल्कि उससे भी अधिक मुखर क्रांति के स्वर नयी कविता में हैं, लेकिन वे स्वर प्रयोगवाद की तरह विशृंखल या अनिर्दिष्ट नही हैं। उनकी एक दिशा है और वह दिशा है बदलते हुए परिवेश को स्वयं को पहचानने की।

चौथा अन्तर यह है कि प्रयोगवाद ने सत्य का अन्वेषण प्रारम्भ किया लेकिन उपलब्धि होने से पूर्व ही उसने दम तोड़ दिया, जबकि नयी कविता ने सत्य के क्षेत्र में कई मानव-सत्यों को पहचाना, उन्हें उद्घाटित किया। नये कवि की सत्य के प्रति तीव्र अनुभूति है, उसे सत्य की चोट का अहसास है। इसी से वह कह उठता है—

मैं नया कवि हूं,
इसी से जानता हूं
सत्य की चोट बहुत गहरी होती है,
मैं नया कवि हूं,
इसी से मानता हूं
चश्मे के तले भी दृष्टि बहरी होती है,

---

१. कल्पना, मार्च, '६३ : विद्यानिवास मिश्र, पृ० ३५
२. हमारा मन्तव्य : डॉ० नगेन्द्र, पृ० ५८-५९

इसी से सच्ची चोटें खाता हूँ—
झूठी मुस्कानें नहीं बेचता।[1]

—सर्वेश्वर

प्रयोगवाद और नयी कविता में पाँचवा अन्तर यह है कि जीवन के प्रति प्रयोगवाद का दृष्टिकोण अनास्थाशील हो उठा, जबकि नयी कविता जीवन के आस्वादन में विश्वास करती है अर्थात् नयी कविता जीवन के सम्पूर्ण उपभोग में अगाध विश्वास रखती है। सम्पूर्ण उपयोग से तात्पर्य है जीवन को उसकी सम्पूर्ण कुरूपताओं तथा विद्रूपताओं के साथ भोगने का साहस। छायावाद ने पलायन किया, प्रगतिवाद ने उद्‌बोधन किया, प्रयोगवाद व्यक्ति तक सीमित रहा, सम्पूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति नयी कविता में ही मिल पाई है। आज की क्षणवादी एवं लघुमानववादी दृष्टि जीवन-मूल्यों के प्रति नकार की नहीं, बल्कि स्वीकार की दृष्टि है। आज कवि अपनी लघुता को, अपनी विफलताओं को झुठलाता नहीं, बल्कि उन्हें स्वीकार कर लेता है—

मैं उठता हूँ और उठ कर
खिड़कियाँ-दरवाजे
और कमीज के बटन
बन्द कर लेता हूँ
और अपनी फुर्ती के साथ
एक कागज पर लिखता हूँ
मैं अपनी विफलताओं का
प्रणेता हूँ।[2]

—श्रीकान्त वर्मा

नयी कविता और प्रयोगवाद का छठा अन्तर उनके कथ्य में रेखांकित किया जा सकता है। प्रयोगवाद ने व्यक्ति मन के गहन स्तरों को खोला। इससे एक तो अचेतन मन की उलझी हुई सम्वेदनाओं को अभिव्यक्ति मिली, दूसरे शिल्प का अन्वेषण हुआ। पर इसमें प्रयोगवाद की यह हानि हुई कि वह धीरे-धीरे समाज से कटता चला गया, जबकि नयी कविता लोकानुभूतियों से जुड़कर सामाजिक दृष्टिकोण से भी सम्पन्न रही। मन मत्यों की खोज में प्रयोगवादी कवि अत्यन्त अन्तर्मुखी हो गया और यौन-जीवन-कुण्ठाओं से निर्मित व्यक्तित्व की अहंकेन्द्रित गति एवं चिन्तन को स्वर देने लगा। अनास्था, कुण्ठा, पीड़ा और अस्वीकृति के स्वर नयी कविता में भी हैं, लेकिन नयी कविता में इन सबके बीच कहीं भविष्य के प्रति आस्था और विश्वास भी है। नया कवि या नयी कविता अहं से मुक्त नहीं है, लेकिन उसके अहं में आत्म-विसर्जन की भावना भी है। उसके अहं का विगलन हो जाता है, जब वह कहता है—

---

१ काठ की घंटियाँ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ० ४२५
२ माया दर्पण श्रीकान्त वर्मा, पृ० १०१

राह जिसकी है—उसी की है
कगारे काट, पत्थर तोड़,
रोड़ी कूट, तू पथ बना, लेकिन
प्रकट हो जब जिसे आना है
तू चुपचाप रास्ता छोड़,
मुदित मन वार दे दो फूल
उसे आगे गुजरने दो।[1] —अज्ञेय

प्रयोगवाद और नयी कविता में एक स्पष्ट अन्तर और है कि प्रयोगवाद में बिम्बात्मकता, विशेषतः प्रतीकात्मक बिम्बात्मकता का नितान्त अभाव है। प्रयोगवाद ने या तो वक्तव्य दिये हैं या विचार। बिम्बों की दृष्टि से वह कमजोर कविता है। जबकि नयी कविता प्रमुखतः बिम्बों की ही कविता है। नया कवि बिम्बों के माध्यम से विचार नहीं, बल्कि प्रभाव देता है। कहीं तो खंडित बिम्बों के होने से प्रभाव भी खंडित होता है और कहीं बिम्बों की पूर्णता से समग्र प्रभाव एक साथ पाठक-मन पर पड़ता है। नयी कविता के बिम्बों को समझने के लिए उन्हें एक सन्दर्भ के साथ जोड़ कर देखने की आवश्यकता है, यदि उन्हें उनके सन्दर्भ से अलग कर दिया जाय, तो बिम्ब की प्रभावात्मकता भी नष्ट हो जाती है। औद्योगिक बस्ती नयी कविता में इस प्रकार से अभिव्यक्ति पाती है—

बंधी लीक पर रेलें लादे माल
चिहुंकती और रंभाती अफराये ढांगर सी
ढिलती चलती है।[2] अज्ञेय

रघुवीर सहाय की ये पंक्तियां अत्यंत सूक्ष्म बिम्ब की योजना है—

वही आदर्श मौसम
मन में कुछ टूटता सा
अनुभव से जानता हूं कि यह वसन्त है।[3] —रघुवीर सहाय

इस अन्तर को प्रयोगवाद और नयी कविता का सातवां अन्तर मान सकते हैं।

प्रयोगवाद तथा नयी कविता में आठवां अन्तर यह है कि प्रयोगवाद ने आधुनिकता को फैशन के रूप में स्वीकार किया और मात्र आधुनिक बनने की प्रक्रिया में ही उसकी इतिश्री हो गयी। नयी कविता ने आधुनिकता को न केवल स्वीकारा, बल्कि उसे व्यापक सन्दर्भों में समझा भी। मानव के भविष्य के प्रति आस्था, सृजनात्मक व्यक्तित्व की खोज तथा आत्मोपलब्धि, अमूर्त सत्य की अभिव्यक्ति तथा व्यक्ति को उसके परिवेश में रखकर देखना आधुनिक-बोध के ही विविध पक्ष हैं। वस्तुतः आधु-

१. अरी ओ करुणा प्रभामय : अज्ञेय पृ० ५२
२. वही, पृ० ४७
३. सीढ़ियों पर धूप में : रघुवीर सहाय, पृ० १७१

निकता द्रुतगति से बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार जीवन को समझने की, उसके भविष्य का आकलन कर लेने की प्रक्रिया है। इसलिए आज कवि स्वयं से भी साक्षात्कार करता है।' आत्मजयी' के नचिकेता का शान्तिबोध कवि का ही आत्म-साक्षात्कार है और उसी मे आत्मविस्तार पाता है--

सूर्योदय
एक अंजलि फूल
जल से जलधि तक अभिराम।

इस अपरिमित मे
अपरिमित शान्ति की अनुभूति।
अक्षय प्यार का आभास

जीवन हर नये दिन की निकटता
आत्मा विस्तार।[१] —कुंवर नारायण

शमशेर व्यक्तित्व की विराटता का साक्षात्कार इस रूप मे करते हैं।

एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता
पूरब से पश्चिम को एक कदम से नापता
बढ रहा है।[२]

प्रयोगवाद एवं नयी कविता के रूप शिल्प को लेकर उनमे नवे अन्तर का आकलन किया जा सकता है। वस्तुतः प्रयोगवाद ने शब्दो के साथ प्रयोग किये, जबकि नयी कविता ने यथार्थ धरातल पर नयी कविता को नये अर्थ-सन्दर्भ दिए। प्रयोगवाद मे कई बार तो ऐसा लगता है कि शब्दो की ठेल-पेल मे सत्य खो सा गया है। सत्य का अन्वेषण प्रयोगवाद ने किया, लेकिन वह शब्दों एवं अतिखंडित बिम्बों से आवृत हो गया। सत्य का अन्वेषण नयी कविता ने भी किया और शब्दो को अनेक अर्थ दिए। नया कवि इस बात को जानता है कि सत्य की खोज मे शब्द व्यवधान बन जाते हैं, क्योंकि एक सत्य की अभिव्यक्ति के लिए शब्द अनेक अर्थ देता है। अतः इस स्थिति मे शब्द या तो सत्य को आवृत कर लेता है, या फिर कई सत्यों की अनुभूति देता है। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने कहा भी है—'सजगता और वैविध्य के कारण आज का कलाकार अपने सम्प्रेषण को वैसा निर्दिष्ट बनाने का यत्न नहीं करता। करता। वह अनुभूति को एक पूरी श्रेणी सम्प्रेषित करता है।'[३] डरेल ने कहा है—

---

१ आत्मजयी कुंवरनारायण, पृ० १०४ १०५
२ कुछ और कविताएँ शमशेर बहादुर सिंह, पृ० ७
३ कल्पना, मई '६३ रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ० ३९ ४०

'बताने की प्रक्रिया में सत्य विलुप्त हो जाता है' उसे सम्प्रेषित ही किया जा सकता है, कहा नही जा सकता।"[1] इसलिए नयी कविता अमूर्त की ओर चलती है और नया कवि शब्द-अर्थ के बीच सेंध लगाकर उनके वैषम्य को दूर करके अपनी सही अनुभूति को सम्प्रेषित करना चाहता है—

> यह नहीं कि मैंने सत्य नहीं पाया था,
> यह नहीं कि मुझको शब्द अचानक कभी-कभी मिलता है,
> दोनों जब-तब सम्मुख आते ही रहते हैं।
> प्रश्न यही रहता है,
> दोनों जो अपने बीच एक दीवार बनाये रहते हैं
> मैं कब, कैसे, उनके अनदेखे
> उसमें सेंध लगा दूं
> या भरकर विस्फोटक
> उसे उड़ा दूँ।[2]
>
> —अज्ञेय

प्रयोगवाद और नयी कविता का अन्तिम अन्तर उनकी रोमांटिकता में देखा जा सकता है। प्रयोगवाद का रूमानीपन छायावाद के रूमानीपन से आगे बढा, लेकिन क्योंकि उन कवियों ने अपना युवाकाल छायावाद मे ही व्यतीत किया था, अतः छायावादी रोमांस को वे पूरी तरह से छोड़ नही पाये। नयी कविता में रंग, रोमांस है, विशेषतः गिरिजाकुमार माथुर मे, लेकिन इसमें नया कवि जीवन की व्यस्तता को भूल नहीं पाया है, वह कहता है—

> तूने पीछे से आकर मुझको चूम लिया
> मैं तुझे चूमने को थोड़ा सा घूम लिया
> बस, जी हल्का हो गया, आ गया फिर से
> वापस, कागज-पत्तर-फाइल की खिदमत पर।[3]
>
> —रघुवीर सहाय

इन अन्तरों के अतिरिक्त नयी कविता की कुछ विशिष्टताओं को संक्षेप मे देख सकते हैं। वे हैं पार्थिव जगत् की समग्रता का ग्रहण, प्रश्नाकुलता तथा भावसंकुलता के अनुकूल भाषा का अन्वेषण।

डा० रघुवंश के शब्दों में···' नयी कविता के अन्तर्गत 'जीवन', 'सत्य', अथवा वास्तविकता के न जाने कितने आयाम एक साथ उभरते हैं। इस नयी दृष्टि के अन्तर्गत नव्यमानवतावाद, नव्यस्वच्छन्दतावाद, नव्ययथार्थतावाद, नव्यप्रगतिवाद नव्यरहस्यवाद तथा नव्यप्रभाववाद आदि, जिन्हें अंग्रेजी में नियोरोमांटिसिज्म नियो-

---

१. कल्पना, मई '६३, पृ० ४० पर उद्धृत।
२. अरी ओ करुणा प्रभामय : अज्ञेय, पृ० १९
३. सीढ़ियों पर धूप में : रघुवीर सहाय, पृ० १५२

रियलिज्म, नियोप्रोग्रेसिविज्म, नियोमिस्टिसिज्म तथा नियोइम्प्रेशनिज्म कहा गया है, एक साथ उपस्थित हो गए हैं।"[1] दृष्टि की उन्मुक्तता एव काव्य की व्यापकता, मानवतावादी दृष्टिकोण तथा क्षणो की अनुभूति का महत्व, शहरी और ग्राम्य जीवन दोनो की अभिव्यक्ति आदि नयी कविता की सामान्य विशिष्टताए कही जा सकती हैं। नयी कविता ने विदेशी विचारधाराओ से भी प्रभाव ग्रहण किया है लेकिन देश-सन्दर्भ को नही छोडा है। इस तरह से नयी कविता विदेशी दर्शनो से प्रभावित होते हुए भी भारतीय सन्दर्भों मे बदलते हुए जीवन मूल्यो को अभिव्यक्ति देती है।

निष्कर्ष रूप म हम कह सकते है कि नयी कविता प्रयोगवाद स भिन्न तथा एक विकसित काव्य विधा है, जो एक ओर व्यक्ति के अवचेतन के गहन स्तरो को उद्घाटित करती है तथा दूसरी ओर वह लोक-जीवन से सम्पृक्त हो कर लोकानुभूतियों को अभिव्यक्ति देती है और आधुनिकता के विभिन्न अयामो के अनुरूप बदलते हुए जीवन-मूल्यो को अपना कथ्य बनाती है। बिम्बो के माध्यम से उनको अभिव्यक्ति देती हुई वह व्यक्तिमन तथा जीवन-सत्यो के अधिक करीब है। यही उसकी सार्थकता है कि उसने अनुभूति एव अनुभव दोनो को अपने अन्दर समाहित कर लिया है।

---

१ कल्पना, मार्च १९६० डा० रघुवंश, पृ० ३३

जीवन-दृष्टि

औद्योगीकरण वैज्ञानिक उपकरण-टेक्नोलाजी

कविता या किसी भी साहित्यिक विधा को बदलने के पीछे सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एव आर्थिक शक्तियां सामूहिक रूप से कार्य कर रही होती है। हिन्दी कविता को राष्ट्रीय आन्दोलन ने बदला तथा सांस्कृतिक चेतना ने उसे नया मोड़ दिया। इन सभी शक्तियो के अतिरिक्त इस शताब्दी में सबसे बड़ी शक्ति विज्ञान की रही। 'आधुनिक समाज की प्रगति आधुनिक उद्योग की प्रगति के क्षेत्र का भी विस्तार करती है।'[1] जब जार्ज रोसेन (George Rosen) यह बात कहते हैं तो उसका अर्थ यह है कि सामाजिक परिवर्तनों एवं आवश्यकताओ के अनुरूप वैज्ञानिक उपकरण बनते है और फिर वही सामाजिक एव मानव-मूल्यो के संक्रमण की स्थिति उपस्थित कर देते है। उन्होंने आगे स्वयं इस बात को स्वीकार किया है कि भारतीय उद्योग ने सन् ५० के बाद पाच वर्षो में ही कई परिवर्तन उपस्थित कर दिये।[2] इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए विजय बहादुर सिह ने कहा—'औद्योगिक परिवर्तनों एवं वैज्ञानिक आविष्कारो ने पूरी व्यवस्था को नये वर्गों में प्रतिष्ठित कर दिया है। जमीदार और किसान से हट कर मनुष्य और मशीन तथा अफसर और कर्मचारी का वर्ग निर्मित हो गया है। मशीनो के ढूह मे मनुष्य दब गया है।'[3] इसी मशीनी संस्कृति का मानव पर गहरा प्रभाव हुआ है। मशीनी संस्कृति से पूर्व शक्ति, शौर्य, पराक्रम आदि मानव के लिए मूल्य थे, लेकिन यह सभी शब्द, सभी मूल्य उसके लिए

---

1. 'The development of a modern society encompasses the need for the development of modern industry.'
   —Industrial Change in India—George Rosen, p. 15
2. Ibid, p. 15
३. माध्यम, सितम्बर ६८ : विजयबहादुर सिंह, पृ० २५

अर्थहीन हो गये, क्योंकि वैज्ञानिक उपकरणो एव मशीनी सस्कृति के सामने मनुष्य असहाय हो गया। मशीनी सस्कृति मानव पर व्यग करती है—

> दो घटे तो काम किया है,
> इतने मे तू थका हुआ है।
> क्षण-क्षण, पल-पल
> बरस-बरस भर
>
> बे-सुस्ताए हम खटती हैं
> सिर्फ तुम्हीं को सर्दी लगती,
> तुमने ही बस खाया है क्या ?
> केवल तुम्हें चाहिये गर्मी—
> वाह, वाह, वाह
> वाह, वाह, वाह, वाह, वाह।
> बातें बडी बडी करता है
> ऐंठा ऐंठा ही फिरता है
>
> हम सब डटी हुई ड्यूटी पर
> पर उस कोने मे पाईप पर
> ऊघ रहा था मानव छि छि
> ऊघ रहा था मानव तू तो
>
> ऊघ रहा था मानव
> छि, छि, छि, छि, छि, छि, छि, छि।[1]
> (असुरपुरी मे दम से घ)
>
> —मदन वात्स्यायन

यही पर व्यक्ति टूटना शुरू होता है। उसके उदात्त मूल्य धराशायी हो जाते हैं। उसके मन में एक अन्तर्द्वन्द्व जन्म लेता है। वह इस बात से इन्कार तो नही कर सकता कि मशीनी शक्ति उससे बडी शक्ति है, लेकिन फिर भी वह इस बात पर सन्तोष कर लेना चाहता है कि इस मशीनी शक्ति को भी उसके सकतो पर चलना पडता है। वह कहता है—

> ऐरावत सी भीमकाय हो, ऐरावत सी तुम बलशाली,
> नन्हा सा अकुश है लेकिन, यह नन्हा सा मानव, सखियो,

---

१ तीसरा सप्तक सम्पादक अज्ञेय, पृ० ६१ ६२ (तृतीय सस्करण)

जिससे तुम सीधे रास्ते से चला किया करती हो।[1]
(असुरपुरी में दम से छः)

—मदन वात्स्यायन

यांत्रिकता ने मूल्यों को बदल दिया। उन्हीं मूल्यों को नयी कविता में अभिव्यक्ति मिली। नई कविता में भावुकता को अधिक स्थान नहीं मिला। बदलते हुए मूल्यों की अभिव्यक्ति से काव्य-भाषा का बदलना भी आवश्यक हो गया। 'काव्य-भाषा का वह द्रव रूप जिसमें अर्थ की निश्चितता पर बल न देकर उसकी उपयुक्तता पर बल दिया जा रहा है, आज के साहित्यिक कृतित्व की केन्द्रीय स्थिति है।'[2] इसके साथ ही रामस्वरूप चतुर्वेदी यह भी कहते हैं कि—'अच्छी भाषा लेखक की सम्वेदना को निश्चय ही ऊपर उठाएगी, क्योंकि अच्छी भाषा सहज अच्छे-अच्छे शब्दों का प्रयोग नहीं, वरन् अच्छे शब्दों का संगत प्रयोग है।'[3] 'भाषा इसलिए बदली क्योंकि नयी कविता का कथ्य बदल गया, उसकी अभिव्यक्ति की प्रक्रिया बदल गयी। यान्त्रिक व्यस्तता के कारण अब भावाकुलतापूर्ण काव्य सुपाठ्य नहीं रहे।'[4]

वैज्ञानिक उपकरणों एव यान्त्रिकता के विकास से जीवन-मूल्य खण्डित तो हुए, लेकिन यांत्रिकता के मानव को एक आशा और विश्वास भी दिया। बड़ी-बड़ी मशीनों के सामने व्यक्ति लघु हो गया। इसलिए लघु-मानव की स्थापना होने लगी, लेकिन कवि इस बात से भी आश्वस्त था कि नये-नये आविष्कारों से मानव ने प्रकृति पर विजय पायी है, ईश्वर पर विजय पायी है। इस आशा और विश्वास ने व्यक्ति को आगे बढ़ने के लिए भी प्रोत्साहित किया। विजय की इस अनुभूति को 'रंग-रोमान्स' के कवि कहे जाने वाले गिरिजाकुमार माथुर ने भी अनुभव किया और कहा—

अब बढ़ता है सामाजिक चक्र और आगे
युग में है दिखने लगा गैस का उजियाला
चल पड़े भाप से नयी मशीनों के पहिए
बन यन्त्र-क्रांति के अग्रदूत
मानव की प्रकृति-विजय का पहला सूत्रपात
लोहे की विजय वनस्पति पर
ईश्वर पर पहली विजय
चिरन्तन मिट्टी की।[5]

—गिरिजाकुमार माथुर

---

१. तीसरा सप्तक : मदन वात्स्यायन, पृ० ६२ (तृतीय संस्करण)
२. कल्पना, मई '६३ : रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ० ४४
३. वही, पृ० ३७
४. तटस्थ, मई-जून-जुलाई ७१ : डा० सूर्यप्रकाश दीक्षित, पृ० ७०
५. धूप के धान : गिरिजाकुमार, पृ० १७

औद्योगीकरण तथा यन्त्र-क्रांति ने नयी समाज-व्यवस्था को जन्म दिया। सरकारी समाजवादी नीति के घोषणा-पत्रों के बावजूद पूंजीवाद अपनी जड़ें जमाता रहा तथा धीरे-धीरे पूरा समाज तीन वर्गों में विभाजित हो गया। पूंजीपति वर्ग बहुत बड़ा नहीं है। निम्न वर्ग, जिनमें मजदूर और सरकारी संस्थानों के छोटे कर्मचारी आते हैं, बड़ी तेजी से फैला तथा तीसरा वर्ग, मध्यम वर्ग, तेजी से अस्तित्व में आया और बढ़ा। प्राय नये कवि इसी मध्यम वर्ग की देन हैं। मध्यम वर्ग की यन्त्रणा को उन्होंने भोगा था। आर्थिक विषमता, सामाजिक भेदभाव, राजनीतिक दाव-पेंच तथा आध्यात्मिक और सांस्कृतिक खोखलेपन को उन्होंने तेजी से पहचाना और उन्हें जल्दी ही अपना अस्तित्व असार्थक महसूस होने लगा। अपने अस्तित्व को सार्थक बनाने, सामाजिक विद्रूपताओं को समाप्त करने तथा आर्थिक विषमताओं को कम करने के लिए ही संघर्ष की शुरुआत हुई, जिसने धीरे धीरे सभी मानवीय पक्षों को छुआ और उन्हें नयी कविता के माध्यम से अभिव्यक्ति दी।

युवा-वर्ग के उभरते हुए आन्दोलन

अगस्त १९५६ में भारत ने अमरिका से अधिशेष कृषि-वस्तुओं को लेने का समझौता किया। अमेरिका के कृषि उद्योग विकास एवं सहायता कानून,१९५४ धारा १ के अन्तर्गत यह पहला समझौता था और दिसम्बर १९६१ के अन्त तक ऐसे ही सात समझौते और हुए।[1] जब यह समझौता हुआ, उस समय तो प्राय इसका स्वागत किया गया, लेकिन एक बौद्धिक वर्ग ऐसा भी था, जिसने इसका प्रारम्भ से ही विरोध किया। डा० राममनोहर लोहिया और उनकी समाजवादी विचारधारा के समर्थकों ने इसका प्रारम्भ से ही विरोध किया, क्योंकि उन्हें इस बात की आशंका थी कि इससे देश कमजोर पड़ जाएगा और ऐसा हुआ। किसी भी राष्ट्र के लिए आवश्यक होता है कि वह शीघ्रातिशीघ्र आत्मनिर्भर हो जाय, लेकिन भारतीय उन्नायकों ने सहायता लेने की नीति को अपनाया, उसे प्रोत्साहन दिया। इसी कानून को पब्लिक ला ४८० (Public law 480) के नाम से जाना जाता है। अमेरिकन व्यापार-नीति का शिकार भारत भी हो गया। इसके अन्तर्गत १८५६ करोड़ रुपये का

---

1 'India entered into an agreement with the United States in August 1956 to receive surplus agricultural commodities from the U S A This was the first agreement under title I of the U S Agricultural Trade Development and Assistance Act of 1954 and was followed by 7 agreement upto the end of December 1962'

—Impact of Assistance under P L 480 on Indian Economy by Nilkanth Nath & V S Patvardhan, p 1

माल मंगाया जाना था, जिसमें से ६८६ करोड़ रुपये का सामान १९६२ तक ही मंगा लिया गया।

सहायता के समझौते अन्य यूरोपीय देशों से भी होते रहे। उसका आर्थिक प्रभाव उस समय के लिए तो अच्छा हुआ, लेकिन मानसिक एवं सामाजिक स्तर पर युवा-कवि ने स्वयं को पीड़ित अनुभव किया। नयी कविता में इस प्रकार के स्वर प्रायः मिलते हैं, जिनमे इस प्रकार के समझौतों के प्रति रोष एवं क्षोभ है। यह इन्हीं समझौतों का परिणाम था कि सन् '६० से ही हमारी अर्थ-व्यवस्था लड़खड़ाने लग गयी थी और एक स्थिति पर आकर तो यह लगने लगा कि बिना विदेशी सहायता, विदेशी अनाज और विदेशी सामान के हम जीवित नहीं रह सकते। हमारी अर्थ-व्यवस्था को इन समझौतों ने बहुत दूर तक खण्डित किया। आज भी भारत में पैदा होने वाला नागरिक ऋणी होता है।

एक ओर तो राजनीतिक स्तर पर यह आर्थिक सहायता के समझौते हो रहे थे तथा दूसरी ओर भारतीय युवा वर्ग यूरोप के सम्पर्क में आने से नये ढंग से सोचने लगा। इस ओर संकेत करते हुए रघुवंश ने कहा है—'यूरोप के सम्पर्क से भारत की मध्ययुगीन चिन्ताधारा मे बहुत बड़ी संक्रांति उत्पन्न हो गयी है। यूरोप में आज की स्थिति का लाने के लिए पिछले डेढ़-दो-सौ वर्षों का गत्यात्मक इतिहास क्रियाशील रहा है और हम कुछ वर्षों मे यूरोप की आधुनिक मनःस्थिति तक अपने को ले जाना चाहते हैं। इसलिए नहीं कि अनुकरण में ऐसा किया जा रहा है, वरन् इतिहास की शक्तियों ने संसार के सारे देशों को एक स्थल पर ला खड़ा किया है।'[1]

आर्थिक रूप से पिछड़े होने तथा वैचारिक संक्रमण और अपने राजनेताओं की अदूरदर्शिता से असंतुष्ट युवा-वर्ग के आन्दोलन सन् ५५ के आसपास से ही उभरने लगते हैं। चीनी आक्रमण की असफलता के बाद तो युवा-वर्ग के आन्दोलनो की बाढ़ आ जाती है। युवा-वर्ग के उभरते आन्दोलनों का कारण आज की परिस्थितियों में एक विचित्र प्रकार का विरोधाभास है, यह विरोधाभास निरन्तर बढ़ता ही गया, कम नहीं हुआ। इस विचित्र प्रकार के विरोधाभास मे 'उसके स्वप्न सत्य होते हुए भी खंडित हैं, उसके आदर्श सही होने के बावजूद भी पराजित हैं, उसकी कल्पना मानवीय संवेदनाओं से ओत-प्रोत होते हुए भी अभिशाप है, उसका स्वर आत्मोत्सर्ग के संकल्प से जन्मने के बावजूद संशय का विषय है और उसकी मर्यादाएँ एक प्रलयग्रस्त संसार में जन्मने के बावजूद झूठे यथार्थ के परिवेश में केवल खोखली खनक-सी ध्वनि देकर मौन हो जाती हैं।'[2]

जब युवा-वर्ग की ध्वनि को नकार दिया जाता है, तब उसके पास आन्दोलन के

---

१. कल्पना, मार्च '६० : रघुवंश, पृ० ३२

२. कल्पना, जनवरी-फरवरी : लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ० ५१

अतिरिक्त और कोई मार्ग नही होता। वह आन्दोलन केवल नारो की गूंज नही होता, बल्कि बौद्धिक एव वैचारिक स्तर पर सम्पूर्ण व्यवस्था को बदल देने का प्रयास होता है। लक्ष्मीकान्त वर्मा की दृष्टि मे—'साहित्यिक, सास्कृतिक एव सृजनशीलता के स्तर पर पिछले बीस वर्षों का जीवन भारतीय चिन्तन और विवेचना की दृष्टि से कई प्रकार की सक्रमणात्मक स्थितियो से गुजरा है।'[1]

खोखली मान्यताओ, मध्ययुगीन एव अवैज्ञानिक विचारधाराओं तथा सामाजिक रूढ़ियो के प्रति अग्रज पीढी के आग्रह ने युवा-वर्ग की आत्मशक्ति को खण्डित किया। खण्डित होते हुए भी युवा-कवि वैचारिक आन्दोलनो से जूझता रहा। वह टूटा भी, गिरा भी, लेकिन सघर्ष की शक्ति क्षीण नही हुई। जर्जर मान्यताओ से लड़ने और जूझने के स्वर आज की समस्त साहित्यिक विधाओ मे हैं। कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध और कविता मे सवत्र विरोध एव असन्तोष के स्वरो को अभिव्यक्ति मिली है। इस विरोध और असन्तोष के पीछे जीवन-मूल्यो को बदलने की बलवती इच्छा कार्य कर रही है।

अग्रज पीढी ने सत्ता स्वय सम्हाली और त्याग, तपस्या तथा बलिदान के नाम पर युवा पीढी को आमन्त्रित किया, तो नया कवि कह उठा—

हम ही क्यों वह तकलीफ उठाते जाए
दुख देने वाले दुख दें और हमारे
उस दुख के गौरव की कविताए गायें।
यह है अभिजात तरीके की मक्कारी
इसमे सब दुख है, केवल यही नहीं है
अपमान, अकेलापन, फाका, बीमारी।[2]

—रघुवर सहाय

लेकिन फिर भी उसने कहा—

हमने यह देखा दर्द बहुत भारी है
आवश्यक भी है, जीवन भी देता है
यह नहीं कि उससे कुछ अपनी यारी है।[3]

रघुवीर सहाय

सन् '६० से पूर्व तो आन्दोलनों की पृष्ठभूमि पूरी तरह से स्पष्ट नही हो पायी थी, लेकिन सन् '६० के बाद धीरे धीरे सभी कुछ साफ हो गया। आन्दोलनो के पीछे

---

१ कल्पना, जनवरी फरवरी लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ११
२ सीढियो पर धूप में रघुवीर सहाय, पृ० १०७
३ वही, पृ० १०७

युवा-वर्ग का यथास्थिति (status quo) को बनाए रखने के लिए गहरा असन्तोष था। यूरोप के प्रभाव और वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण भारतीय युवा-वर्ग स्वयं को तेजी से बदलना चाहता था, लेकिन एक लम्बे संघर्ष के बाद स्थिति केवल यहाँ तक पहुँची है कि युवा-पीढ़ी ने बाहर से तो स्वयं को काफी बदला है लेकिन संस्कारों से वह पिंड नहीं छुड़ा पाई। पूरी-की-पूरी पीढ़ी संस्कार-च्युत हो गई, लेकिन बिना किसी दिशा के।

पीढ़ियों का संघर्ष

पीढ़ियों का संघर्ष संस्कारों को लेकर ही आरम्भ होता है। अग्रज पीढ़ी को अपने संस्कारों के प्रति मोह था, अतः उन्होंने पूरे देश को आधुनिक विचारों के अनुरूप बदलने का प्रयास नहीं किया, जबकि युवा-पीढ़ी तेजी से उन सभी सांस्कृतिक, नैतिक, धार्मिक और दार्शनिक संस्कारों को छोड़ आगे बढ़ना चाहती थी।

पीढ़ियों के संघर्ष की शुरुआत स्वतन्त्रता-आन्दोलन से ही होती है। इतिहास साक्षी है कि स्वतन्त्रता-आन्दोलन का नेतृत्व कभी भी पूरी तरह से एक हाथ में नहीं रहा। सुभाषचन्द्र बोस तथा उनसे भी पूर्व भगतसिंह तथा चन्द्रशेखर आजाद जैसे क्रान्तिकारियों की कार्यप्रणाली गांधीजी से सर्वथा भिन्न थी।

बहुत से ऐतिहासिक क्षण ऐसे आये, जहाँ पर दोनों पीढ़ियों में परस्पर मतभेद था। इस मतभेद का लाभ ब्रिटिश सत्ता ने तो उठाया ही, साथ ही इससे पीढ़ियों में भी एक प्रकार के अवरोध की स्थिति उत्पन्न हो गई। सामाजिक चेतना के नाम पर अस्पृश्यता आज तक समाप्त नहीं हो पाई है, आर्थिक समृद्धि के नाम पर देश आज भी ऋणी है, सांस्कृतिक चेतना के नाम पर भारतीय सांस्कृतिक चेतना नेहरू, नरगिस और हनुमान से आगे नहीं बढ़ पायी। साहित्य की समझ के नाम पर मुक्तिबोध जैसे कवि, भुवनेश्वर जैसे नाटककार अनदेखे ही रह गए। इस तरह से इतिहास का एक बहुत बड़ा हिस्सा अनभोगा ही रह गया। आदमी कहीं-न-कहीं झूठा पड़ गया, संस्कार-च्युत हो गया। अग्रज पीढ़ी की संकीर्णता और खोखलेपन ने युवा-पीढ़ी को जिस भुलावे में रखा, उस भुलावे में पड़कर युवा-पीढ़ी ने आत्म-निर्णय और आत्मसंकल्पों के क्षणों को खो दिया। युवा-पीढ़ी ने सबसे बड़ी भूल यह की कि उसने केवल वर्तमान को देखा, उसे अतीत और भविष्य के सन्दर्भों से काट दिया, इसीलिए राष्ट्रीय फार्मूलों एवं राष्ट्रीयता के नाम पर जीने वाले लोग मूल्यवान हो गये और राष्ट्र के प्रति ईमानदार होती हुई भी युवा-पीढ़ी उपेक्षित हो गई। पीढ़ियों के संघर्ष में 'उपेक्षा' मूल बिन्दु है।

युवा-पीढ़ी की उपेक्षा करते हुए अग्रज पीढ़ी ने राष्ट्र की प्रत्येक समस्या का हल अतीत में ढूँढ़ने का प्रयास किया। आधुनिक मानव की समस्याओं को उन्होंने राम और कृष्ण के भक्ति-मन्त्रों से हल करने की चेष्टा की। इसे उन्होंने भारत की खोज कहा। लेकिन इनकी तथाकथित 'भारत की खोज' विवेकानन्द और प्रसाद जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों द्वारा की गई भारत की खोज न थी, बल्कि

भारत की खोज के नाम पर इन्होंने नितान्त छोटे सत्यों को ही आदर्श मान लिया। इसे युवा-पीढ़ी स्वीकार न कर पाई। स्वतन्त्रता-संग्राम के युग में तथा दूसरे स्वातन्त्र्योत्तर इतिहास के युग में जिसमें सत्ता वृद्धों के हाथ में आई, तथा तीसरे सन '६२ में चीनी आक्रमण के बाद के युग में, जिसमें हम एक भ्रम से खुले, पूरे देश को विवश निराशा और अपमान के स्तरों से गुजरना पड़ा।

चीनी आक्रमण का अवसर कोई पहला अवसर न था जहाँ निराशा के स्तरों से युवा पीढ़ी गुजरी हो। इसमें पूर्व भी ऐसा कई बार हुआ जैसा कि युवा कवि लक्ष्मीकान्त वर्मा ने कहा है—'हमारी पीढ़ी ने, वैचारिक और व्यावहारिक दोनों स्तरों पर एक बार नहीं, सैकड़ों बार इस प्रकार की विवश निराशाओं का सामना किया और उसके व्यंगमय अभिशाप को सहन किया है। हमारा दोष यह नहीं था कि हम अराष्ट्रीय थे। हमारा दोष यह नहीं था कि हमारे स्वप्नों में कुछ कमी थी, हमारा दोष यह भी न था कि हमने सरकार के दरवाजे पर भिक्षा का पात्र लेकर साहित्य, कला और विचार के आदर्शों का सिर काटकर हाजिर करके बख्शीश माँगी थी, वरन् गत बीस वर्षों में हमने और हमारी पीढ़ी ने चिन्तन, साहित्य और काव्यक्षेत्र में उन की समस्त कुत्सित विषमताओं से बचने की कोशिश की, जिनमें राष्ट्रीयता के नाम पर कला की हत्या की गई है, उदात्तता के नाम पर आदमी को झुठलाया गया है, आदर्श के नाम पर आदमी खरीदा या बेचा गया है, स्वस्थ दृष्टि के नाम पर दृष्टि-हीनता को अपनाया गया है और विकास के नाम पर राष्ट्रीय चिन्तन के विवेक ही छीन लेने का प्रयास किया गया है। हमारी पीढ़ी का दोष यह रहा है कि हमने 'धुरी-हीनों' की व्यक्तित्वहीनता का पर्दाफाश किया है। कला, साहित्य और राजनीति की त्रिवेणी में समस्त वैचारिक अस्थियों पर बैठे हुए उन कापालिकों की निन्दा की है, या उनके सामने कुछ जलते प्रश्न रखे हैं, जिनका सन्दर्भ सीधा सीधा जीवन और उसकी सार्थकता से रहा है।"[1]

इसी सन्दर्भ में नये लेखकों, विशेषतः कवियों की ओर से लक्ष्मीकान्त वर्मा ने साहित्य को घेरों से मुक्त करने के लिए पाँच माँगें रखीं, जो इस प्रकार हैं—

१ वैयक्तिक स्वातन्त्र्य और कलात्मक सृजनशीलता के साथ मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा।

२ राज्याश्रय से मुक्त लेखक का दायित्व।

३ महामानवों की खोखली और बिकाऊ प्रवृत्ति के विरुद्ध लघु मानव की विवेक-पूर्ण दृढ़ता।

४ कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित कृत्रिम साहित्य सृजनशीलता के विरुद्ध सौन्दर्यपूरक (ऐस्थेटिक) कला सृजन की सार्थकता।

---

१ कल्पना, जनवरी फरवरी '६७ लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० १२

५. इतिहास के दुराग्रह और परम्परा की रूढ़ियों से मुक्त आधुनिक मांग जिसमें अद्वितीय क्षणों की अनुभूति और विवेक का समर्थन, कोरी भावुकता और इल्हामी नपुंसकता की निन्दा।[1]

इन सभी मांगों के पीछे नये मनुष्य की प्रतिष्ठा की बलवती इच्छा कार्य कर रही है। इसी संघर्ष के परिणामस्वरूप मूल्यों में वैचारिक स्तर पर संक्रमण की स्थिति उत्पन्न हो गई, जिसने पूरी समाज-व्यवस्था तथा बौद्धिक चिन्तन को बहुत दूर तक प्रभावित किया।

पीढ़ियों के संघर्ष से वैचारिक एवं मूल्यगत संक्रमण की स्थिति उत्पन्न हो गयी। अग्रज पीढ़ी के कवियों ने राजकीय चिन्तन को भी कला और साहित्य के क्षेत्र में चलाने का प्रयास किया, जबकि नयी पीढ़ी ने इसका विरोध करते हुए स्वतन्त्र चिन्तन पर बल दिया। उसके चिन्तन का आधार निरन्तर अन्वेषण करते रहना है। वह अपने सत्य, मत एवं विचारों को किसी भी सीमा में बांधना नहीं चाहता है, इसीलिए वह कहता है—

उठो न ! मेरे चुप का अन्त कहीं नहीं है
उठो न ! मेरे अभिमत का अन्त कहीं नहीं है
उठो न ! मेरे 'सच' का अन्त कहीं नहीं है।[2]

—दूधनाथ सिंह

साहित्यिक एवं कलात्मक मान्यताओं में संक्रमण की स्थिति उत्पन्न होने का कारण यह संघर्ष ही है। इसके अतिरिक्त सरकारी संस्थानों द्वारा एवं सरकार के अनुदान पर चलने वाली पत्र-पत्रिकाओं में प्रचलित झूठी एवं खण्डित सांस्कृतिक तथा साहित्यिक मान्यताओं का भी युवा पीढ़ी ने विरोध किया।

मूल्यों में बड़ी तेजी से परिवर्तन आने का कारण मूलतः संघर्ष ही है और संघर्ष का मूल कारण एक ओर बौद्धिक जड़ता है तथा दूसरी ओर बौद्धिक विकास की अदम्य लालसा।

मोह-भंग की स्थिति

यह बात सत्य है कि स्वतन्त्रता के बाद उभरने वाली नयी पीढ़ी ने मूर्ति निर्माण की अपेक्षा मूर्ति-भंजन अधिक किया है, लेकिन ऐसा क्यों हुआ? इस बात पर थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

स्वतन्त्रता का आन्दोलन गांधीजी के नेतृत्व में कई वर्षों तक चलता रहा। उन्होंने स्वराज्य की मांग की तथा 'स्वराज्य' का जो स्वप्न उनके मन में था, वह

---

१. कल्पना, जनवरी-फरवरी '६७ : लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ० १३
२. अपनी शताब्दी के नाम : दूधनाथ सिंह, पृ० ६२

उन्होने भारत के करोडो लोगो के सामने रखा । उन्होंने 'कहा—'मेरे-हमारे-स्वप्न के' 'स्वराज्य' मे वश या धर्म का कोई भेद भाव नही है । ना यह कुछ प्रमुख या धनी व्यक्तियों का एकाधिकार है । 'स्वराज्य' का अर्थ है सबका राज्य, जिसमे कृषक भी शामिल हैं । 'स्वराज्य' निश्चित रूप से ही अपग, अन्धो, भूख से पीडित तथा लाखो श्रमिकों का होगा । एक दृढ निश्चयी, ईमानदार, स्वस्थ चित्त, अनपढ व्यक्ति राष्ट्र का पहला सेवक हो सकता है ।"[1]

२० जून १९४५ के हिंदुस्तान टाइम्स मे मेरी धारणा मे स्वराज्य' नामक लेख मे भी उन्होंने स्वराज्य के रूप को स्पष्ट करते हुए कहा है—'स्वराज्य-सम्बन्धी मेरी धारणा केवल राजनीतिक स्वातन्त्र्य नही है । इसका अर्थ है धर्म राज्य । पृथ्वी पर स्वर्ग के राज्य की प्रतिष्ठा, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे सत्य एव अहिंसा का साम्राज्य इस विशाल देश के पीडित लोगो के लिए स्वतन्त्रता का अर्थ केवल यही हो सकता है '[2]

युवा साहित्यकारो एव बौद्धिक वर्ग के सामने स्वराज्य का अर्थ यही था । लेकिन स्वतन्त्रता के बाद हुआ क्या ? राष्ट्र के उन्नायको न सत्ता के साथ-साथ भ्रष्टाचार को भी बढावा दिया । ऐश्वर्य और वैभव के समुद्र मे डूब कर वे भारत की गरीब, भूखी और पीडित जनता को भूल गये । अथ का बोलबाला हो गया । धन से असम्भव काय भी सम्भव हो गया । गरीब और गरीब, अमीर और अमीर होता गया । राष्ट्र की प्रगति के नाम पर जो खेल खेले गये और राजनीतिक स्वार्थ धता का जैसा परिचय राष्ट्रीय कर्णधारा न दिया, उससे मोह-भग की स्थिति उत्पन्न हो गयी ।

एसा नही कि उससे पूव मोह भग की स्थिति न थी । उससे पूव साहित्यिक स्तर पर कवियो का कविता के प्रति मोह भग हो चुका था । कविता के प्रति एक विशेष प्रकार का मोह साहित्यकारों के लिए एक मूल्य था । कविता के प्रति रूमानी

---

1 'The Swaraj of my our-dream recognizes no race or religious distinctions Nor is it to be the monopoly of lettered persons, not yet of mon ed men Swaraj is to be for all, including the farmer, but emphatically including the maimed, the blind, the starving millions A stout hearted, honest, sane, illeterate man may well be the first servant of the Nation '

My Picture of Free India—M K Gandhi, p 87

2 'My conception of Swaraj is not mere political independence I want to see DharamRaj—establishment of the kingdom of Heaven on earth, the reign of truth and non-voilence in every walk of life That alone is independence to the starved masses of this vast country '—Ibid , p 91

लगाव आवश्यक समझा जाता था, लेकिन प्रगतिशील लेखकों ने पहली बार इसका मोह तोड़ा और भवानी प्रसाद मिश्र इसी की अभिव्यक्ति अपनी प्रसिद्ध कविता 'गीत-फरोश' में करते है। उसकी कुछ पंक्तियां उदाहरण के लिए उद्धृत हैं—

जी हां हुजूर, मैं गीत बेचता हूं
मैं तरह तरह के गीत बेचता हूं
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूं
... ...
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको
पर बाद-बाद में अक्ल जगी मुझको
जी, लोगों ने तो बेच दिये ईमान
जी, आप न हों सुन कर ज्यादा हैरान
मैं सोच समझकर आखिर
अपने गीत बेचता हूं
जी, हां हुजूर, मैं गीत बेचता हूं।[1]

नयी जीवन-दृष्टि की खोज

अपने अतीत से संत्रस्त और वर्तमान की असंगतियों एवं विद्रूपताओं से भयग्रस्त युवा कवियों की पूरी की पूरी पीढ़ी ने सायास मूल्यों को बदलने की चेष्टा की, क्योंकि परम्परा से चले आते हुए मूल्य भी कविता के उपमानों की तरह मैले हो गये थे, घिस-घिस कर आकारहीन हो गये थे। या तो युवा-पीढ़ी उन आकारहीन मूल्यों को विवश ढोती रहती और या फिर उन्हें बदल डालती। नए कवियों ने मूल्यों के मलबे के कुछ मूल्यों को स्वीकार किया, शेष को उन्होंने पूरी तरह से नकार दिया, समस्त मूल्यों को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया।

कविता इसलिए बदली, क्योंकि मूल्य बदले। 'मूल्य जब बदलते है तो साहित्य की अभिव्यक्तियां बदल जाती हैं। एक खास युग की कविता का एक खास रूप होता है। कविता ही नहीं, सारी कलाओं का रूप बदल जाता है और एक कला का प्रभाव दूसरी कला पर पड़ता है।'[2] ऐसा ही कविता के क्षेत्र में भी घटित हुआ। पीढ़ियों के संघर्ष ने ही मोहभंग की स्थिति तक पहुँचाया और उसके बाद नयी जीवन-दृष्टि की खोज आवश्यक थी।

नये कवि ने इस प्रकार की जीवन-दृष्टि की खोज प्रारम्भ की, जो सार्थक हो, उनकी अपनी हो और उनके जीने को कोई अर्थ दे सके। अर्थहीनता, धुरीहीनता,

१. गीतफरोश : भवानीप्रसाद मिश्र, पृ० १८०
२. लहर, अप्रैल '६८ श्रीकान्त वर्मा, पृ० २७

और मूल्यहीनता से हटकर नया कवि ऐसे जीवन दृष्टि के निर्माण में लग गया, जिसमे मनुष्य की प्रतिष्ठा एक नये रूप मे हो सके। वह आत्मग्लानि और आत्म-पीडन जैसी कुण्ठाओ से मुक्त हो सके। आपसी सम्बन्धो तथा सामाजिक क्षेत्रो मे व्यक्ति का महत्व हो, उसकी लघुता भी अपने-आपम महत्त्वपूर्ण हो। इसकी स्थापना नया कवि करना चाहता है। नये कवि ने जीवन को नितान्त भिन्न दृष्टि से देखा। जीवन की विसगतियों एव विपद्रूपताओ को पहचाना तथा बहुत दूर तक उन पर व्यग किया। अज्ञेय ने 'जीवन' कविता मे कहा—

> चाबुक खाये
> भागा जाता
> सागर तीरे
>
> मुह लटकाए
> मानो धरे लकीर
> जमे खारे झागों को
> रिरियाता कुत्ता यह
> पूछ लडखडाती टांगो के बीच दबाए।[1]
>
> —अज्ञेय

जीवन के प्रति नया कवि जब इस प्रकार की अभिव्यक्ति करता है तो वह इस यत्रणाजनक जीवन को स्वीकार नहीं करता, बल्कि उसकी वर्तमान भयावहता को उजागर करते हुए उस पर गहरा व्यग करता है। ऐसे जीवन को, जो चाबुक खाकर रिरियाते कुत्ते की तरह मे भागता हो, स्वीकार नही करता। दूसरे अर्थों मे वह ऐसे अपमानजनक जीवन से मुक्त होकर सही अर्थों म स्वतन्त्र एव सम्मानजनक जीवन जीने का सदेश देता है। मनुष्य का स्वाभिमान आज उसके लिए सबसे बडा मूल्य हो गया है। नया कवि इन्ही उदात्त मूल्यो की प्रतिष्ठा मे लग गया। अब भी लगा हुआ है। उसकी जीवन दृष्टि सकीर्ण, शकालु या अनास्थाशील नही है। ऊपर से अनास्थाशील लगने वाली जीवन दृष्टि अन्दर से मानवीय मूल्यों एव मानव की प्रतिष्ठा के लिए बहुत दूर और बहुत गहराई तक आस्थाशील उदार तथा व्यापक है।

आधुनिक जीवन पर दृष्टिपात करते हुए लक्ष्मीकान्त वर्मा ने कहा—'आज के जीवन का सबसे बडा व्यग यह है कि हमे जिस स्तर पर जीना पडता है, उससे भिन्न स्तर पर मर्यादा की रक्षा मे भी अभिनय करना पडता है। इस विरोधाभास मे जो जीवन दृष्टि हमे मिलती है, वह एक ओर स्थापित मर्यादा के

---

१ कितनी नावो म कितनी बार अज्ञेय, पृ० १४

खोखलेपन को उद्घाटित करके रखती है और दूसरी ओर जो वास्तविकता है, उसकी घुटन को स्वीकार करने के लिए बाध्य भी करती है।"[1]

नया कवि इस घुटन को भोगने के लिए बाधित है, इसलिए नयी कविता नये मूल्यों को, नयी जीवन-दृष्टि को तलाशती है, नये कवि को जीवन से कोई शिकायत नहीं है, वह उसे सम्पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ निभाने में विश्वास करता है, उसे निभाता है, उसकी प्रत्येक असगति के प्रति उसकी दृष्टि उदार है। वह जीवन पर व्यंग करता है, लेकिन उदारता के साथ। वह निरन्तर सत्य के अन्वेषण के प्रति आग्रहशील है। सत्य के अन्वेषण मे वह अभिजात्य वर्ग को साक्ष्य नही मान लेता, वल्कि कार्य-कारण शृंखला से सत्य को पाने का प्रयास करता है। वह सत्यान्वेपण में तर्क-शास्त्र (डायलेक्टिस) का सहारा लेता है। वह डायलेक्टिस की सीमाओं मे रहते हुए भी जीवन को व्यापक रूप में देखता है, उसमे सार्थकता को खोजता है। उसकी दृष्टि जितनी उदार जीवन के उदात्त पक्षों के लिए है, वह उतना ही उदार उसके अनर्थक (एव्सर्ड) पक्षों के प्रति भी है। आज के जीवन मे कई बार अनर्थक स्थितियाँ भी सार्थक लगने लगती हैं, किन्तु वह सतत् जागरूक है। यदि अनर्थक स्थिति जीवन के लिए सार्थक हो जाय, तो वह उसे भी सहज मन से स्वीकार कर लेता है, क्योंकि उसकी दृष्टि जीवन के प्रति यथार्थ संकल्प की भावना, आत्मविश्वास और सहयोग की भाव-स्थिति से निरन्तर कार्य कर रही है।

नवलेखन या नयी कविता में निरन्तर नयी जीवन-दृष्टि को चाहे वह जो भी रही हो, अभिव्यक्ति मिली है, डा० सूर्यप्रसाद दीक्षित के शब्दों में कहें तो—'नवलेखन स्वयं मे समष्टिकामी न होते हुए भी समष्टिमूलक है, क्योंकि व्यक्तिगत जीवन के अन्तर्भाव, जो इससे व्यक्त हुए हैं, वे समग्रत: युगबोध के ही रूप हैं। अस्तु, यह लेखन ध्वंसोन्मुख न होकर सृजनोन्मुख है, व्यक्तिवादी न होकर सामाजिकतावादी है और मात्र बौद्धिक न होकर संवेदनशील भी है।···आज कवि अपनी उक्तियों मे संक्षिप्त किन्तु तत्वग्राही भावस्फुरण भरना चाहता है। वह मनीषी, दार्शनिक, पुराविद् और सर्वतत्ववेत्ता होने का दम्भ नही भरता।[2]

नयी कविता में कुछ तत्व ऐसे अवश्य आये, जिन्होने नयी कविता को केवल फैशन के स्तर पर लिया, जिससे नयी कविता को चोट पहुँची, लेकिन जो कवि नयी और नयी जीवन-दृष्टि के प्रति प्रतिबद्ध हैं, उन्होंने नयी कविता को समृद्ध बनाया। चाहे आलोचक नयी कविता पर अनास्था के कितने ही आरोप लगायें और बुद्धि-जीवियों का एक वर्ग भले ही उदार, व्यापक एवं नये मानव की प्रतिष्ठा में संलग्न

१. लहर, '६१ : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ५६
२. तटस्थ, मई-जून-जुलाई : डा० सूर्यप्रकाश दीक्षित, पृ० ७१

नये भाव-बोध तथा नयी जीवन दृष्टि को न समझ पाये, पर इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता—

> नयी उषा आ रही
> शोकमय एक समूची आदि कौम पर
> नयी उषा आ रही।[1]
>
> —गिरिजाकुमार माथुर

यह नयी उषा नयी जीवन-दृष्टि है जो बृहत् मानवीय मूल्यों की स्थापना करती है।

---

१ शिलापंख चमकीले गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ६०

नयी कविता और मूल्य-बोध के आयाम

सामाजिक मूल्य

नयी कविता पर एक बहुत बड़ा आक्षेप यह है कि वह सामाजिक नहीं है, उसने असामाजिक तत्वों का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण करके असामाजिकता को बढ़ावा दिया है तथा लोक-कल्याण की भावना से शून्य होने के कारण नयी कविता न तो पाठ्य है, न ग्राह्य। लेकिन कालान्तर में मध्यकालीन काव्य का आस्वाद लेने वाले कतिपय विद्वानों ने भी नयी कविता को सहानुभूतिपूर्वक समझने का प्रयास किया है, परन्तु जिन्हें नवीन काव्य सदैव अग्राह्य एव असामाजिक लगता रहा है, उनके सम्बन्ध में मार्टिन गिल्क्स (Martine Gilkes) ने कहा है—'मुझे ऐसा लगता है कि लोग आधुनिक कविता को पढ़ने मे जो कठिनाई या अरुचि अनुभव करते है, तथा जिसे अभिव्यक्त करने के लिए वे सदैव तत्पर रहते है, वह पिछले पचास वर्षों में हममें तथा जिस विश्व में हम रहते है, उसमें होने वाले परिवर्तनों के बोध का केवल अभाव है, या फिर शायद यह पहचानकर सकने की अक्षमता है, कि जैसे-जैसे परिवर्तन मानवीय जीवन या उसके परिवेश में होता है, वैसे ही साहित्य भी परिवर्तित होता रहता है। दूसरे शब्दों में बहुत से लोग आधुनिक साहित्य का मनन उन्नीसवी शताब्दी की पृष्ठभूमि में अत्यन्त दुराग्रह के साथ करते है, जिसका परिणाम जटिलता एवं संभ्रम के अतिरिक्त और कुछ नही हो सकता।"

---

1. 'Much of the dificulty which people find in reading modern poetry, and of the distaste for it which they are so ready to express, seems to me to be due to a lack of reailzation of the great changes which have occured during the last fifty years, both in the world and in ourselves who live in it : or rather, perhaps to a failure to recognise that as human life and it's environment change, so the face and form of literature change too. In other words, many people approach modern literaqture with a back ground which still remains obstinately nineteenth century. The resent cannot be anything but perplexity and confusion.'

—Introduction to Modern Poetry by Martine Gilkes (Preface)

सामाजिक दायित्व और रूढ़ियाँ

कहने का तात्पर्य यह कि कविता या अन्य किसी भी साहित्यिक विधा को बदलते हुए सामाजिक, राजनीतिक एव सास्कृतिक परिवेश के सदर्भ में समझना आवश्यक होता है। नयी कविता के सम्बन्ध मे कहा गया कि वह अतिवैयक्तिक है, उसमें सामाजिक मूल्यो का अकन नही है। दूसरे शब्दो मे कहें तो उनकी दृष्टि मे नयी कविता सामाजिक दायित्वों से च्युत कविता है तथा उसमे बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय की भावना निहित नहीं है।

देखना यह है कि नयी कविता ने सामाजिक दायित्वो का निर्वाह किया है या नहीं अर्थात् सामाजिक चेतना के नाम पर नयी कविता ने किन सामाजिक मूल्यो को अभिव्यक्ति दी है। यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि नयी कविता जहा एक ओर सामाजिक दायित्वो का निर्वाह करती हुई, नए सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा विशुद्ध रूप से *मानवीय धरातल* पर करती है, वहा दूसरी ओर वह मध्यकालीन जर्जर रूढ़िगत मल्यो का खुले रूप मे बहिष्कार कर देती है।

नयी कविता की सामाजिक चेतना मध्यकालीन सामाजिक चेतना एव प्रगतिवादी सामाजिक चेतना से एकदम अलग है। कविता की अनिवार्यताओ पर विचार करते हुए शशि चौधरी के इस मन्तव्य से पूर्णत सहमत होना सम्भव नहीं है कि—"कविता युग और समाज की तात्कालिक मान्यताओ, विश्वासो, आन्दोलनों, विकास-क्रमो, प्रगतियो का विरोध नही करे। अगर युग की माग है कि जलूस निकाले जाय, अन्न की कमी को दूर नही करने वाली सरकार के खिलाफ वातावरण तैयार किया जाय, तो कविता को इस माग के विपक्ष मे खडा नही होना चाहिए।"[1] इस मत से पूर्णत सहमत इसलिए नहीं हुआ जा सकता, कि जब कविता जुलूसो, नारो एव राजनीति का शिकार होती है तो उसका परिणाम हिन्दी मे हुई प्रगतिवाद जैसी दुर्घटना जैसा होना बहुत दूर नही रह जाता। इसलिए नयी कविता जुलूसो एव नारो से बहुत दूर रही है। उसने प्रगतिवाद की भूल को नहीं दोहराया, लेकिन राजनीति के चक्करों से वह पूर्ण रूप से मुक्त नही हो पाई है। रिचाड्स की दृष्टि मे—'कविता भावात्मक भाषा का प्रयोग करती है। यह उसकी विशिष्ट विशेषता है। लेकिन इस प्रकार के सभी भावात्मक प्रयोग सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से मूल्यवान नही होते—।[2] कहने का तात्पर्य यह है कि यदि कविता

१ लहर 'नयी कविता की कुछ शर्तें' शशि चौधरी, पृ० १७

2 'Poetry makes an emotive use of language That is its specific character But of course, not every instance of such emotive use is aesthetically valuable '

—Literary Criticism—A short History (I A Richards, A Poetic of Tension), by William Wimsalt Jr and *Cleanth* Brooks, p 613

सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करते-करते अपने सौन्दर्यगत मूल्य खो देती है, तो प्रभावहीन हो जाती है। नयी कविता ने इन दोनों को अक्षुण्ण बनाए रखा है।

मध्यकालीन कविता के सामाजिक दायित्व एवं सामाजिक मूल्य पूरी तरह से आदर्शात्मक थे। पारिवारिक सम्बन्धों एवं सामाजिक सम्बन्धों में एक आदर्श रूप की परिकल्पना तुलसी के मानस में मिलती है। प्रगतिवाद के सामाजिक मूल्य मार्क्सवादी एवं लेनिनवादी आर्थिक मूल्यों से बहुत दूर तक आक्रान्त होने के कारण नारों में ही खो गए। नया कवि इन दोनों स्थितियों को आधुनिक समाज के लिए उपयुक्त नहीं मानता। इसलिए वह नए सामाजिक मूल्यों की खोज करता है।

नया कवि वैयक्तिक न हो, ऐसा नहीं है। वह वैयक्तिक होते हुए भी सामाजिक है। वह स्वयं को कहीं-न-कहीं समाज से अलग अनुभव अवश्य करता है, क्योंकि वह प्राचीन और जर्जर मान्यताओं का निर्वाह नहीं कर पाता। यह अलगाव की समस्या केवल कविता की ही नहीं, बल्कि ६० के बाद के व्यक्ति की समस्या है। इस ओर वे सचेत तो स्वतन्त्रता के बाद ही हो गए थे। काम् और कीर्केगार्द की रचनाओं को पढ़कर सामाजिक अर्थहीनता धीरे-धीरे व्यक्ति के मन में घर करती गई। यह कोई स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं था। लेकिन ऐसा हुआ। नयी पीढ़ी को सर्वत्र यह अनुभव हुआ कि उनके साथ विश्वासघात हुआ है, उसे अन्धेरे में रखकर समाज से काट दिया गया है। मेकार्थी, माओ, स्टालिन तथा जानसन आदि ने अपनी रचनाओं एवं कार्यों से नई पीढ़ी में यही भाव भरने में सहायता की। इसका प्रभाव भारत पर होना भी अवश्यम्भावी था।

सामाजिक मूल्यों के सम्बन्ध में यूरोप तथा भारत में विशेष अन्तर यह है कि—'यूरोप की समस्या आस्थाहीनता की है तो हमारे देश का प्रश्न आस्था की जड़ता का है।'[1] इसी आस्था की जड़ता ने समस्त सामाजिक आदर्शों को खोखला बना डाला, तथा व्यक्ति स्वयं को समाजव्यापी कुण्ठा, निराशा अवसाद, अकर्मण्यता तथा घूसखोरी आदि असामाजिक तत्वों से बचाने में असमर्थ हो गया। इस सामाजिक जड़ता को तोड़ने का प्रयास नये कवि ने किया। प्रत्येक कवि ने वैयक्तिक स्तर पर इस निराशापूर्ण जीवनधारा से संघर्ष किया। ऐसा नहीं कि सभी कवि सामाजिक हो गए हों, लेकिन नए कवियों में शमशेर, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, मुक्तिबोध, रामदरश मिश्र तथा धूमिल आदि में बदलते हुए सामाजिक मूल्यों को यथार्थवादी मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करने की अदम्य आकांक्षा है।

संयुक्त परिवार-व्यवस्था की घुटन, टूटन

सदियों से भारतीय समाज में संयुक्त परिवार-व्यवस्था रही है। आधुनिक समाज में शिक्षा, विज्ञान के प्रचार एवं आर्थिक कठिनाइयों के कारण तथा पारिवारिक

---

1. नयी कविता, अंक दो : डा० रघुवंश, पृ० १३

सम्बन्धो को लेकर एक घुटन वर्षों तक भारतीय समाज भोगता रहा। स्वतन्त्रता के बाद सयुक्त परिवार-व्यवस्था टूटने लगी। ऐतिहासिक दृष्टि से भी टालकाट पारसन ने सयुक्त परिवार-व्यवस्था को ह्रासोन्मुख माना है।[1] पारिवारिक घुटन के कारण नए कवि के मन मे उल्लास का स्थान अवसाद तथा आशा एव मर्यादा का स्थान निराशा ने ले लिया और वह कह उठा—

न देखो नयन कोरो से
गिरा दो पलक का परदा
कि मूदो कान
हो सुनसान
दरवाजे करो सब बन्द
सपने की अटारी के
कि बाहर गरजता तूफान आता है।[2]

सामाजिक मूल्यो को न बदल पाने की तथा सयुक्त परिवार से न निकल पाने की जो विवशता है, उसकी अभिव्यक्ति नया कवि सशक्तता से करता है। वह कहता है—

मैं चली जा रही हूँ ऐसे
जैसे लहरो पर विवश लाश बहती जाय।[3]

पारिवारिक मजबूरियो का अकन नागार्जुन तथा मुक्तिबोध की कविताओ मे प्राय मिल जाता है। ग्रामीण परिवारो मे होने वाले परिवर्तनो का अकन भी रामदरश मिश्र तथा मुक्तिबोध आदि की कविताओ मे मिलता है। मुक्तिबोध की कविता की निम्न पक्तिया सयुक्त परिवार की घुटन अनुभूति का सशक्त अकन करती हैं—

आँखों मे तैरता चित्र एक
उर मे सम्हाले दर्द
गर्भवती नारी का
कि जो पानी भरती है वजनदार घड़ों से,
कपड़ों को धोती है भाड-भाड

1 'There has been a historic trend to whittle down the size of kinship units in the direction of isolating the nuclear family '
Talcott Parkson, *introduction to part II, Differentiation and variation in social structures (Theories of Societies)*, p 340

२ ओ प्रस्तुत मन भारत भूषण अग्रवाल, पृ० २८

३ ठडा लोहा तथा अन्य कविताएं धर्मवीर भारती, पृ० ४४

घर के काम बाहर के काम सब करती है
अपनी सारी थकान के बावजूद
घर की गिरस्ती के लिए ही।[1]

सामाजिक अन्तर्विरोध

यदि नयी कविता सामाजिक मूल्यों को नकार कर चलती तो उसमें सामाजिक अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्ति न मिल पाती। सबसे पहला अन्तर्विरोध व्यक्ति के मन में ही जन्म लेता है। इस ओर संकेत करते हुए मुक्तिबोध कहते है—'अपना भाव दबा डालने की मुझे आदत है। यह मेरी बौद्धिक संस्कृति है··· किन्तु इसमें एक आत्म-विरोध भी है। वह निस्संगता जल्दी ही खुलने लगती है। मन चाहता है संगी-साथी रहें।···मस्ती रहे। नशा रहे।'[2] यह आत्म-विरोध व्यक्ति के मन का दूसरे मन से तथा मन का समाज से है। यहां आकर कभी तो नया कवि रोष एवं क्षोभ से समाज की उपेक्षा कर देता है, लेकिन मुक्तिबोध का कहना है—

अरे! जन-संग आत्मा के
बिन, व्यक्तित्व के स्तर नहीं जुड़ सकते।[3]

सामाजिक स्तर पर लोक-संस्कृति एवं आभिजात्य भावना का संघर्ष भी उभरकर सामने आया। आंचलिक उपन्यास, आंचलिक कहानी एक ओर लोक-संस्कृति के मूल्यों को अभिव्यक्ति देने लगे तो नयी कविता को अनेक कवियों ने लोक संस्कृति से काटकर आभिजात्य बना देना चाहा। इससे भी बड़ी विडम्बना यह थी कि नया कवि ऊपर से आभिजात्य लेकिन अन्दर से लोकपक्ष का समर्थक रहा। इस अन्तर्विरोध का कारण स्थापित होने के मोह के अतिरिक्त और कोई दृष्टिगोचर नहीं होता। इससे एक प्रवृत्ति यह सामने आयी कि नए कवि ने वैयक्तिक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति तो दी, लेकिन वैयक्तिकता ऐसी न थी, जो समाज के लिए घातक हो। इसी सम्बन्ध में लक्ष्मीकान्त वर्मा का यह मत द्रष्टव्य है—'आधुनिक साहित्य की यह विशेषता है कि वह समस्त सामाजिक सम्वेदना को वहन करते हुए भी सामाजिक विकृतियों के प्रति ममतामय नहीं है।'[4]

सामाजिक स्तर पर प्रतिष्ठित व्यक्ति एक ओर तो आदर्शवादी मूल्यों की दुहाई देते रहे और दूसरी ओर वे स्वयं अपने स्वार्थों के लिए उन आदर्शवादी सामाजिक मूल्यों को खण्डित करते रहे। जाति-प्रथा, दहेज, बहु-विवाह, अस्पृश्यता आदि ऐसी अनेक बातें, जिनसे स्वतन्त्रता के २४ वर्षों के बाद भी हमारा देश ग्रस्त है। इस

१. चांद का मुंह टेढ़ा है : मुक्तिबोध, पृ० ७६
२. एक साहित्यिक की डायरी : गा० म० मुक्तिबोध, पृ० ८१
३. चांद का मुंह टेढ़ा है (चकमक की चिनगारियां), मुक्तिबोध, पृ० १५२
४. नयी कविता के प्रतिमान : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ३६

से नया कवि असंतुष्ट रहा, और—'वर्तमान से असंतोष का मतलब वर्तमान की उपेक्षा नहीं होता और साहित्य मे हर किस्म के नयेपन की मूल प्रेरणा नये मूल्य की चेतना और तलाश ही होती है और यह रचना की विफलता है जो इस मूल्यान्वेषण से मुह चुराती है। शोषक हमेशा मूल्यो की सुरक्षा और स्थायित्व की बात करता है और शोषित हमेशा परिवर्तन की माग, क्रांति की माग और नये की स्थापना के लिए व्यग्र होता है, क्योंकि उनमे ही वह व्यापक मानव हित और जनहित देखता है।'[1] इसी जनहित की भावना से प्रेरित नये कवि के लिए भौतिक सुख या भौतिक सौंदर्य मूल्यहीन हो जाता है। जब आत्मा की तृषा जगती है तो कवि शरीर की तृषा के साथ आत्मा की तृषा को भी तृप्त करना चाहता है। शरीर एव आत्मा के अन्तर्विरोध को वह साधना चाहता है। उन्हें एकाकार कर देना चाहता है, और सामाजिक अन्तर्विरोध मे भी कवि वृहद् सामाजिक मानवीय मूल्यों को स्थापना करते हुए 'एक प्यासी आत्मा' का गीत गाता है—

> मैं तुम्हारे लिपिस्टिक लगे होंठों की
> विकृत अरुणिमा में भी
> पख खोल कर तैर सकता हू
> यदि तुम थकावट के पाले में
> झुलस कर गिरे हुए काफिले को
> भोर की सुनहरी धूप की तरह
> उठने की आवाज दो।[2]

नये सामाजिक मूल्यो की अभिव्यक्ति ने शब्दो एव प्रतीको की जड़ता को भी तोड़ा है। गिरिजाकुमार माथुर, श्रीकान्त वर्मा, लक्ष्मीकान्त एव मुक्तिबोध आदि कवियो ने शब्द प्रयोगो एव प्रतीको के माध्यम से लोक तत्वो का अकन किया है। माथुर द्वारा प्रयुक्त 'चदरिमा' या 'ऐपन' जैसे शब्द एक अर्द्ध-विस्मृत भावबोध को फिर जगा देते हैं। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने सामूची सामाजिक चेतना के सदर्भ मे गाँव के पिछड़ेपन के बोध को उद्घाटित किया है तथा मुक्तिबोध ने गाव के पिछड़ेपन को अपनी अनेक कविताओं का कथ्य बनाया है। केदारनाथ सिंह, शमशेर, नागार्जुन, धूमिल आदि कवियो मे बदलते हुए सामाजिक मूल्यो के प्रति गहरी अभिरुचि दिखाई देती है।

एक ओर तो ग्रामीण समाज तथा दूसरी ओर नागरिक समाज। गाव का कवि समाज मे आया, उसने शहरी सभ्यता एव मुखौटो को देखा तो उन्हें वह पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं कर पाया। गांव के कवि के लोक सस्कार पूरी तरह छूट नहीं

---

1 मधुमती, परिचर्चा अक, जनवरी-फरवरी धनजय वर्मा, पृ० 10
2 काठ की घंटियाँ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ० २८७

पाते और शहरी आभिजात्यता को वह ओढ़ नही पाता, लेकिन उसे भी शहर में वह सब करना पड़ता है, जो एक महानगर का कवि करता है। महानगरीय कवि शहरी समाज को जन्म से ही स्वीकार करता रहा है, इसलिए वह ग्रामीण समाज से सीधा-सीधा स्वयं को जोड़ नही पाता। नये कवियो की यह एक विफलता रही है, जिसके कारण वे सीधे-सीधे दो खेमो में बंट जाते है। एक कवि वे है, जिनके काव्य मे महानगरीय विद्रूपताओं का बोध मिलता है। उन विद्रूपताओं, विसंगतियों एवं अन्तर्विरोधो को समझते हुए भी वह न तो उन्हें छोड़ पाता है, न स्वीकार कर पाता है, इससे वह उन पर व्यग करने लगता है या फिर उन पर सीधे-सीधे चोट करता है। अज्ञेय, सर्वेश्वर, धर्मवीर भारती, कैलाश वाजपेयी, इन्दु जैन तथा जगदीश गुप्त आदि कवियों में यह प्रवृत्ति मिल जायेगी। गाँव से संबधित अनुभूतियों को लेकर लिखने वाले कवि मुक्ति-वोध, रामदरश मिश्र, नागार्जुन आदि है। अज्ञेय की कविता 'सांप' तथा भवानी-प्रसाद मिश्र की कविता 'गीत-फरोश' शहरी सम्यता पर व्यंग करती है।

सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन (वैयक्तिकता, अकेलापन तथा अजनबीपन का बोध)

द्वितीय विश्वयुद्ध के वाद पूंजीवादी देशों में भ्रष्टाचार, घूंस और अन्याय का इतना वोलवाला हुआ कि उससे सत्य, न्याय, अहिंसा, विश्वास और प्रेम जैसे मानवीय मूल्यों का लोप हो गया। साम्यवादी देशों में नैतिक मूल्यों का अस्तित्व समाप्त हो गया। इस प्रकार इन व्यवस्थाओं का प्रभाव भारत के युवा-वर्ग पर दोहरा हुआ। स्वतन्त्रता के वाद भारत मे भी एक ओर तो वृहद् मानवीय मूल्यों का विघटन हुआ तथा दूसरी ओर नैतिकता के नाम पर अनैतिकता को प्रश्रय मिलने लगा।

नया कवि इस स्थिति से विक्षुब्ध हो उठा। प्रत्येक व्यक्ति के मन में अविश्वास, आशंका, भय घर करता गया, जिससे भारत का व्यक्ति समाजोन्मुख न होकर वैयक्तिक हो गया। उसके इसी वैयक्तिक दृष्टिकोण के कारण उसमें अकेलेपन तथा अजनबीपन का बोध पनपा। नये कवि ने व्यक्ति की विवशता एवं भय की अनुभूति, असहायता की भावना तथा अमानवीय भावबोध को पहचाना और उन्हें जीवन के वृहद् यथार्थ में रखकर उनका आकलन किया। 'अन्धायुग', 'कनुप्रिया' तथा 'सात गीत वर्ष' की कई कविताएँ मानवीय जीवन की यंत्रणाओं एवं संकटबोध को उद्घाटित करती है। इस भोगी हुई यन्त्रणा की वात करते हुए 'प्रमथ्यु गाथा' शीर्षक कविता के अन्तर्गत कवि का रचनाकार कह उठता है—

जकड़े हुए मेरे हाथ
लोह शृंखलाओं से
जड़ी हुई जो कीलों से
इस आदिम चट्टान से
टूटी हुई है पसलियां
घोर घन का घाव

अन्दर का सारा दर्द
नगा अनावृत है
•
और मैं बेबस हूं
बन्दी हूँ।[1]

कवि की बेबसी सामाजिक यन्त्रणाओ के प्रति है, वह बन्दी है समाज के गले-सडे कटघरो मे और जर्जर रूढियो मे। वह भीड से लडता है, लेकिन उसकी इस लडाई मे उसका 'मैं' आहत हो उठता है और आरोपित 'मैं' का अस्तित्व प्रदर्शन की वस्तु बन जाता है—

जब रास्तों से निकलता हूं
भीड से गुजरता हूँ
तो यह पहचाना गया 'मैं'
बडी शान से फहराता है ध्वजा की तरह
जिस पर लोग
या तो विरोधी दलों की तरह थूकते हैं
या अदब से बिछ जाते हैं
दल के अ ध भक्तों की तरह
और 'मैं' के नीचे कुचला हुआ 'मैं'
तडपता रहता है भीड मे खोये किसी
एकान्त के लिए
जिसे वह अपने को दे दे।[2]

नया कवि 'इस होने और न होने के बीच' की स्थिति मे झूलता रहता है। व्यापक परिवेश मे मानवीय एव सामाजिक मूल्यो की अस्वीकृति देखकर वह आहत हो उठता है और सामाजिक विद्रूपताओ को बदलने मे अक्षम होने के कारण वह कह उठता है कि 'मेरा एक जीवन है', जिसमे वह अकेला है—

पर मेरा एक और जीवन है
जिसमे मैं अकेला हू
जिस नगर के गलियारों फुटपाथों, मैदानो मे घूमा हू
हसा खेला हू
उसके अनेक हैं नगर, सेठ, म्युनिसिपल कमिश्नर, नेता

१ सात गीत वर्ष धर्मवीर भारती, पृ० १७
२ पक गयी है धूप रामदरश मिश्र, पृ० ३

> और सैलानी, शतरंजबाज और आवारे
> पर मैं इस हाहाहूती नगरी में अकेला हूँ ।[1]

सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन के साथ-साथ सामाजिक सम्बन्धों में भी परिवर्तन होता रहा। कुछ सम्बन्ध तो नैतिकता की सीमाओं को लांघ गए, लेकिन ऐसे अपवादों को लेकर किसी प्रवृत्ति का निर्धारण नहीं किया जा सकता। संयुक्त परिवारों की घुटन के कारण मुक्ति की इच्छा बलवती हो उठी, लेकिन बहुत अधिक संयुक्त परिवार टूट नहीं पाए। संयुक्त परिवार की विषमताओं को नये कवि ने महसूस किया, भोगा और नयी कविता में उन्हें अभिव्यक्ति मिली। 'प्रेम' जैसे मूल्य के अर्थ बदल गये, कहीं-कहीं तो प्रेम का लोप हो गया। इन्हीं परिवर्तनों की ओर संकेत करते हुए 'समय-बोध' कविता में श्रीकान्त वर्मा ने कहा—

> इतने मकान पास पास पास सटे-सटे ।
> मगर प्रेम नहीं ।
> इतना घनत्व ।
> इतनी संकुलता ।
> इतनी एकता
> मगर सभी
> फटे-फटे
> ... ...
> सहमति नहीं, भाषा नहीं, प्रस्ताव नहीं ।
> एक साथ उठी हुई
> मुट्ठियां नहीं
> केवल कोंच चीख
> अथवा
> निढाल हो
> अकेले
> सूली पर चढ़ जाना
> अर्थ नहीं पाना ।[2]

अर्थहीनता की स्थिति ने सामाजिक सम्बन्धों में तथा वैयक्तिक सम्बन्धों में तीव्रतर परिवर्तन किए। दया, करुणा, ममता, प्रेम आदि मूल्यों के अर्थ बदल गये। इस ओर संकेत करते हुए अज्ञेय ने कहा—'पुरानी पीढ़ियों की करुणा की जड़ में जीव-दया की भावना थी। बीच की पीढ़ी ने दया को एक नये रूप में देखा। एक सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में, उसकी करुणा सामाजिक चेतना के रूप में प्रकट हुई। दोनों विश्वयुद्धों का अन्तराल इस रूपान्तर का काल है। मानवीय

---

१. सीढ़ियों पर धूप में : रघुवीर सहाय, पृ० ८७
२. माया-दर्पण : श्रीकान्त वर्मा, पृ० ५९-६०

करुणा की सामाजिक चेतना मे परिवतन काल गरीब को सहानुभूति दी जाने लगी, इसलिए नही कि वह गरीब है, वरन् इसलिए कि वह सामाजिक उत्पीडन का शिकार है।"[1] दूसरे शब्दों मे कहे तो व्यक्ति की सामाजिक चेतना को साम्यवादी विचार-धारा का आधार मिला।

सामाजिक अनुभूतियो एव मूल्यो के साथ वैयक्तिक मूल्य भी बदने। व्यक्ति के समाज के साथ सबध बदले। समाज के सदभ मे व्यक्ति अप्रधान न रहा और समाज को भी राजनीतिक परिभाषाओ से मुक्त कराने का प्रयास किया गया तथा उसे वृहद् स्तरो पर वृहद् सदर्भों से जोडा गया। 'सामाजिक दायित्व का मात्र राजनैतिक अर्थ नही रह जाता। राजनैतिक से आगे वह एक नैतिक और साम्कृतिक प्रश्न बन जाता है। सामाजिक दायित्व का अर्थ कला के क्षेत्र मे भी एक नैतिक प्रश्न ही के रूप मे प्रस्तुत होता है।'[2] सस्कृति एव नैतिकता क्या है? यदि सीधे रूप से इस प्रश्न पर विचार किया जाय तो पायेंगे कि नैतिक एव सास्कृतिक मूल्य भी अन्तत कलाकार के अन्तस् से जुडते हैं। वही नैतिक एव सास्कृतिक मानदण्डो मे परिवतन उपस्थित कर देता है और इस परिवतन के पीछे होता है उसका 'अहम्' जो उसके रचनाकार को परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है।

वैयक्तिक मूल्यो मे अपेक्षाकृत महत्वपूण मूल्य प्रेम है। इस सम्बन्ध मे सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन का कथन द्रष्टव्य है—'जिस युग मे सभी कुछ का नये सिरे से मूल्याकन हो रहा है, क्योंकि पुराने और प्रतिष्ठित मूल्य सदिग्ध हो गये हैं, उसमे प्रेम के मूल्य का अन्वेषण हो तो कोई आश्चर्य नही—भारती राधाकृष्ण के प्रेम को भी एक वहत्तर रूप मे देखत हैं—ऐसा रूप जिसे देश-कालातीत कहा जा सकता है, क्योंकि वह सावदेशिक और सावकालिक है।'[3] धर्मवीर भारती ने प्रेम को सहजता का आयाम दिया है। 'कनुप्रिया' मे—'भारती ने प्रयत्न किया है कि राधा के सहज तन्मयता के क्षणो का सकेत करें और फिर कृष्ण के महान और आतक-कारी इतिहास प्रवर्तक रूप को इगित देकर राधा के आंतरिक सकट को पाठक के सम्मुख ले आए। इतिहास पुरुष का यह महाकाय रूप, राधा की सहज कैशोर्य सुलभ आत्मविभोरता के साथ मेल नही खाता, किन्तु राधा का आग्रह है कि वह अपने प्रिय को इसी सहजता के स्तर पर समझेगी और ग्रहण करेगी—क्योंकि प्रेम का आयाम सहजता का आयाम हो सकता है, दूसरे सब आयाम प्रेम के नही, बुद्धि के हैं—राग के नही, चिन्तन के हैं।"[4] प्रेम को सहजता का आयाम नयी कविता ने दिया और प्रेम मध्यकालीन दाशनिक बोझिलता एव छायावादी रहस्यात्मकता से मुक्त हो गया। प्रेम का रीतिकालीन स्थूल रूप भी न रहा। इसीलिए राधा कृष्ण की बातों को सुनते हुए अनुभव करती है—

---

१ आत्मनेपद अज्ञेय, पृ० ११०
२ नयी कविता के प्रतिमान लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० २३६
३ कल्पना, जनवरी '६० स० ही० वात्स्यायन, पृ० ५६
४ वही, पृ० ५६

रजनीगन्धा के फूलों की तरह टप टप शब्द झर रहे हैं
एक के बाद एक के बाद एक……

कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व…
मुझ तक आते आते सब बदल गये हैं
मुझे सुन पड़ता है केवल
राधन्, राधन्, राधन्

शब्द, शब्द, शब्द
तुम्हारे शब्द अगणित हैं कनु—संख्यातीत
पर उनका अर्थ मात्र एक है—
मैं,
मैं,
केवल मैं !
फिर उन शब्दों से
मुझी को
इतिहास कैसे समझोगे कनु ![1]

यह प्रश्नचिन्ह राग, चिन्तन, दर्शन और इतिहास पर लगा हुआ है। राधा इन सबको कृष्ण में देखती है, लेकिन वह कृष्ण को इन्हें समझकर नही पाना चाहती, बल्कि सहज कृष्ण को पाना चाहती है। यही उसका प्रेम है।

नयी कविता में प्रेम को घिसा हुआ, सड़ा हुआ और बुर्जुआवादी आदि कहकर अर्थहीन बनाने का प्रयास भी काफी हुआ है। अकविता के प्रणेता जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार आदि कवियों ने प्रेम जैसे मानवीय मूल्य को उपहास की वस्तु मान लिया, लेकिन ऐसा दृष्टिकोण अधिक दिन तक टिक नही सका और प्रायः नये कवियों ने प्रेम एवं अन्य वैयक्तिक मूल्यों का अंकन भी उदारता एवं विराटता के स्तरों पर किया।

धार्मिक आस्था के विघटन से परिवार-व्यवस्था भंग होने से समाजवादी एवं पूंजीवादी अर्थतन्त्र के संघर्ष तथा परम्पराओं के प्रति मोह-भंग हो जाने के कारण सामाजिक मूल्यों, सामाजिक दायित्वों एवं वैयक्तिक मूल्यों जैसे निष्ठा, प्रेम, दया, करुणा, ममता आदि को नये अर्थ मिले तथा उन्हें बदलते हुए परिवेश एवं बदलते हुए संदर्भो के अनुसार ही प्रतिष्ठित करने का प्रयास नये कवियों ने किया। नयी कविता का प्रमुख स्वर वैयक्तिक है, लेकिन वह वैयक्तिकता कही पर भी सामाजिकता को आहत नही करती, बल्कि मानव स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास एवं मानव-

---

१. कनुप्रिया : धर्मवीर भारती, पृ० ७४

विशिष्टता जैसे मूल्यों की स्थापना होने से सामाजिक मूल्यों को नये अर्थों मे सशक्त आधार देती है।

प्रगतिशीलता

प्रगतिशीलता मूल्य नहीं, मूल्यो का समझने की उदार दृष्टि है। मूल्यो को बदलते हुए परिवेश मे समझना तथा उन्हें जीवन मे रूपायित करने का प्रयास करना ही प्रगतिशीलता है। यह प्रगतिशीलता, मार्क्सवादी, लेनिनवादी प्रगतिशीलता से भिन्न है। *मार्क्सवादी, लेनिनवादी, प्रगतिशीलता का केन्द्र अर्थ है।* हिन्दी के प्रगतिवादी काव्य के आन्दोलन से भी यह प्रगतिशीलता अलग है। प्रगतिवादी साहित्य सर्वहारा वर्ग को लेकर लिखा गया साहित्य था, जो नारो की गूंज मे डूब गया। *तत्कालीन सामाजिक सदर्भों की समझ प्रगतिवाद मे नहीं उभर पायी।* मध्यकालीन काव्य मे तुलसीदास कुछ अर्थों तक प्रगतिशील थे, उनसे भी अधिक प्रगतिशील थे उनके पूर्ववर्ती कबीर, जिन्होंने अपने समय की सामाजिक समस्यायों का उदारता से आकलन करते हुए उन्हे बदलने का प्रयास किया।

नयी कविता में यही प्रगतिशीलता उभर कर आयी। लेकिन नये कवि के सम्मुख नए प्रश्न थे, समस्याएँ नयी थी मूल्य नए थे। परम्परा को तोडकर आगे बढना एव जीवन के लिए घातक मूल्यो को बदलने का प्रयास करना ही प्रगतिशीलता है। अनेक वैज्ञानिक उपकरणो के आविष्कार से, विभिन्न सस्कृतियो के मिलन से, सामाजिक मूल्यो के सघात से तथा आर्थिक विषमताओ से भारतीय समाज मे जो मूल्यगत सक्रमण उपस्थित हुआ, उसमे नए कवि ने जिस भूमिका का निर्वाह किया, वह प्रगतिशील है। प्रगतिशील इसलिए कि नया कवि साम्प्रदायिक सकीर्णताओं एव राष्ट्रीय सामाओ मे ऊपर उठा और उस धरातल मे वृहद् एव उदार तथा सार्वभौमिक मानव-मूल्यो की स्थापना करने का प्रयास किया। समाज को विघटित करने वाले, व्यक्ति की विशिष्टता एव स्वाभिमान का हनन करने वाले मूल्यों को उन्होंने नकार दिया।

प्रगतिशीलता के स्वर यूँ तो प्राय सभी नये कवियो मे उपलब्ध हैं, क्योंकि यह उनके लिए एक समान धरातल है, जहा वे सब एक होते हैं। प्रगतिशीलता का रूपायन विभिन्न क्षेत्रो मे हो सकता है, लेकिन तत्वत वह सब में व्याप्त है। लेकिन फिर भी सामाजिक सदर्भों मे प्रगतिशीलता मुक्तिबोध, नागार्जुन, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय एव धूमिल आदि कवियों म अधिक है। मुक्तिबोध के सम्बन्ध मे कहा गया है—

'उन्होंने सामाजिक आघात को आत्मसात् किया और जीवन के प्रति विशद, परिपक्व और उदार सामाजिक क्रातिकारी दृष्टि दी जो हमे जीवन के सघर्ष मे आस्थावान बनाए रखे।'[1] तथा मुक्तिबोध 'सामाजिक प्रवाह मे व्यक्ति की नगण्यता

---

१ वातायन, दिसम्बर '६६ डा० पूनम दइया, पृ० १७

को स्वीकार करते है, लेकिन आत्महंता के रूप में नहीं। उनका "मैं,...विरोधों से टूट जाता है, लेकिन समर्पित नही होता।"[१] धूमिल कविता के प्रति पारम्परिक मोह को तोड़ने का प्रयास करते कविता की सामाजिक संगति देखना चाहते हैं। इसलिए वे कहते है—

इस वक्त जबकि कान नहीं सुनते है कविताएं
कविता पेट से सुनी जा रही है आदमी
गजल नहीं गा रहा है गजल
आदमी को गा रही है
इस वक्त जब कि कविता मांगती है
समूचा आदमी अपनी खुराक के लिए
उसके मुंह से खून की बू
आ रही है
अपने बचाव के लिए
खुद के खिलाफ हो जाने के सिवा
दूसरा रास्ता क्या है !
मैं आपसे ही पूछता हूं
जहां पसीना पाप से अधिक बदबू
देता है
अपना हाथ खाकर
चिमनी के नीचे खड़ा है
निहत्था मजूर
वहां आप मुझे मजबूर क्यों करते हो ?
कविता में जाने से पहले
मैं आपसे ही पूछता हू
जब इससे न चोली बन सकती है
न चोंगा,
तब आप कहो...
इस ससुरी कविता को
जंगल से जनता तक
ढोने से क्या होगा।[२]

राजकमल चौधरी की कविता—'नीद में भटकता हुआ आदमी', कीर्ति

१. मुक्तिबोध का रचना-संसार : डा० गंगाप्रसाद विमल, पृ० १२
२. आधार, फरवरी-मई, '७० : धूमिल, पृ० ८५

चौधरी, शमशेर, लक्ष्मीकान्त वर्मा, नागार्जुन, सर्वेश्वर, मदन वात्स्यायन, प्रयाग नारायण त्रिपाठी तथा मुक्तिबोध आदि अनेक कवियो की रचनाओं मे सामाजिक सन्दर्भों मे प्रगतिशीलता के विविध आयाम देखे जा सकते हैं। अज्ञेय ने कविता को सामाजिक अर्थों मे—'अहं के विलयन का साधन'[1] स्वीकार किया है। महानगरीय सन्दर्भों मे प्रगतिशीलता के स्वर, कैलाश वाजपेयी, श्रीकान्त वर्मा, मलयज, मणि-मधुकर तथा अज्ञेय आदि कवियो की कविताओ मे मिल जाते हैं।

श्लीलता-अश्लीलता

अश्लीलता का प्रश्न चिरन्तन है और काव्य के सदभ मे भी इसकी चर्चा हर युग मे होती रही है, लेकिन आज तक ऐसे किसी भी सार्वभौमिक एव सार्वकालिक मूल्यों का निर्धारण या निर्माण नही हो सका जिनके आधार पर किसी काव्यकृति को श्लील या अश्लील घोषित किया जा सके। वस्तुत अश्लीलता का प्रश्न ऐसा प्रश्न नही है, जिसे अन्य सदर्भों से काटकर देखा जा सके। एक ओर तो वह सामाजिक सन्दर्भों से जुडता है तथा दूसरी ओर सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण से।

अश्लीलता के सन्दर्भ मे कहा गया है कि—"इसकी (अश्लीलता की) परिभाषा भाषा एव कानून दोनो में अस्पष्ट है।"[2] कानून के अन्तर्गत अश्लीलता की स्थिति को स्पष्ट करते हुए आगे कहा गया है—" कानून केवल सामाजिक विरोधो को वर्गीकृत करता है, लेकिन सामाजिक अभिमत न अश्लीलता का विरोध क्यो किया, यह मनोविज्ञान का एक जटिल प्रश्न है।"[3] कहने का तात्पर्य यह है कि कानून म अश्लीलत्व प्रमाणित करने के लिए कोई ठोस एव सर्वमान्य आधार नहीं है।

फिर भी कतिपय विचारको ने श्लीलता एव अश्लीलता को परिभाषित करने का प्रयास किया है। श्री लक्ष्मीकात वर्मा के मत से—'श्लीलता और अश्लीलता एक समाज सापेक्ष अवधारणा है। इसके मानदण्ड सामाजिक मूल्यो से आविर्भूत होते हैं, उसके सक्रमण और उत्थान-पतन से शासित होते हैं।'[4] इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि "अश्लील वह है जो कला की सृजनशील माँगो की पूर्ति नहीं कर पाता।"[5] मानविकी पारिभाषिक कोश के अनुसार—'श्लील-अश्लील का प्रश्न

---

१ द्रष्टव्य कन्टेम्पोरेरी इंडियन लिटरेचर, पृ० ८७

2 'The definition of obscenity both in language and in law is vague'—Encyclopaedia of Religion & Ethics, Vol IX, Edited by James Hastings, p 441 (Edition 1961)

3 'The law merely codifies social resentment, but why social opinion originally resented 'obscenity', is a difficult question of psychology—वही, पृ० ४४१ (Edition 1961)

४ नये प्रतिमान पुराने निकष लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ८१

५ वही, पृ० ८१

वस्तुत: काव्य का मौलिक प्रश्न है, जिसमें समाज की स्वीकृत मान्यताएँ, परम्पराएँ आदि युग के साथ बदलती है, इसलिए श्लील-अश्लील के मानकों में भी यत्किंचित् परिवर्तन आना अनिवार्य है।"[१] वेब्स्टर्स शब्दकोश के अनुसार अश्लील वह है जो—"इन्द्रियों को प्राय: किसी घिनावने, विकृत या अप्राकृतिक स्वभाव के कारण घृणित लगे।"[२] तथा "अहितकर, मिथ्याचार, निन्दक, अनुत्तरदायी एवं चारित्रिक या नैतिक मान्यताओं के स्थूल अस्वीकार के कारण अरुचिकर लगे।"[३] जेम्स हेस्टिंग्स द्वारा सम्पादित धर्म एवं नीति विश्वकोश में अश्लीलता की कोई परिभाषा तो नहीं दी गयी, लेकिन अश्लील कही जाने वाली सामग्री के आधार पर कहा गया है कि—"अश्लील सामग्री को पर्याय रूप में देखने पर पता चलता है कि इसमें गुप्तांगों एवं अप्राकृतिक प्रयोगों का प्रदर्शन होता है, जिनका सामाजिक अभिमत पर बुरा प्रभाव पड़ता है।"[४]

आक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार भी अश्लील का अर्थ अरुचिकर, घृणित एवं मिथ्याचार आदि है।[५] वस्तुत: अश्लील शब्द लैटिन obscurus अंग्रेजी Obscenity आब्सिनिटि का ही रूपान्तर है, जिसका अर्थ है छिपाना।

नये कवि ने अश्लीलता के मानदण्डों को नए सिरे से समझने का प्रयास किया। उसकी दृष्टि में—"श्लील और अश्लील केवल समय (कनवेंशन) है, जो हर समाज और सामाजिक स्थिति के अपने अलग-अलग होते है।"[६] नये कवि ने साथ ही यह भी समझा कि—"देखना अश्लील नहीं है, अधूरा देखना अश्लील है। इतना ही नहीं, शिशु और माता की एक-दूसरे के सम्मुख नग्नता या नंगापन अश्लीलता नहीं

१. मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड) : स० डा० नगेन्द्र, पृ० १८५

2. 'Disgusting to the senses usually because of some filthy, grotesque or un-natural quality.'

3. 'Repulsive by reason of malignance, hypocrisy, cynicism irresponsibility, crass disregard of moral or ethical principels.'

—Webseter's Third New International Dictionary, Vol, II Edition 1959, Page 1452.

4. '...to take a Considerable percentage of obscene matte this consists of unnatural acts and terms and the exploitation of the organs from which they are derived, which on being made public, offend social opinion.'

—Encyclopaedia of Religion & Ethics, Vol. IX, Edited by James Hastings, page 141 (Edition 1961)

5. The Concise Oxford Dictionary (Fifth Edition) Edited by H. W. Fowler & F. G. Fowler, page 831.

६. आत्मनेपद : अज्ञेय, पृ० ७७

है, यह भी कि अनुरागबद्ध प्रणयी युगल की एक-दूसरे के सम्मुख नग्नता भी नगापन या अश्लीलता नहीं है। वहाँ अश्लीलता उसी को दीखती है, जो अधूरा देखता है—जो केवल नगापन देखता है, उसे औचित्य देने वाली पूर्णता नहीं।"[1] अर्थात् जो कुछ भी अधूरा या असाहित्यिक होता है, वही अश्लील भी। साहित्य में सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण प्रधान होता है। द्विवेदीयुगीन कविता नैतिक विचारों से आक्रान्त होने के कारण अश्लीलता से तो मुक्त है, लेकिन सौन्दर्य के मानदण्डों पर भी खरी नहीं उतरती और श्रेष्ठ कविता होने से वंचित हो जाती है।

नीतिवादी विचारक अश्लीलता के सम्बन्ध में कभी भी एकमत नहीं हो पाये तथा सौन्दर्यवादी विचारकों की दृष्टि में अश्लील कुछ भी नहीं होता। उनकी दृष्टि में साहित्य या तो अपनी पूर्ण समग्रता एवं सौन्दर्य के साथ साहित्य होता है और या फिर वह साहित्य होता ही नहीं।

नीतिवादी विचारक नयी कविता पर भले ही अश्लीलता का आरोप लगाएँ, लेकिन किसी भी कविता का आकलन करने के लिए उसे समग्र रूप में देखना आवश्यक होता है। कविता की मूल चेतना को समझना होता है। कैलाश वाजपेयी की कविता—'शल्य चिकित्सा' को कोई भी नीतिवादी विचारक अश्लील कह सकता है, लेकिन कविता पूर्ण रूप में जो प्रभाव छोड़ जाती है, उसके आधार पर उसे अश्लील कहना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता—

तब अपने सारे कपड़े उतार दो,
वरना किसी की भी गरदन मरोड़ दो
रें रें रें मत करो
दुनिया निकलती है
एक ही सुराख से
हाथ पैर मार कर
अट्टहास कर के
पिट जाती है एक दिन मुट्ठी राख से।[2]

जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार तथा श्रीराम शुक्ल आदि कुछ कवियों ने अकविता की घोषणा करते हुए—'टांगों के बीच की झाड़ियों का दर्श', 'ऋतुगंध से भीगे हुए कपड़े' आदि का वर्णन किया है। उनकी इस प्रकार की कविताएँ सामाजिक सन्दर्भों से च्युत तथा दायित्वहीन कविताएँ हैं। क्योंकि उनकी इस प्रकार की ढेर-सी कविताओं के पीछे न तो कोई सामाजिक दृष्टिकोण है और न ही कोई सौन्दर्यवादी चेतना। इसलिए कतिपय विद्वानों की कतिपय कविताएँ असाहित्यिक कविताएँ हैं, साहित्यिक नहीं।

---

१ आत्मनेपद, अज्ञेय, पृ० ७८
२ देहान्त से हटकर कैलाश वाजपेयी, पृ० ४७

अश्लीलता के प्रश्न पर प्रायः सभी नये कवियों की दृष्टि अपने पूर्ववर्ती नीतिवादी विचारकों से कही अधिक उदार रही है। ऊपर से देखने पर श्रीकान्त वर्मा की निम्न कविता को अश्लील कहा जा सकता है, लेकिन यह कविता सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन की ओर संकेत करती हुई उसके भयावह परिणामों की ओर भी संकेत कर देती है—

मैं सड़क पर
गुजरती हुई
हरेक
स्त्री के साथ
सोने की इच्छा
लिए हुए
जीवन से मृत्यु
की
ओर
चला जाता हूं।[1]

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि नयी कविता में जहां कहीं भी जो अश्लीलत्व आया है, उसने नयी कविता को कविता होने से ही वंचित कर दिया है। यूं नये कवि की दृष्टि नीतिवादियों की अपेक्षा सौन्दर्यवादी विचारको के अधिक निकट है। उन्होंने अश्लीलता को आंकने के कोई मानदण्ड नही बनाये तथा ना ही उन्होंने अश्लीलता की कोई परिभाषा दी, बल्कि उन्होने जीवन को उसकी समग्रता के साथ देखने का प्रयास किया है। उनकी दृष्टि न तो अधूरी है और न ही असाहित्यिक। अतः नयी कविता के अश्लील होने का प्रश्न ही अर्थहीन हो जाता है।

आधुनिक बोध बनाम आधुनिकता

नयी कविता के सन्दर्भ में जितनी चर्चा श्लीलता एवं अश्लीलता के मूल्यों को लेकर हुई, उससे कहीं अधिक चर्चा आधुनिकता या आधुनिकवाद या आधुनिक बोध को लेकर हुई है। हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के लक्षण भारतेन्दु युग से ही मिलने लगते हैं। "यहाँ की आधुनिकता की प्रवृत्ति ने सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में सुधार का प्रयास किया।"[2] लेकिन नये कवियों के आधुनिक बोध में मनोविश्लेषण के विभिन्न सिद्धान्तों, विकासवाद, अस्तित्ववाद तथा मार्क्सवाद आदि अनेक दर्शनों का समावेश हो गया।

वस्तुतः आधुनिकता के आन्दोलन की शुरुआत यूरोप मे सन् १८९० से होती

---

१. माया-दर्पण : श्रीकान्त वर्मा, पृ० १८-१९
२. मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड), सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १७२

है, जो सन् १९१० तक चलता है। इन बीस वर्षों में आधुनिकतावादियों ने तत्कालीन प्रचलित धार्मिक मान्यताओं को नये दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया। उन आधुनिकतावादियों पर प्राय सभी फैशनी दर्शनों का प्रभाव था। सन् १९१० में पोप पियस (Pius) X की कटु आलोचना के कारण इस आन्दोलन को गहरा धक्का लगा और उनकी इच्छाओं के सम्मुख या तो आधुनिकतावादियों ने सिर झुका दिए या टूट गए।"[1]

यह कहना तो न्यायसंगत नहीं होगा कि हिन्दी का आधुनिकतावाद यूरोपीय आधुनिकतावाद का अनुकरण मात्र है, लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह यूरोपीय आधुनिकतावाद के आन्दोलन से प्रेरित अवश्य है। हिन्दी के विचारकों, मनीषियों एवं नए कवियों ने आधुनिकता को समझने का प्रयास अधिक व्यापक धरातल पर किया। इनकी दृष्टि धार्मिकता से प्रेरित न होकर मानवीय मूल्यों से प्रेरित थी।

नये कवियों की दृष्टि में आधुनिकता अर्थ है—'मानव निष्ठा में विश्वास' 'मानव व्यक्तित्व की पवित्रता में विश्वास', 'मानव-नियति का मानवीय रूप तथा, 'मानव-श्रम के प्रति आदर-सूचक भावना।'[2] उनकी दृष्टि में आधुनिकता कोई आरोपित दृष्टि नहीं, बल्कि—'आधुनिकता जनमी है समय और गति के सापेक्ष परिवर्तन और उस परिवर्तन द्वारा मानव-जीवन और व्यक्ति के विकसित तथ्यों से।'[3] आधुनिकता का विश्लेषण करते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी का मन्तव्य है—'आधुनिकता एक मनोवृत्ति है विकसनशील संस्कृति के तत्वों के अनुरूप अपने-आपको परिष्कृत करते चलना ही आधुनिकता है।'[4]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आधुनिकता के तीन लक्षण स्वीकार करते हैं। उनकी दृष्टि में आधुनिकता का पहला लक्षण ऐतिहासिक दृष्टि, दूसरा यह कि इसी दुनिया के मनुष्य को सब प्रकार की भीतियों और पराधीनता से मुक्त करके सुखी बनाने का आग्रह और तीसरा यह कि व्यक्ति-मानव के स्थान पर समष्टि मानव या सम्पूर्ण मानव समाज की कल्याण-कामना।'[5] कुबेरनाथ राय के शब्दों में—'आधुनिकता फैशन से कहीं अधिक सूक्ष्म और गहरी चीज है। यह एक सृष्टि-क्रम है, एक बोध-प्रक्रिया है, एक संस्कार प्रवाह है।'[6] डा० जगदीश गुप्त की दृष्टि से—'आधुनिकता

---

१ 'क' द्रष्टव्य इनसाइक्लोपीडिया आव रिलिजन एण्ड इथिक्स, भाग ८, जेम्स हेस्टिंग्स द्वारा सम्पादित संस्करण '६४ पृ० ७६३ ७६८

'ख' चेम्बर्स इनसाइक्लोपीडिया भाग ९, संस्करण '५९, पृ० ४५८

'ग' मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड) स डा० नगेन्द्र, पृ १७२

२ कल्पना, मार्च '६१ लक्ष्मीकान्त वर्मा पृ १८

३ वही, पृ० १९

४ हिन्दी नवलेखन रामस्वरूप चतुर्वेदी, प २२९

५ धर्मयुग, २८ सितम्बर हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १२

६ ज्ञानोदय, अप्रैल '६७ कुबेरनाथ राय पृ० ३०

का अर्थ···पुरातन को गाली देना नहीं है, वरन् सारग्राहिणी तत्वदृष्टि के साथ विगत सांस्कृतिक समृद्धि को आत्मसात् करते हुए मानव की वर्तमान नियति एवं उसके भावी विकास के प्रति अपने दायित्व का विशिष्ट एवं सक्रिय अनुभव करना है"[१] डा० रघुवंश के मत से आधुनिकता 'यांत्रिक जड़वाद से आगे बढ़कर मानवतावाद की प्रतिष्ठा करती है।'[२] डा० शम्भूनाथ सिंह ने आधुनिकता बोध को 'मानव के भविष्य के प्रति आस्था', 'सर्जनात्मक व्यक्ति की खोज और आत्मोपलब्धि' तथा 'कालहीन अमूर्त सत्य की अभिव्यक्ति'[३] कहा है। डा० नगेन्द्र ने आधुनिकता के प्रश्न पर विचार करते हुए कहा है कि 'आधुनिक दृष्टि मध्ययुगीन और प्राचीन की अपेक्षा इसलिए भिन्न है कि इसमें इतिहास-बोध की प्रधानता है, अर्थात् यह अपने पर्यावरण के प्रति निश्चय ही सजग है···जीर्ण पुरातन का त्याग, संशोधन तथा पुनर्मूल्यांकन की पद्धति से नव-नव रूपों के विकास की आकांक्षा वैचित्र्य और नवीनता के प्रति आकर्षण आधुनिकता के सहज अंग हैं।'[४] डा० शिवप्रसाद सिंह ने आधुनिकता को पौराणिकता से जोड़ने का प्रयास करते हुए कहा है कि 'आधुनिकतावादी दृष्टि पुरातन को भी नए सन्दर्भों में देखकर उसका आकलन करती है।'[५] डा० रमेश कुन्तल मेघ के शब्दों में—'आधुनिकता एक विचारविधि, एक व्यवस्था की समग्र धारणा, एक चिन्तन-पद्धति, एक वृत्ति अथवा मूल्य चक्र में अभिहित होती है।'[६] उन्होंने आधुनिकता को दर्शन एवं इतिहास—इन दो रूपों में स्वीकार किया है।[७] हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार—'आधुनिकता की पहली और अनिवार्य शर्त स्वतन्त्र चेतनता है।'[८] वेब्स्टर्स शब्दकोश में आधुतिकता का अर्थ है—'आधुनिक होने का गुण या मनोदशा।'[९]

इन सभी मन्तव्यों को दृष्टि में रखते हुए यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि आधुनिकता अपने परिवेश एवं बदलते हुए सन्दर्भों तथा जीवन-मूल्यों को समझने की दृष्टि है। इस सम्बन्ध में एक प्रश्न यह भी उठाया जाता है कि क्या आधुनिकता स्वयं में कोई मूल्य है ? जिस प्रकार से प्रगतिशीलता कोई मूल्य न होकर मूल्यों को सामाजिक परिवेश में प्रतिष्ठित करके देखने की दृष्टि है, उसी प्रकार से आधुनिकता भी कोई मूल्य न होकर मूल्यों को समझने की दृष्टि है।

---

१. नयी कविता स्वरूप और समस्याएं : डा० जगदीश गुप्त, पृ० २४
२. साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, डा० रघुवंश, पृ० १८३
३. प्रयोगवाद और नयी कविता : डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ० १७७
४. नयी समीक्षा : नये संदर्भ : डा० नगेन्द्र, पृ० ६१-६२
५. द्रष्टव्य आधुनिक परिवेश और नवलेखन : डा० शिवप्रसाद सिंह, पृ० २३४-३६
६. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण : डा० रमेश कुन्तल मेघ, पृ० ३११
७. वही, पृ० ३१४
८. हिन्दी साहित्यकोश, भाग १, स० डा० धीरेन्द्र वर्मा (प्र० सं०), पृ० ११०
9. "The quality or state of being modern"—Third webster's New International Dictionary, Vol. II, p. 1452 (Edition 1959)

डा० नगेन्द्र ने आधुनिकता को मूल्य स्वीकार न करते हुए कहा है—'आधुनिकता को मूल्य के रूप में स्वीकार करना समीचीन नहीं होगा—आधुनिकता विधि मात्र है—विधि रूप में उसका प्रभाव अक्षुण्ण है पर विधि से अधिक उसका महत्व नहीं है।'[1] लक्ष्मीकान्त वर्मा ने यह कहकर कि आधुनिकता आज की सापेक्षता में मूल्यों और मर्यादाओं को नयी दृष्टि देने में है।[2] आधुनिकता को एक दृष्टि ही स्वीकार किया गया है। डा० धर्मवीर भारती,[3] डा० जगदीश गुप्त[4] आदि अनेक कवि-विचारकों ने आधुनिकता को मूल्य न मानकर एक दृष्टि ही माना है। डा० इन्द्रनाथ मदान ने इस सम्बन्ध में कहा है—'आधुनिकता एक मूल्य न होकर प्रक्रिया है, जिसके मूल में प्रश्नचिन्ह की निरन्तरता है।'[5] इस दृष्टि से सभी विद्वान, विचारक एकमत हैं कि आधुनिकता मूल्य न होकर मूल्यों को समझने की एक दृष्टि है। इसी बात को कुबेरनाथ राय ने ऐसे कहा है—'आधुनिकता निज में कोई मूल्य या तथ्य नहीं बल्कि एक स्वभाव है, एक संस्कार-प्रवाह है, एक बोध प्रक्रिया है।'[6]

प्रत्येक युग स्वयं में आधुनिक होता है। हिन्दी का मध्ययुग अपने में उतना ही आधुनिक था, जितना आज का युग, लेकिन दोनों की आधुनिकता में फिर भी अन्तर है। मध्ययुग की आधुनिकता का आधार धार्मिक, नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक था, जबकि इस युग की आधुनिकता का आधार वैज्ञानिक क्रान्ति और उसमें उद्भूत नये दर्शन हैं। आधुनिकता जड़ न होकर गतिशील है। आधुनिक सम्वेदना के उपकरण हैं बौद्धिकता, रागात्मक तटस्थता, नया सौन्दर्य बोध एवं जीवन को 'अनुभूति' दे सकने वाले प्रत्येक क्षण का महत्व।

नयी कविता में आधुनिकता के लक्षण प्रमुखतः दो रूपों में दिखाई पड़ते हैं। एक ओर तो नया कवि जीवन-मूल्यों को बदलते हुए परिवेश में समझने का प्रयास करता हुआ उन्हें रूपायित करता है, स्वीकार कर लेता है, तथा दूसरी ओर वह आधुनिकता के दम्भ पर व्यंग करता है। व्यंग वह उस समय करता है जब आधुनिकता के नाम पर कविता में असामाजिक तत्व घुसपैठ करने लगते हैं। आधुनिकता का दम्भ भरने वालों पर वह 'अर्ध आधुनिकों की बातचीत' पर चोट करता हुआ कहता है—

> 'जिन्दगी है भार हुई,
> दुनिया है बहुत बोर

---

१ नयी समस्या—नये सदर्भ डा० नगेंद्र, पृ० ६६
२ नयी कविता के प्रतिमान लक्ष्मीकान्त, पृ० ३४
३ द्रष्टव्य—पश्यन्ती डाक्टर धर्मवीर भारती (लेख—आधुनिकता अर्थात सकटबोध)
४ द्रष्टव्य—नयी कविता, स्वरूप और समस्याएँ डा० जगदीश गुप्त (लेख आधुनिकता और मानववादी दृष्टि)
५ लहर, जून '६८ डा० इन्द्रनाथ मदान, पृ० ४७
६ ज्ञानोदय, अप्रैल '६७ कुबेरनाथ राय, पृ० ३२

'दम्भी पाखण्डी बहुरूपिये
हैं बड़े लोग'
'बात यह है
सारा जमाना ही बेईमान'
'आदमी असल में हैं
बेसिकल हैवान'
'क्या करें
विकृत हो गए हैं सभी मूल्यमान'
'सिर्फ घूमता है
रेज़गारी सा इन्सान'
'हटाओ यार
मारो गोली
पियो कॉफी
डम-डम डीगा-डीगा
मौसम भीगा-भीगा ।'[1]

—गिरिजाकुमार माथुर

वह व्यंग करता है उन लोगों पर, जो बौद्धिक रूप से जड़ हो चुके हैं, क्योंकि नया कवि जानता है कि 'आधुनिकता एक जड़ स्थिति न होकर विकास की स्थिति है। उसकी प्रकृति सदैव गत्यात्मक रहती है। नवीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में अपने-आपका संस्कार करना ही आधुनिकता है।'[2] और वह यह भी जानता है कि—'आधुनिकता संस्कृति की ग्रहणशीलता तथा विकासोन्मुखता की परिचायक दृष्टि है, इसीलिए वह समूची जीवन-व्यवस्था को प्रभावित करती है।'[3] नए कवि को इस बात का भी एहसास है कि आधुनिकता वर्तमान के सन्दर्भ में भविष्योन्मुखी दृष्टि है, इसीलिए वह तुच्छ आस्थाओं को कुचल कर उन पर अदम्य उत्साह के आघात अंकित कर देता है—

हमने पहचान लिया है
आस्थाएं तुच्छ हैं
इसीलिए हमने अपने ही पैरों से
उनकी छायाओं के वक्षःस्थल
कुचल कर

१. जो बंध नहीं सका : गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ३०
२. हिंदी नवलेखन : रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ० १३
३. वही, पृ० १३

अपने अदम्य उत्साह के आघात
उन पर अंकित कर दिये हैं ।[1]

सामाजिक अर्थों मे आधुनिकता ने सामाजिक मूल्यो, धार्मिक मान्यताओ एव अन्धविश्वासो को बदल दिया है । वैज्ञानिक उपकरणो एव नवीन जीवन-दर्शनों के सन्दर्भ मे आधुनिक दृष्टि मानव एव मानवीय मूल्यो का नए सिरे से समझने का प्रयास करती है । आधुनिकता का आधार है, मानवतावादी दृष्टि, जो उदार, व्यापक और सचेत है। विजय बहादुर सिंह ने इसी ओर सकेत करते हुए कहा है कि 'चाद हमारे लिए अब देवता नही रह गया, क्योकि हमने उसके रहस्यों को जान लिया है। यही कारण है कि पूर्व मान्यताए आज के शकाकुल मानव के प्रश्नो के उत्तर नही दे पातीं, जिससे 'पूर्व' के साथ असम्पृक्ति का बोध होने लगता है । वस्तुत यही बोध आधुनिकता के बोध का प्रारम्भिक बिन्दु है ।'[2] आधुनिकता ऐतिहासिक एव सास्कृतिक परिप्रेक्ष्य म देखते हुए नये कवि लक्ष्मीकात वर्मा का कथन है 'आधुनिकता की यह माग है कि इतिहास और सस्कृति को भी वही मानवीय स्तर दिया जाय जो आज के जीवन का विशिष्ट अग है । मानवेतर तत्वो का अधूरापन और उससे सम्बद्ध खोखलापन नये सत्यान्वेषण की दृष्टि स अकित किया जाय जब हम आधुनिकता की बात करते हैं, तो हमारे सामने केवल दो ही चित्र आते हैं—एक तो नैतिक और चेतन स्तर पर बिखरा टूटा, अस्तव्यस्त मानव और उसकी आत्मनिष्ठा का प्रश्न, दूसरा उसका असम्पृक्त अकेलापन जिसे वह अर्थ देना चाहता है अथवा जिसको वह नए जीवन-सन्दर्भों से जोड़ना चाहता है ।'[3] इसीलिए नया कवि जीवन के दुहरे व्यक्तित्व एव दोगलेपन को भस्म करके उसे विराटता का नया आयाम देना चाहता है । स्वर्णिम भविष्य एव नए व्यक्तित्व की कामना करते हुए कहता है—

दुहरे व्यक्तित्वों के
चेहरे पर भस्मसात
सशय, भय, नफरत की
भेद झिल्लियां विराट
निकलेगा व्यक्ति नया
सूरज के टुकडे सा
तोड अन्याया की
शीशे पर खिची दरार

---

१ कविताए, १९६१ नेमिचन्द्र जैन (स० अजितकुमार, विश्वनाथ त्रिपाठी), पृ० ७१

२ द्रष्टव्य—माध्यम, सितम्बर '६८ प० २२

३ कल्पना—मार्च '६१ लक्ष्मीकात वर्मा पृ० २०

इन्सानी मूल्यों के डाल सोन-तार नये
जीवन को फिर विराट् गीत का अलाप दो
अग्नि दो, तपन दो, नया ताप दो।[1]

—गिरिजाकुमार माथुर

'कनुप्रिया' की राधा का प्रेम आधुनिक दृष्टि से ही अंकित किया गया है। 'संशय की एक रात' के राम का शंकाकुल हृदय भी नये कवि की आधुनिक शंकाकुल दृष्टि का ही परिणाम है। 'अन्धायुग' का युद्ध-दर्शन इतिहास एवं संस्कृति को मानवीय स्तर देता है। यह भी आधुनिकता का एक अंग है। 'आत्मजयी' के नचिकेता की आत्मा की खोज भी आधुनिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्तित्व की खोज है। कहने का तात्पर्य यह है कि नयी कविता की आधुनिकता ने बदलते हुए जीवन-मूल्यों को मानवीय स्तरों पर ही प्रतिष्ठित किया है।

आधुनिकता में प्रचलित दर्शनों का समावेश होना स्वाभाविक है। मनोविश्लेषणवाद, मार्क्सवाद और विकासवाद आदि सिद्धान्तों ने आधुनिकता को सम्पन्न किया है, लेकिन नया कवि इन सिद्धान्तों के अमानवीय पक्षों पर व्यंग करने से नहीं चूकता। अज्ञेय की कविता—'कांच की मछलियां', डार्विन के विकासवादी सिद्धान्त पर व्यंग करती हुई अन्त में कहती है—

जिन्दगी के रेस्तरां में यही आपसदारी है
रिश्ता नाता है—
कि कौन किसको खाता है।[2]

कुछ लोग फैशन के रूप में बिना समझे आधुनिक होने का दम्भ भरने के लिए आधुनिकता को ओढ़ लेते हैं। नये कवि की दृष्टि में यह हास्यास्पद स्थिति है। इसीलिए वह ऐसी आधुनिकता का मजाक उड़ाते हुए कहता है—

दूसरों के कपड़े पहन कर
सड़क पर मिले एक प्रोफेसर
बोले :
'जिस्म तो अपना है
कपड़े भी अपने हों
क्या जरूरी बात है !
उद्देश्य तो केवल
चाहिये होना आधुनिक

---

१. शिलापंख चमकीले : गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ८३
२. कितनी नावों में कितनी बार : अज्ञेय, पृ० ७६

देखिए लगता हूं न ठीक ।"[1]

यह कहना असगत न होगा कि आधुनिकता का सीधा सम्बन्ध सामाजिक मूल्यो से है, क्योंकि वह सामाजिक मूल्यो को समझने एव उन्हे नयी दृष्टि देने का बोध है। इतिहास, सस्कृति एव दर्शन को मानवीय स्तरो पर समझना भी आधुनिकता है और यह आधुनिकता अपने विभिन्न रूपो मे नयी कविता मे ध्वनित हुई है। आधुनिकता के तत्व प्राय सभी नये कवियो मे मिल जाते हैं, लेकिन प्रमुखत आधुनिकता के सहज अगो की अभिव्यक्ति जिन कवियो की कविताओ मे मिली है उनमे से कुछ नाम इस प्रकार हैं—अज्ञेय, सर्वेश्वर, गिरिजा कुमार माथुर लक्ष्मीकान्त वर्मा, जगदीश गुप्त, धर्मवीर भारती, कुवरनारायण, श्रीकान्त वर्मा कैलाश वाजपेयी केदारनाथ अग्रवाल, विपिनकुमार, दुष्यन्त कुमार, नागार्जुन, मुक्तिबोध, कीर्ति चौधरी, इन्दु जैन, भारतभूषण अग्रवाल, रघुवीर सहाय, विजयदेव नारायण साही, शमशेर तथा रामदरश मिश्र आदि।

नैतिक मूल्य

नैतिकता का अर्थ

'कला की तरह से नैतिकता भी अनेकता मे एकता का अर्जन है। आदर्श *व्यक्ति वह है जो अपने-आप मे अनेक वैविध्यो, जटिलताओ तथा जीवन की सम्पूर्णता को* अत्यन्त कुशलता से एकाग्र कर लेता है।'[2]

यशदेव शल्य के अनुसार नीति की न्यूनतम परिभाषा कर्तव्याकर्तव्य का क्षेत्र है।[3] कर्तव्य का अर्थ है उचित कर्म। इस अर्थ मे उचित कर्म ही चाहे वह बौद्धिक हो या शारीरिक—नैतिक हो सकता है। लेकिन कौन-सा कर्म उचित है और कौन-सा अनुचित, इसका निर्णय करना आसान नहीं है। क्योकि एक ही कार्य एक वर्ग के लिए उचित तथा दूसरे के लिए अनुचित हो सकता है। इस प्रकार से एक ही कार्य एक वर्ग के लिए नैतिक तथा दूसरे वर्ग के लिए अनैतिक हो जायगा। इसी समस्या को दर्शन के स्तर पर काण्ट ने यह कहकर सुलझाया कि ससार मे सिवाय शुभ सकल्प के कुछ भी शुभ नही

---

१ गर्म हवाए सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ० ३७

2 'Morality, like art, is the achievement of unity in diversity, the highest type of man is he who, effectively unites in himelf the widest variety, *complexity and completeness of life*'

The Story of Philosophy Will Durant, p 385,

(September 1967 Edition)

३ आलोचना, अप्रैल-जून '६८ यशदेव शल्य, पृ० ३२

है। मानव-कल्याण की बात सोचना नैतिक है, लेकिन जब मानव-कल्याण के लिए कुछ कदम उठाए जाते हैं तो एक वर्ग उसे नैतिक कहता है तथा दूसरा वर्ग अनैतिक। उदाहरण के लिए बंगला देश के संघर्ष में भारत का योगदान भारत तथा बंगला देश के लिए नैतिक था, लेकिन पाकिस्तान, अमरीका तथा अन्य कई राष्ट्रों के लिए अनैतिक। इस बात का निर्णय कैसे हो कि क्या नैतिक है और क्या अनैतिक ? इसी प्रश्न के उत्तर मे नैतिकता का अर्थ निहित है।

इस प्रश्न का उत्तर सम्भवत: 'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय' सूत्र में निहित है। या इस बात को यूं कहा जाय कि नैतिक-अनैतिक का निर्णय कार्य के परिणाम से होता है, न कि कार्य-सम्पादन के साधनों से। मानव-हत्या किसी भी दृष्टि से नैतिक नहीं कही जा सकती, लेकिन राष्ट्र-रक्षा या मानव-मूल्यों के लिए लड़े गये युद्धों में हजारों लाखों मानव-हत्याएं नैतिक हो जाती है।

श्री चांदमल के दृष्टिकोण से—'नैतिक तथ्यों का नैतिक दृष्टि से पर्यवेक्षण करने पर सभी नैतिक चिन्तक उनकी मूल्यात्मकता के बारे में सदैव एक ही निष्कर्ष पर पहुचेंगे। इसी अर्थ मे नैतिक निर्णयों को सार्वभौम कहा जा सकता है।'[1] लेकिन कौन-सी दृष्टि नैतिक है और कौन-सी नैतिक नही है, इसका निर्णय करना कठिन है। इसलिए कहा जा सकता है कि नैतिकता के सम्बन्ध मे यह एक सरल दृष्टि है।

नैतिक मूल्यों को सापेक्ष स्वीकार करना अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है, क्योंकि किसी भी कथ्य, वस्तु अथवा स्थिति के समय एवं स्थान के साथ ही नैतिक या अनैतिक स्वीकार किया जा सकता है। इससे भी अधिक उदारवादी दृष्टिकोण यह है कि नैतिक-अनैतिक कुछ नहीं है, बल्कि व्यक्ति का सोचना ही किसी वस्तुस्थिति को नैतिक या अनैतिक बना देता है। इसलिए नैतिक मूल्यो के सम्बन्ध मे कोई अन्तिम निर्णय देना सम्भव नही है। फिर भी सामाजिक सन्दर्भों मे जो बात सामाजिक हितों को आहत करे, उसे अनैतिक कहा जा सकता है।

नैतिक मूल्यों का विकास

'विश्व नैतिकता पतन से हार है'[2] कहकर नया कवि आज की नैतिकता के विशाल आयामों की ओर संकेत करता है। प्रस्तुत पंक्ति इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि नैतिक मूल्यों की शुरुआत व्यक्ति मे हुई, जिसने धीरे-धीरे विकसित होकर 'विश्व-नैतिकता' को रूप दिया।

सिड्विक, लिली, हार्टमैन आदि विद्वानो ने नैतिक मूल्यो के विकास का इतिहास लिखते हुए बताया है कि प्रारम्भ में व्यक्ति के लिए नैतिक मूल्यों का अधिष्ठाता ईश्वर था तथा ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप मे कार्य करने वाले पोप, पण्डित या आचार्य आदि

---

१. दार्शनिक (त्रैमासिक), जनवरी '६५ : श्री चांदमल, पृ० २३३
२. नयी कविता, अंक १ : गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ८१

विद्वानो की मंत्रणा अंतिम होती थी। लेकिन इतिहास कभी रुकता नहीं और न ही विकास अवरुद्ध होता है। धीरे-धीरे चेतना (concious) का विकास हुआ और उसके साथ ही साथ उदय हुआ मानववाद का। 'मानववाद के उदय काल म ईश्वर-जैसी किसी मानवापरि सत्ता या उसके प्रतिनिधि धर्माचार्यों को नैतिक मूल्यो का अधिनायक न मानकर मनुष्य को ही इन मूल्यो का विधायक मानने की प्रवृत्ति विकसित हुई।"[1] इसी मानववाद के उदय के साथ ही मानव को यह अनुभव भी प्राप्त हुआ कि—'अन्तरात्मा' मानवीय अन्तर मे स्थित कोई दैवी या अतिप्राकृत शक्ति न होकर वस्तुत मानवीय गरिमा के प्रति हमारी सवेदन-शीलता का ही दूसरा रूप है।'[2]

मानवीय गरिमा, मानव-निष्ठा तथा मानव-स्वाभिमान के आधार पर ही विश्व-नैतिकता का विकास हुआ जिसे नैतिक मूल्यो का चरमोत्कर्ष कहा जा सकता है, लेकिन इसके साथ ही जब लगा कि विश्व नैतिकता पतन के द्वार है' तो सहज ही यह स्वर भी उभर आया कि—'व्यवस्था, समाज, धर्म, कोई भी प्रतिबद्धता यदि जीवन के लिए असाथक हो गई है तो नैतिक मूल्यों के पुन स्थापन के सम्बन्ध मे इन्हे नकारना ही होगा।"[3] इसी सन्दर्भ मे कहा जा सकता है कि नयी कविता नैतिक मूल्यो के पुन स्थापन की कविता है। बदलते हुए नैतिक मूल्यो को अभिव्यक्ति देने वाली कविता है।

नैतिक-निषेध नैतिक अन्तर्विरोध तथा नयी कविता

नैतिक मूल्यो को मोटे रूप से यौन से जोड़ा जाता है, लेकिन नयी कविता की नैतिकता केवल यौन सबधो एव यौन-विकृतियो तक ही सीमित नही है। नयी कविता मानवीय सवेदना को सबसे बडा नैतिक मूल्य स्वीकार करती है। मानवीय सवेदना न केवल नयी कविता का बल्कि अन्य साहित्यिक विधाओ का भी एक नैतिक मूल्य है। नदी के द्वीप की रेखा मानवीय सवेदना को ही सबसे बडी नैतिकता मानती है, न कि यौन-सबधो को। लेकिन इसका अर्थ यह नही कि नयी कविता के नैतिक मानो मे यौन-सम्बन्ध हैं ही नही। नयी कविता नैतिक मूल्यो को उदार रूप मे स्वीकार करती है।

नयी कविता पर अश्लील तथा अनैतिक होने का आक्षेप है। आक्षेप न तो पूरी तरह से सही है और ना ही पूरा गलत। नयी कविता मे ऐसे उदाहरण अनेक मिल जाएगे, जिन्हे आधार मानकर नयी कविता को अनैतिक कहा जा सकता है, लेकिन यहा पर यह विचार करना आवश्यक है कि यदि कहीं पर नैतिकता विरोधी स्वर है तो क्यो? इस प्रश्न के उत्तर मे कहा जा सकता है कि—नैतिक निषेध

---

१ मानव मूल्य और साहित्य धर्मवीर भारती, पृ० २१

२ वही, पृ० २१

३ वातायन, दिसम्बर '६६ पूनम दईया, पृ० १७

(Moral Taboos) और इन निषेधों से उत्पन्न अन्तर्विरोध। केन्टरबरी के पादरी डा० लैंग ने कहा है कि वे यौन विषय पर चुप्पी की अपेक्षा यौन की खुली चर्चा अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि जितने खतरे यौन-चर्चा से उत्पन्न हो सकते हैं उससे कहीं अधिक खतरे यौन विषय पर चुप्पी साधने से हो सकते हैं।

द्विवेदीयुगीन कविता नीतिशास्त्र की व्याख्याता अधिक थी। उस युग में लिखी गई कविता 'जुही की कली' अश्लील और घोर अनैतिक थी। छायावादी कवि की दृष्टि में यौन-सम्बन्धों की चर्चा केवल झीने पर्दे के पीछे से ही की जा सकती थी। इसका कारण स्पष्टतः हमारा और हमारे संस्कार रहे हैं। भारतीय समाज में नैतिक निषेध बलपूर्वक कार्य करते रहे हैं। नया कवि भी इन नैतिक निषेधों से बच नहीं सकता था। नैतिक निषेधों ने नैतिक अन्तर्विरोधों को जन्म दिया। यौन-कुण्ठाओं ने नये कवि तथा साथ ही नयी कविता को भी ग्रस लिया। डा० नामवर सिंह के मत से 'जागरूक से जागरूक लेखक भी 'सैक्स' के किसी-न-किसी प्रकार के चित्रण से बच नहीं सका है।'[1] लेकिन सर्वत्र ऐसा नहीं है। नयी कविता का यह भी एक रूप है, जिसे इस धारा से अलग नहीं किया जा सकता। कुण्ठाजन्य आक्रोश और आक्रोश में लिखी गयी कविताएं नयी कविता का एक बहुत बड़ा हिस्सा है जो नयी कविता को कहीं पर आगे बढ़ाती है तो कहीं पर उसे अवरुद्ध भी करती हैं।

नैतिक मूल्यों को बदलने में आधुनिकता का बड़ा हाथ रहा है। एक बहुत बड़े वर्ग ने आधुनिकता को केवल फैशन के रूप में ही स्वीकार किया। आधुनिकता के आवेग में नैतिक मान उड़ा दिए गए और नये कवि ने इस स्थिति का आकलन करते हुए कहा—

वास्तव में हमारे उन किशोर शिक्षार्थी बालकों के विश्वास भरे
चमकते चेहरों की
सहमा विजड़ित हो गई आंखें हैं
जिनके नैतिक मान हमने आधुनिकता के विस्फोट में उड़ा दिये।[2]

फ्रायड, एडलर, युंग आदि का प्रभाव : नैतिकता का मनोवैज्ञानिक पक्ष

नयी कविता में जिन नैतिक मूल्यों को अभिव्यक्ति मिली है, वे फ्रायड, एडलर, युंग तथा हैवलक एलिस आदि मनोविश्लेषणशास्त्रियों से दूर तक प्रभावित हैं। हैवलक एलिस ने यौन-सम्बन्धों को बृहद् रूप में देखकर ही उनका विश्लेषण किया है।

कविता-सर्जना के सम्बन्ध में फ्रायड, एडलर, युंग के अपने-अपने सिद्धान्त

---

१. इतिहास और आलोचना : नामवर सिंह, पृ० ३५
२. नयी कविता, अं० ३ : अज्ञेय, पृ० ३८

रहे हैं। फ्रायड ने मस्तिष्क की तीन अवस्थाएं स्वीकार करते हुए अद्ध चेतनावस्था को कला के सृजन का क्षण माना है। उसकी दृष्टि मे काव्य की मूल प्रेरणा अभुक्त काम-वासना (लिबिडो) है। एडलर ने कविता की प्रेरणा हीनता की भावना को माना है जबकि युंग ने अपने पूर्ववर्ती दोनो लेखको के मतो को आंशिक रूप से स्वीकार करते हुए जीवनेच्छा को काव्य की मूल प्रेरणा माना है। इस दृष्टि से युंग की धारणा अधिक तर्कसंगत और समीचीन लगती है।

तीनो की दृष्टि मे एक बात सामान्य है और वह है व्यक्ति का अहं। उनके मत से काव्य सजना से अहं की तुष्टि या तृप्ति होती है तथा कलाकार सामान्य व्यक्ति से अधिक अहंवादी होता है। नया कवि पूर्ववर्ती कवियो की तरह से अहंवादी है, लेकिन उसका अहं चेतन स्तर पर है। अपने अहं के प्रति इतना सचेत होने के पीछे यही सिद्धान्त कार्य कर रहे हैं। यही कारण है कि वह स्पष्ट घोषणा करता है कि—

विश्व के इस रेत-वन पर
मैं अहं का मेघ हूं।"[1]

—नरेशकुमार मेहता

इसी अहं का एक दूसरा रूप भी है। वह रूप तब उभरता है जब उसका अहं खण्डित होकर बौना और विवश हो जाता है। वह तब कहता है—

शायद कल,
टूटी बैसाखी पर चल कर
फिर मेरा खोया प्यार
वापस लौट आये।
शायद कल
प्रकाश स्तम्भो से टकराकर
फिर मेरी अन्धी आस्था
कोई गीत गाए।
शायद कल
किसी के कन्धो पर चढ़ कर
फिर मेरा बौना अहं
विवश हाथ फैलाए।[2]

अहं की नैतिकता का एक तीसरा पक्ष और भी है। उसमे न तो अहं प्रबल

---

१ दूसरा सप्तक नरेशकुमार मेहता (स० अज्ञेय), पृ० १११ (द्वितीय सस्करण)
२ नयी कविता, अक ३ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ० ८७

हो उठता है तथा न ही वह विवश या खण्डित होता है, बल्कि विसर्जित हो उठता है। यहां कवि की नैतिकता आत्मविसर्जन में निहित है—इसलिए वह कहता है—

यह जन है : गाता गीत जिन्हें फिर और कौन गायेगा !
पनडुब्बा : यह मोती सच्चे फिर कौन कृती लायेगा !
यह समिधा : ऐसी आग हठीला विरल सुलगायेगा।
यह अद्वितीय : यह मेरा : यह मैं स्वयं विसर्जित :
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा
है गर्वभरा, मदमाता पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।[1]

फ्रायड ने जिस अभुक्त एवं अतृप्त आकांक्षा की बात कही है उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में है—

मेरे मन की अंधियारी कोठरी में
अतृप्त आकांक्षा की वेश्या बुरी तरह खांस रही है।[2]

इसके अतिरिक्त नैतिक मूल्यों का एक मनोवैज्ञानिक पक्ष और भी है, जो नितान्त वैयक्तिक है। प्रत्येक व्यक्ति नैतिक मूल्यों को अपनी सुविधा के अनुसार मानता है। जिन नैतिक मूल्यों के लिए वह दूसरों के लिए कठोर होता है, उन्हीं के लिए वह अपने या अपनों के लिए बड़ा उदार हो उठता है। इन्हीं दोहरे नैतिक मानों पर नयी कविता व्यंग करती है। नया कवि दोहरे नैतिक मानों को स्वीकार करके ही उसे नकारता है।

राजनीति, युद्ध और नैतिक मूल्य

सामान्य रूप से जाने गये नैतिक मूल्य राजनीति एवं युद्ध में परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसा यों तो हमेशा रहा है, लेकिन इस युग में यह परिवर्तन कहीं-कहीं मानवीय मूल्यों को भी लांघ जाता है। कहा भी गया है कि युद्ध और प्यार में सब कुछ करना या कहना उचित है।

राजनीतिशास्त्र एवं नीतिशास्त्र दोनों का सम्बन्ध कितना गहरा है, इसका उल्लेख करते हुए सिड्विक का कहना है···'अभी भी नीतिशास्त्र और राजनीति का कोई स्पष्ट भेद नहीं हो पाया है, क्योंकि राजनीति, राज्य के सदस्य होने के नाते व्यक्ति की भलाई या कल्याण से ही सम्बन्धित है। वस्तुतः कुछ आधुनिक लेखक

---

१. नयी कविता, अंक १ : अज्ञेय, पृ० २४
२. नयी कविता, अंक २ : अनन्त कुमार पाषाण, पृ० ६३

'नीति' शब्द का प्रयोग ही इतनी उदारता से करते हैं कि उसमे कम से कम राजनीति का एक हिस्सा भी समाविष्ट रहता है।"[1]

नयी कविता के नैतिक मूल्य इस प्रकार से राजनीति से तो प्रभावित हैं ही, साथ ही युद्ध की नैतिकता पर नयी कविता आक्रोश एव क्षोभ भी अभिव्यक्त करती है। हरिमोहन की कविता 'नये साल पर' इसका एक श्रेष्ठ उदाहरण है कुछ पक्तिया द्रष्टव्य हैं—

तुम्हारे लाडलो ने यह नहीं देखा था कि
पेट में बच्चा कैसे होता है,
अत पानी के लिए कराहती उस गर्भिणी
के पेट मे
सगीन डाल दी
भल्ल भल्ल खून फेंकता
एक मांस का लोथडा
सडक की नाली मे लुढक गया।

•

विजय के लिए प्रयाण करने वाले
इन सेनानियों को
इस नये साल पर बधाई दो, विदाई दो।[2]

युद्ध के नैतिक मूल्यो की अभिव्यक्ति सर्वेश्वर की कविताओ मे पर्याप्त रूप से मिलती है।

नैतिक-मूल्य सौन्दर्य और नयी कविता

बदलते हुए नैतिक मूल्यो के साथ सौन्दर्य का प्रश्न भी जुडा हुआ है। नैतिक मूल्यो मे बदलाव व्यक्ति एव समाज के कल्याण के लिए आता है तो क्या नयी कविता की नैतिकता अर्थात् शिव पक्ष सौन्दर्य से भी सम्पृक्त है या नहीं ? कहना न होगा कि नयी कविता नैतिकता के साथ साथ सौन्दर्य को भी स्वीकार करती है। नया कवि

---

1 "Ethics is not yet clearly distinguished from politics for politics is also concerned with the good or welfare of men, so far as they are members of states And in fact the term *Ethics* is sometimes used, even by modern writers, in a wide sense so as to include at least a part of politics"
— Outlines of the History of Ethics, by Henry sidgwick, p 2, *Edition* 1949

२. नयी कविता, अक १ हरिमोहन पृ० ७२ ७४

नैतिकता का आग्रह नहीं करता। वह कविता के सौन्दर्य का निर्वाह करते हुए ही नैतिक मूल्यों की हामी देना चाहता है। उसकी दृष्टि में कविता नीतिशास्त्र नहीं है, वह तो केवल बदलते हुए मूल्यों को अभिव्यक्ति देती है। यदि नैतिक मूल्य समाज के लिए घातक हो उठते हैं तो वह उन पर व्यंग करता है, आक्रोश और क्रोध व्यक्त करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वह नैतिकता के लिए सौन्दर्य को त्याज्य नहीं मानता और न ही सौन्दर्य के लिए नैतिकता की सीमाओं को ही लांघना चाहता है। वह तो दोनों का निर्वाह साथ ही साथ करना चाहता है। सुन्दर बिम्बों की अभि-व्यंजना करते हुए भी अनैतिक नहीं हो उठता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

आई गई ऋतुएँ पर वर्षों से ऐसी दोपहर नहीं आई
जो क्वांरेपन के कच्चे छल्ले सी
इस मन की अंगुली पर
कस जाय और फिर कसी ही रहे
नित प्रति बसी ही रहे—आंखों में, बातों में, गीतों में—
आलिंगन के घायल फूलों की माला सा
वक्षों के बीच कसमसी ही रहे......।[1]

दोपहर का बिम्ब सुन्दर है। कवि ने कहीं भी अश्लीलता या अनैतिकता लाने का प्रयास नहीं किया है। वस्तुतः कविता से इनका सम्बन्ध दूर का भी नहीं है।

इसी प्रकार से एक और चित्र प्रस्तुत है—

'शीशों की सुविशाल झांइयों के रमणीय
दृश्यों में
बसी थी चांदनी
खूबसूरत अमरीकी मैगजीन-पृष्ठों सी
खुली थी
नंगी सी नारियों के
उघरे हुए अंगों के
विभिन्न पोजों में
लेटी थी चांदनी
सफेद
अण्डरवीयर सी, आधुनिक प्रतीकों में
फैली थी
चांदनी।'[2]

---

१. नयी कविता, अंक १ : धर्मवीर भारती, पृ० ३४
२. चांद का मुंह टेढ़ा है : गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ० ३५

बालकृष्ण राव के शब्दो मे—'आज का साहित्य नैतिक मूल्यान्वेषण का साहित्य है।'[1] नयी कविता के सर्वेक्षण से यह बात सच लगती है, पर यह नैतिक मूल्यान्वेषण कही-कहीं इतना सूक्ष्म हो उठता है कि उसकी पहचान करना कठिन हो जाता है। समकालीन सूक्ष्म नैतिक मानो की चर्चा करते हुए नया कवि कहता है—

ज्यामितिक सगति गणित
की दृष्टि के कृत
भव्य नैतिक मान
आत्मचेतन सूक्ष्म नैतिक मान
अतिरेकवादी पूर्णता की तुष्टि करना
कब रहा आसान
मानवी अन्तर्कथाएं बहुत प्यारी हैं।[2]

आर्थिक मूल्य

बीसवी शती की बडी विशेषता यह है कि इस युग के व्यक्ति के जीवन मे अर्थप्रधान हो गया है। न केवल सामाजिक बल्कि दार्शनिक एव सास्कृतिक, राजनीतिक तथा नैतिक मूल्य भी अर्थ-सस्कृति से प्रभावित हुए हैं और हो रहे हैं। मध्यकाल मे सन्तोष को परमधन स्वीकार किया जाता था, लेकिन आधुनिक युग मे अर्थोपलब्धि एव सुख सुविधाओ को प्राप्त करने की सभी सीमाए मिट गई हैं। आर्थिक-मूल्यो का प्रश्न पूरी मानव सस्कृति का प्रश्न हो गया है। एक ओर अमरीका, ब्रिटेन और फास जैसे पूंजीपति राष्ट्र तथा दूसरी ओर रूस, चीन, युगोस्लाविया और चेकोस्लोवाकिया जैसे समाजवादी राष्ट्र तथा तीसरी ओर भारत, बर्मा, पाकिस्तान जैसे मिश्रित अर्थव्यवस्था वाले राष्ट्र उभर कर सामने आए। द्वितीय महायुद्ध के बाद रोटी के प्रश्न ने न केवल राजनीतिज्ञों को, बल्कि विचारको और कवियो के दृष्टिकोण को भी बदला है। एक युग था, जब साहित्यकार या कवि काव्य का प्रयोजन सुख या मोक्ष की प्राप्ति अधिक मानता था अर्थ की प्राप्ति कम। हिन्दी साहित्य के आदिकाल या रीतिकाल मे अर्थ महत्वपूर्ण था, लेकिन भक्तिकाल मे काव्य की प्रेरणा अर्थ प्राप्ति बिलकुल नहीं लगती।

आधुनिक युग का रचनाकार रोटी, कपडा और मकान अर्थात् जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओ के लिए इतना पीडित रहा है कि उसकी रचना के स्वर निम्न रूप मे फूट पडते है—

एक हाथ से तोड रहा हू रोटी

---

१ कल्पना, फरवरी '५७ बालकृष्ण राव, पृ० ७

२ चाद का मुह टेढा है गजानन माधव मुक्तिबोध, पृ० १३

गीत दूसरे से लिखता जाता हूं
गीत फाड़ फेंके
रोटी रह गई हाथ में ।[१]

'रोटी' शब्द जीवनावश्यकताओं का प्रतिनिधित्व करता है जबकि 'गीत' शब्द पूरे साहित्य का। जब साहित्य गौण हो जाता है और अर्थ प्रधान, तो क्या साहित्य का प्रयोजन सिद्ध हो जाता है ? तथा नयी कविता आर्थिक मूल्यों से कहां तक प्रभावित या प्रेरित है ? यह प्रश्न विचारणीय है।

किसी मूल्य को आर्थिक मूल्य कहना या प्रमाणित करना तब तक सम्भव नहीं, जब तक कि आधुनिक युग में उदय होने वाली अर्थ-व्यवस्थाओं को समझ न लिया जाय। फ्रांस की क्रांति और रूस की क्रांति ने सामन्तीय व्यवस्था का सफाया किया और उसके बाद इन क्रान्तियों के पीछे कार्य करने वाले मार्क्सवादी दर्शन को समझना आवश्यक है तथा उसके साथ यह भी जान लेना जरूरी है कि उसका प्रभाव भारत पर किस सीमा तक हुआ।

मार्क्सवाद

मार्क्सवादी दर्शन का केन्द्र-बिन्दु पदार्थ है। हीगेल ने प्रत्यय के इतिहास में ही संघर्ष का इतिहास देखा, जबकि मार्क्स ने पदार्थ को जीवन का अन्तिम सत्य स्वीकार किया है। प्रत्यय को गौण स्वीकार करते हुए मार्क्स ने उसका पदार्थ में संघर्ष माना है। हीगेल का द्वन्द्व-सिद्धान्त तथा फायरबाख से भौतिकवाद लेकर मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद दर्शन का प्रतिपादन किया द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार विश्व में परस्पर दो विरोधी शक्तियां कार्य कर रही हैं। एक ओर शोषित या सर्वहारा वर्ग है तथा दूसरी ओर शोषक या पूंजीपति एक ओर शासक हैं, दूसरी ओर शोषित। बहुसंख्या शोषित और शासित की है। इन दो परस्पर-विरोधी शक्तियों में संघर्ष चलता रहता है और अन्ततः विजय सर्वहारा या शासित वर्ग की होती है। इसी दर्शन को साहित्य के साथ जोड़ते हुए कहा गया है—

'यही वर्ग-संघर्ष आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक परिस्थितियों का आधार, कारण और नियामक तथा अन्ततः संस्कृति का भी आधार है। इसलिए साहित्य का मूलाधार भी वर्ग-संघर्ष ही है, क्योंकि साहित्य समाज की सामूहिक चेतना है, साहित्यकार की वैयक्तिक चेतना नहीं।'[२]

मार्क्सवाद इस बात की स्पष्ट व्याख्या करता है कि श्रमिक अपनी आय के

१. अरी ओ करुणा प्रभामय : अज्ञेय, पृ० १२५
२. मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड) : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० १६६

अतिरिक्त 'सरप्लस वैल्यू (Surplus Value) का भी उत्पादन करता है।'[1] पूंजीवादी व्यवस्था में यही श्रमिक का शोषण है।

साम्यवाद (Communism)

'साम्यवाद समाज में शोषक और शोषित, बुर्जुआ और सर्वहारा, पूंजीपति और श्रमिक, इन पर संघर्षरत दो वर्गों की सत्ता मानता है। साम्यवाद की स्थापना शोषित वर्ग के हाथों शोषक वर्ग के ध्वंस पर होगी। अतः क्रांति की गति तीव्र करने के लिए हर सम्भव उपाय से शोषित वर्ग के हाथ मजबूत करने चाहियें।'[2] साम्यवादियों की यह धारणा है कि जो शक्तियाँ इस क्रांति में सहयोग देती हैं, वे प्रगतिशील तथा अन्य शक्तियाँ प्रतिक्रियावादी हैं। साहित्य को भी साम्यवादी आलोचक इसी मानदण्ड पर परखते हैं।

वस्तुतः मार्क्सवाद और साम्यवाद में वैचारिक अंतर कुछ भी नहीं है। मार्क्स एवं एंजिल्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों को लेनिन ने रूस में क्रियान्वित किया। मार्क्सवाद रक्तहीन क्रांति का पोषक है, जबकि साम्यवाद रक्तक्रांति का भी हामी है। रूस और चीन की क्रांतियाँ इसका उदाहरण हैं। चीन ने साम्यवाद को अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद से काटकर उसे राष्ट्रीय रूप दे दिया।

भारत में मार्क्सवादी विचारधारा के साथ-साथ साम्यवादी विचारधारा को भी बल मिला है। हिन्दी का प्रगतिवादी साहित्य इन विचारधाराओं का ही प्रतिनिधित्व करता है। लेकिन सम्पूर्ण राष्ट्र इसे कभी भी स्वीकार नहीं कर पाया है।

पूंजीवाद

यूरोप में औद्योगिक क्रांति के साथ ही पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था का उदय होता है। पूंजीवाद की व्याख्या करते हुए हिन्दी साहित्य कोश में कहा गया है कि—'पूंजीवाद वैयक्तिक सम्पत्ति और पूंजी का हिमायती है। यह मशीनों, खानों, वाणिज्यों, व्यवसायों, उद्योगों आदि पर व्यक्ति अथवा सदस्यों के निजी हितों के सम्पादनार्थ संयोजित संस्थाओं अथवा कम्पनियों के सर्वाधिकार तथा राज्य के पूर्ण

---

1 "The worker in the service of the capitalist not only reproduces the value of his labour power, for which he receives pay, but over and above that he also produces a surplus value."
— Selection for Basic Reading in Marxism Leninism-prepared by the polit Bureau, Communist praty of India (Marxist), page 15

२ हिन्दी साहित्य कोश, भाग १ सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ६१८

अहस्तक्षेप (Lassey faire) की नीति का प्रतिपादन करता आया है।[1] पूंजीवादी व्यवस्था दो बड़े वर्गों को जन्म देती है—श्रमिक वर्ग, और पूंजीपति वर्ग। इन दो वर्गों के साथ-साथ एक तीसरा वर्ग मध्यम वर्ग भी जन्म लेता है। मार्क्सवाद, और समाजवाद इस व्यवस्था के विरोधी हैं। भारतवर्ष में औद्योगिक क्रान्ति और विशेषतः स्वतन्त्रता के बाद पूंजीवाद को बढावा मिला।

समाजवाद और भारतीय मिश्रित अर्थव्यवस्था

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में जितना अधिक 'समाजवाद' शब्द उछाला गया है, उतना सम्भवतः और कोई नहीं। मूल रूप में इस शब्द का प्रथम बार प्रयोग १८२७ में 'ओ नाइट कोआपरेटिव मैगजीन' में किया गया था। लेकिन इस शब्द के साथ जो दृष्टिकोण जुड़ा हुआ है, उसका इतिहास अधिक पुराना प्रतीत होता है। राज्य समाजवाद की व्याख्या करते हुए हिन्दी-साहित्य कोश कहता है—'राज्य समाजवाद ब्रिटिश व्यक्तिवाद और मार्क्सवाद के बीच समझौता करने का प्रयास करता है। यह मार्क्सवाद की भांति उत्पादन के साधनों पर सामूहिक नियन्त्रण चाहता है किन्तु ब्रिटिश व्यक्तिवाद से संबंधित होने के नाते यह संसदीय शासन-प्रणाली और राज्य की उपयोगिता को भी स्वीकार करता है। अतः इसका लक्ष्य कम्यूनिस्टों की भांति क्रांति नहीं है, वरन् विधानवादी तरीकों से चुनाव लड़कर पार्लियामेन्ट में समाजवादी बहुमत बनाकर समाजवाद की रचना करना है। मूल रूप से इसकी प्रकृति उदारवादी है।'[2]

भारत के राजनीतिक नेताओं ने समाजवाद की अपने ढंग से व्याख्या की। लेकिन मूल रूप से सिद्धान्ततः सभी समाजवादी दल इस बात से सहमत रहे कि आर्थिक शोषण को समाप्त करना और जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं को जुटाना समाजवादी व्यवस्था का परम लक्ष्य है।

लेकिन हुआ क्या? समाजवादी सिद्धान्तों को स्वीकार करते हुए भी व्यावहारिक स्तर पर समाजवादी मूल्यों की स्थापना का कोई प्रयास नहीं हुआ। पनपती हुई पूंजीवादी व्यवस्था अधिक दृढ़ होती गई तथा आर्थिक शोषण भी कम नहीं हो पाया। सरकार की ढुलमुल नीतियों के कारण भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था ने जन्म लिया, अर्थात् सैनिक साजसामान जैसी वस्तुओं का उत्पादन राज्य ने स्वयं किया, तथा शेष वस्तुओं का उत्पादन अधिकांशतः निजी कारखानों में ही होता रहा जिसका परिणाम यह हुआ कि बाजार में पूंजीपति वर्ग की साख जमती गई तथा कहीं-कहीं उनका एकाधिकार भी हो गया।

---

१. हिन्दी साहित्यकोश, भाग १ : सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० ५००-५०१
२. वही, पृ० ८८४

समाजवाद के सैद्धान्तिक स्वरूप से हिन्दी साहित्य प्रभावित रहा है। निराला की कविताए 'तोडती पत्थर', 'भिखारी', भगवती प्रसाद की 'भैंसागाडी', नागार्जुन की व्यग कविताए तथा आचलिक उपन्यास, अमृतराय की कहानिया तथा यशपाल के उपन्यास इसके पर्याप्त प्रमाण हैं।

साम्यवादी दलो की स्थापना तथा सरकारी प्रयासो के बावजद भी भारत मे समाजवाद की स्थापना न हो पायी, तथा न ही पूर्ण रूप से पूजीवाद पनप पाया। भारतीय अर्थ व्यवस्था का तीसरा रूप उदित हुआ और वह था उसका मिश्रित रूप। भारत न तो अमरीका की भाति पूजीवादी, न रूस की भाति समाजवादी तथा न ही चीन की भाति साम्यवादी, बन पाया। भारतीय मिश्रित अर्थ व्यवस्था मे ही नयी कविता पनपी, पली और विकसित हुई।

आर्थिक मूल्यो तथा मानवीय मूल्यों की टकराहट

भारत मे जिन सामाजवादी मूल्यो की स्थापना का प्रयास प्रारम्भ किया गया, वह न हो सका और समाजवाद धीरे-धीरे बीमार पडता गया। चीनी आक्रमण के बाद कीमतें एकदम तेजी से बढने लगी। कीमतो को कम करने के वक्तव्य प्रतिदिन प्रकाशित होते, लेकिन कीमतो म कभी कमी भी नही आयी। नया कवि व्यग करता हुआ कहता है—

बीमार समाजवाद को
नीरोग बनाने के लिए
तानाबाना इस तरह
गया है बुना
हो गए दवाइयो के
दाम तीन गुना।[1]

जिस मार्क्सवाद ने फास और रूस म क्रातिया ला दी, उसी दर्शन की भारत मे क्या स्थिति थी, उसका आकलन करते हुए कवि कहता है—

'पर कुछ सपनो की रगीनी ने छुआ ही था कि मार्क्सवाद का दर्शन मिला। तब समझ मे आया कि व्यक्ति मात्र कुछ सार्थकता नही पा सकता, जब तक कि समाज को ही न पलट दिया जाय। लेकिन मार्क्सवादियो ने भारत की समस्याओ का हल ढूढने मे जो नकलबाजी और उतावली दिखाई थी—हर समस्या को वे जिस तरह से आननफानन मे पानी-पानी कर देते थे, उससे कभी कभी चिढ भी छूटती थी और हसी भी आती थी। जीवन चाहे व्यक्ति पर समाप्त न हो, शुरू वहो से

१ धर्मयुग, ३० अगस्त, '७० विनोद गोदरे, पृ० ५०

होता है। और मैंने देखा कि उनके लिये व्यक्ति एक अंक मात्र है, एक लम्बी-चौड़ी संख्या मे, या निरा एकपुर्जा है, एक महायन्त्र मे—तो मन खट्टा हो गया। यह ध्यान देने की बात है कि मै मार्क्सवादियो-प्रगतिवादियो के दल मे राजनीति के दरवाजे से नही, समाजदर्शन के दरवाजे से पहुंचा था। पर उन्होने राजनीति के भम्भड़ मे इधर कोई ध्यान नही दिया। शायद आज भी देश मे कोई सम्यक् दर्शन विकसित नहीं हो सका है।"[1]

क्योंकि नये कवि के सम्मुख जीवन की शुरुआत व्यक्ति से होती है, इसलिए वह अर्थतन्त्र के सम्मुख व्यक्ति का नकार नही सकता। यही से मानवीय मूल्यो और आर्थिक मूल्यो की टकराहट शुरू होती है। नया कवि—'मार्क्सवाद को मानव-कल्याण की अन्यतम परिकल्पना नही मानता, क्योकि वह जानता है कि उसे मान कर चलने वाले राष्ट्रों को क्या-क्या अनुभव हुए है। वह पूंजीवाद का भी हामी नही है, क्योकि उसकी अभद्रता का नग्न रूप वह भली-भांति देख चुका है। वह वैयक्तिक स्वातन्त्र्य को आवश्यक समझता है, पर सामाजिक चेतना को उससे कम आवश्यक नही समझता है।"[2]

इस तथ्य से नकारा नही जा सकता, कि भारतीय समाज मे धीरे-धीरे अर्थ प्रधान हो गया और इस अर्थ-प्रधान व्यवस्था मे मध्यमवर्ग या निम्न वर्ग से आये हुए कवियों का आहत होना स्वाभाविक था। कविता आर्थिक लाभ का साधन न होकर एक विवशता—एक आन्तरिक मजबूरी हो गया। नये कवि के पास सिवाय आवाज उठाने के और कोई चारा न था और अपने स्वरो को वह कविता के माध्यम से ही अभिव्यक्त कर सकता था। अर्थतन्त्र के प्रति रोष के स्वर सभी समकालीन विधाओं मे उभरे है। आर्थिक विषमताओं से व्यक्ति के स्वाभिमान को कहां तक चोट लगी, इसका उदाहरण है। सुरेन्द्र तिवारी की कविता 'आधी से ज्यादा' जिसकी निम्न पंक्तियां व्यक्ति की नियति का उद्घाटन करती है—

> आत्मा थी मेरे भी पास
> नये चन्दन सी
> घिसते घिसते अब
> आधी से ज्यादा मर गयी
> दोनो वक्त रोटी का इन्तजाम करने में
> आधी से ज्यादा ही
> जिन्दगी गुजर गई।[3]

समाजवाद की दुर्गति जो भारत मे हुई, उसको नया कवि अपनी भूल स्वीकार

---

१. एक उठा हुआ हाथ : भारतभूषण अग्रवाल, पृ० ७
२. कल्पना, फरवरी '५७ : बालकृष्ण राव, पृ० ७
३. जूझते हुए : सुरेन्द्र तिवारी, पृ० ६१

करता है, इसलिए वह कहता है कि जो समय उसे उत्पादन बढ़ाने के उपाय सोचने में लगाना चाहिए था, वह समय उसने समाजवाद की चर्चा में ही गवा दिया—

मुझे
खेतों में पैदावार बढ़ाने के बारे में सोचना था
मैं
समाजवाद की तरकारी बनाने में लग गया
और यहीं मुझसे गलती हो गई।[1]

मुक्तिबोध की 'मुझे याद आते हैं', 'चांद का मुंह टेढ़ा है', 'अंधेरे में', 'मैं तुम लोगों से दूर हूं', 'मेरे लोग', तथा 'चकमक की चिनगारियाँ' आदि अनेक ऐसी कविताएं हैं जो आर्थिक मूल्यों और मानवीय मूल्यों की टकराहट को अभिव्यक्त करती हैं। मुक्तिबोध के अतिरिक्त दिनकर सोनवलकर, नागार्जुन, सर्वेश्वर तथा रघुवीर सहाय आदि कवियों की अनेक ऐसी कविताएं हैं जो आर्थिक मूल्यों की श्रेष्ठता को अस्वीकार करके मानवीय मूल्यों की श्रेष्ठता को स्वीकार करती हैं। नया कवि यह जानता है कि आर्थिक मूल्य ही जहाँ एकमात्र या श्रेष्ठ मूल्य हो, वहाँ कविता का मूल्यहीन हो जाना स्वाभाविक है।[2] नयी कविता मूल्यहीन इसलिए नहीं हुई है, क्योंकि नयी कविता का केन्द्र अर्थ नहीं रहा।

नयी कविता ने प्रगतिशीलता एवं समाजवाद को स्वीकार किया, लेकिन एक ओर उसने भारत में चल रहे समाजवाद का मजाक उड़ाया तो दूसरी ओर पूंजीवाद की ओर संकेत करते हुए कहा—

मैं परिणत हूं
कविता में कहने की आदत नहीं, पर कह दूं
वर्तमान समाज में चल नहीं सकता
पूंजी से जुड़ा हुआ हृदय बदल नहीं सकता।[3]

अर्थप्रधान हो जाने की स्थिति में साहित्य का प्रयोजन सिद्ध नहीं हो पाता। लेकिन आर्थिक शोषण से मुक्ति के लिए स्वर उठाना कविता के लिए आवश्यक हो गया नयी कविता ने 'दलिद्दर के भयानक देवता के भव्य चेहरे'[4] देखे थे, इसलिए उन भव्य चेहरों से दलिद्दर का भाव हटाने का प्रयास नयी कविता का एक धर्म हो गया। यह एक मानवीय अनिवार्यता थी, जिसे नयी कविता ने सम्हाला और वृहद् धरातल और व्यापक आयामों में सम्पूर्ण मानव जाति के सम्मुख नये कवि ने यह प्रश्न रखा—

१ जूझते हुए सुरेन्द्र तिवारी, पृ० ३२
२ आलोचना नवम्बर '६६ कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ० १०
३ चांद का मुंह टेढ़ा है ग० म० मुक्तिबोध, पृ० ३१०
४ वही, पृ० ६३

समस्या एक
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी, सुन्दर व शोषणमुक्त
कब होंगे ?[1]

यह प्रश्न कवि ने यह कहने के बाद ही रखा कि—

शोषण की सभ्यता के नियमों के अनुसार
बनी हुई संस्कृति के तिलस्मी
सियाह चक्रव्यूहों में
फंसे हुए प्राण सब मुझे याद आते हैं।[2]

अर्थतन्त्र में अर्थ के अभाव के कारण तथा अर्थतन्त्र के विभिन्न रूपों की गुत्थमगुत्था मे नया कवि पिसा, भारत का सामान्य नागरिक पिसा। उन आन्तरिक एवं बाह्य विरोधों के संघर्ष से ही नयी कविता में ऊर्ध्वगामी लोकहितवादी चेतना का जन्म होता है, जिसका आधार आर्थिक मूल्य न होकर मानवीय मूल्य है तथा इस चेतना के अग्रणी कवि मुक्तिबोध हैं। घर का कामकाज करनेवाली गर्भवती नारी तथा लकड़ी बीनने वाली मां आदि भारतीय प्रतिमाओं का अंकन करते हुए उन्होंने लोकहितवादी चेतना की ओर ही संकेत किया है।

विट्ठल भाई पटेल अपनी कविता 'दो अहम जरूरतें' में बड़ा सूक्ष्म व्यंग करते हैं

हमारे देश की दो अहम जरूरतें हो गई हैं
पूंजीवाद और अन्धेरा।[3]

क्योंकि अगर पूंजीवाद न रहा तो फिर समाजवाद के स्वप्न कौन बुनेगा, अन्धेरा न रहा तो उजाले का मूल्यांकन कौन करेगा। 'चांद का मुंह टेढ़ा' इसलिए है कि 'धराशायी चांदनी के होंठ काले पड़ गये हैं।'[4] लेकिन सभी विषमताओं एवं विद्रूपताओं के होते हुए भी नया कवि भूख से, बेकारी से, समाजवादी ढोंग से, और फैलते हुए पूंजीवाद से निरन्तर संघर्ष करता है। वह अर्थतन्त्र का एक पुर्जा नहीं बन पाता, बल्कि शोषण-युक्त अर्थतन्त्र को बदलना चाहता है। वह आर्थिक मूल्यों को मानवीय मूल्यों में ही समाहित कर लेना चाहता है। इसलिए अनास्था और विश्वासहीनता के कुहासे में भी नयी कविता आस्था और आत्मविश्वास की ओर प्रेरित करती हुई कहती है—

---

१. चांद का मुंह टेढ़ा है : ग० म० मुक्तिबोध, पृ० १६४
२. वही, पृ० ७८
३. दीवारों के खिलाफ : विट्ठलभाई पटेल, पृ० ८२
४. चांद का मुंह टेढ़ा है : ग० म० मुक्तिबोध, पृ० २७

भूख, भूख, भूख
भूख, भूख, भूख'
मेरे ही दरवाजे
आंखों के सामने
सदियों का लगा हुआ
सूखा एक रूख
और, अब
मैंने भी जीने की सोच ली ।'[1]

राजनीतिक मूल्य

इरविंग ने अपनी पुस्तक *'पालिटिक्स एण्ड द नावल'* में स्टेन्डल का उद्धरण देते हुए कहा है—'साहित्यिक कृतित्व में राजनीति संगीत सभा में दागी गई पिस्तौल की आवाज के समान है, काफी जोरदार और बेहूदी, किन्तु फिर भी उसकी ओर ध्यान न जाए, ऐसा नहीं हो सकता ।'[2] नयी कविता में भी राजनीति दागी हुई पिस्तौल की आवाज के समान ही उभर कर आयी और आज तक उसके स्वरों को अभिव्यक्ति मिल रही है ।

आधुनिक काल के पूर्वार्द्ध तक राजनीति एवं साहित्य सर्वथा अलग क्षेत्र स्वीकार किये जाते थे। राष्ट्रीय आंदोलन के दिनों में कविता राजनीति से सम्पृक्त हो गयी । राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य धारा का प्रमुख स्वर राष्ट्रीयता ही है, लेकिन तत्कालीन कविता राजनीति से प्रेरित अवश्य थी। छायावादी कविता राजनीति से पुनः अलग हो गयी और प्रगतिवादी कविता राजनीतिक होने के साथ-साथ मानवीय भी थी। स्वतंत्रता के बाद कवि राजनीति के क्षेत्र में भी अधिक सक्रिय हो उठा, इसलिए राजनीति के बदलते हुए मूल्यों एवं प्रतिमानों को कविता में अभिव्यक्ति मिलनी स्वभाविक ही थी। नये कवियों के एक बहुत बड़े वर्ग ने स्वतन्त्रता आन्दोलन को देखा और भोगा था तथा उन मरण एवं ब्रिटिश सत्ता के अमानवीय अत्याचारों तथा राजनीतिक दमन-चक्रों को वे भूल नहीं पाए । समय की आवश्यकता के साथ-साथ राजनीतिक मूल्य बदले, नये कवि ने उन्हें पहचाना, स्वीकारा और कविता में ढाला ।

राजनीतिक मूल्यों के बदलाव को सही संदर्भों में देखने के लिए स्वतन्त्रता पूर्व की राजनीति का जायजा लेना आवश्यक है । स्वतंत्रता-पूर्व एक ओर तो सैद्धान्तिक रूप से राजनीतिक मूल्यों की चर्चा होती रही और दूसरी ओर व्याव

---

१ कविताएँ, १९६६ रमेश गौड़, पृ० १००
२ द्रष्टव्य—कल्पना, मार्च-अप्रैल '६७ में लक्ष्मीकान्त वर्मा का लेख—हिन्दी साहित्य के पिछले बीस वर्ष ।

हारिक रूप से भी राजनीतिक मूल्यों को क्रियान्वित किया गया। आजादी की लड़ाई का एक लम्बा इतिहास है और उसी इतिहास पर राजनीतिक मूल्यों का ढांचा खड़ा हुआ है।

लोकमान्य तिलक आजादी की लड़ाई को कर्म के साथ-साथ बौद्धिकता के स्तर पर भी ढालना चाहते थे, जबकि गांधीजी ने उसे कर्म के स्तर तक सीमित कर दिया। इससे स्वतंत्रता का कोई भी स्पष्ट रूप उनके सामने उभर न पाया। अग्रज पीढ़ी ने आजादी का अर्थ केवल अंग्रेजों की जगह हिन्दुस्तानी समझा। इसका परिणाम लक्ष्मीकान्त वर्मा के शब्दों में यह हुआ कि—'तिलक के बाद गांधी के नेतृत्व में हमने भावुकता, उत्सर्ग, दृढ़-योग और आत्मा-परमात्मा के पक्ष को राजनीतिक और सांस्कृतिक समस्याओं के साथ ऐसा मिला दिया कि पूरी की पूरी पीढ़ी की दृष्टि स्वतंत्रता को रूप देने के बजाय उसकी उपासना में लग गयी···जैसे स्वतंत्रता कोई मूल्य नहीं, देवी-देवता है।'[1]

स्वतन्त्रता-पूर्व की भारतीय राजनीति में दो प्रमुख विचारधाराएं कार्य कर रही थीं। पहली विचारधारा गांधीजी की गतिशील राष्ट्रीयता की थी। उनका कर्म विद्रोह के लिए प्रेरित करता था। दूसरी विचारधारा नेहरू की काल्पनिक अन्तर्राष्ट्रीयता की थी, जिसका आधार मात्र शब्दाडम्बर था। नेहरू जी के इसी शब्दजाल एवं अन्तर्राष्ट्रीयता के मोह के कारण कालान्तर में देश में संशय, दुविधा और निष्क्रियता बढ़ी।

स्वातन्त्र्योत्तर राजनीति राष्ट्र की राजनीति न होकर व्यक्ति की राजनीति हो गई। नेहरू के अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व के सामने अन्य नेता धीरे-धीरे बौने पड़ते गये। इच्छा एवं आवश्यकता होते हुए भी उनकी नीतियों का विरोध करने का साहस सिवाय डा० राममनोहर लोहिया के और किसी में न था। नेहरू सरकार के अट्ठारह वर्षों में युवा पीढ़ी ने आत्मनिर्णय एवं आत्मसंकल्पों के क्षणों में छोटे व घटिया किस्म के समझौते किये। सम्पूर्ण राष्ट्रीय चेतना पर इतने आघात होते रहे कि आत्मनिर्णय या आत्मसंकल्प की क्षमता धीरे-धीरे ठण्डी उदासीनता में परिवर्तित हो गयी और रणयुद्ध का स्थान शीतयुद्ध ने लिया। चीन को तिब्बत सौंप कर, काश्मीर के एक बड़े भाग के चले जाने पर भी चुप्पी और संयुक्त राष्ट्र संघ तथा बड़े देशों की मुंहजोही ने भारतीय राजनीतिक मूल्यों में आमूल परिवर्तन उपस्थित कर दिया। मानवीय मूल्य होते हुए भी स्वतन्त्रता को देवी तो पहले ही बना दिया गया था, अब शान्ति को कच्ची नींव पर खड़ा करने का प्रयास किया गया, जिसे सन् '६२ में चीन के एक हल्के से धक्के ने चरमरा दिया। अन्तर्राष्ट्रीयता के नाम पर राष्ट्रीय हितों को हानि की नीति ने अन्ततः नेहरू सरकार की ख्याति को धक्का पहुंचाया। इस ढुलमुल राजनीति ने एक ओर तो सामाजिक व्यवस्था में अस्थिरता ला दी तथा

---

१. कल्पना, मार्च-अप्रैल '६७ : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ २५

दूसरी ओर आर्थिक व्यवस्था को विदेशी ऋणों में इतना बोझिल कर दिया कि ऋण के अभाव में आर्थिक व्यवस्था ठप्प ही पड़ जाने के खतरे बढ़ गये तथा तीसरी ओर सांस्कृतिक रूप से भारतीय स्वयं को अजनबी अनुभव करने लगा। धीरे-धीरे राजनीति इतनी प्रधान हो गई कि साधारण व्यक्ति ने राजनीति के घेरों में स्वयं को पिसता हुआ महसूस किया। प्रतिदिन नयी खबरें, राजनीतिक निर्णयों की अस्थिरता, नित नये वक्तव्यों के कारण भारतीय को यह अनुभव होने लगा कि उसकी चेतना कहीं दबी जा रही है। इसीलिए नया कवि कह उठा—

सुबह के अखबार की वह नयी खबरें
अब पुरानी हो गई हैं
सुर्खियों के रंग मद्धिम पड़ गए हैं
गुलमरी सिगरेट के अन्तिम धुए से
उड़ गयीं वे पताका सी सूचनाएं

नित नये वक्तव्य के जो लगा चेहरे
ओढ़ कर रंगीन वादों के लबादे
अक्स जिनके
शीश महलों से उतरते नित्य
ठण्डे पाइपों की सीढ़ियों से
सब्ज-बागों को दिखा कर
हर जगह डेरा जमाते
चेतनाओं को दबाने।[1]

राष्ट्र के कर्णधारों ने 'समय आ गया है' की नीति को अपनाया। समाचार-पत्र आकाशवाणी के केन्द्रों तथा मन्त्रालयों की बैठकों में सर्वत्र कहा गया कि समय आ गया है कि कठोर परिश्रम किया जाए समय आ गया है कि प्रत्येक भारतीय ईमानदारी से काम करे समय आ गया है कि सब ठीक हो जायगा, लेकिन वह समय कभी नहीं आया। 'समय आ गया है' की नीति पर रघुवीर सहाय की कविता 'आत्महत्या' के विरुद्ध व्यंग करती हुई कहती है—

समय आ गया है जब तब कहता है सम्पादकीय
हर बार दस बरस पहले मैं कह चुका होता हूं कि
समय आ गया है

एक गरीबी, ऊबी, पीली, रोशनी, बीबी,
रोशनी, धुंध, जाला, यमन, हरमुनियम अदृश्य

1 धूप के धान गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ५२

डब्बाबन्द शोर
गाती गला भींच आकाशवाणी
अन्त में टट्टंग ।[1]

राजनीति के अन्दर की राजनीति तथा राजनीति से एक औसत भारतीय को होने वाली हानि को देखते हुए रघुवीर सहाय की कविताएं व्यंग करती हैं । 'नेता क्षमा करें' नेताओं पर, 'नयी हंसी' भारत में समाजवाद के रूप पर तथा 'लोकतन्त्रीय मृत्यु' लोकतन्त्र पर गहरी चोट करती हुई चलती हैं ।

स्वतन्त्रता-पूर्व की राजनीति ने युवा-पीढ़ी के बीस वर्षों को यूं ही गंवा दिया । नये कवि को इसका एहसास हुआ तो वह दर्द से कराह उठा—

बीस वर्ष
खो गए भरने उपदेश में
एक पूरी पीढ़ी जनमी पली पुसी क्लेश में
बेगानी हो गयी अपने ही देश में
वह
अपने बचपन की
आजादी
छीन कर लाऊँगा ।[2]

स्वतंत्रता आन्दोलन-दीजिए स्वतंत्रता और राजनीतिक दलों का उदय

स्वतन्त्रता आन्दोलन की शुरुआत १८५७ से मानी जा सकती है । १८८५ में ए० ओ० ह्यूम द्वारा कांग्रेस की स्थापना से आन्दोलन मन्द हुआ, क्योंकि कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य ब्रिटिश सत्ता से भारत के लिए सुविधाओं की सिफारिश करना मात्र था । गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस के उद्देश्य बदल गये तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन को बल मिला । १९१९ में जलियांवाला बाग काण्ड तथा राजनीतिक दमनचक्रों के विरोध एवं प्रतिक्रिया में १९२९ में लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पारित हुआ । लेकिन न तो राजनीतिक स्तर पर और न ही मानवीय स्तर पर स्वतन्त्रता की कोई रूपरेखा स्पष्ट हो सकी । १९३१ के कराची अधिवेशन के मजदूर-किसान सम्बन्धी प्रस्तावों से भी स्वतन्त्रता का रूप स्पष्ट न हो सका ।

राष्ट्रीय-चेतना के दो स्तर उभर कर सामने आए । एक ओर तो सत्ता से अंग्रेजों को हटाने के लिए निरन्तर संघर्ष और दूसरा स्वतन्त्रता को साकार बनाने का प्रयास । कांग्रेस में ही आपसी तनाव, वैमनस्य एवं क्रांतिकारियों की उपेक्षा के

---

१. आत्महत्या के विरुद्ध : रघुवीर सहाय, पृ० १९
२. वहीं, पृ० १८

कारण नरम दल और गरम दल के नाम से दो दल बन गये। उसी समय की राज-नीति मे राष्ट्रीय स्तर पर समाजवाद का ज म भी हो रहा था।

द्वितीय महायुद्ध में जब तक रूस और जमनी की आपसी सन्धि बनी रही, तब तक तो विश्व के कम्यूनिस्टो को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए लडना उचित ज्ञात पडता था लेकिन जिस दिन रूस ने मित्र राष्ट्रो से स धि कर ली, उसी दिन से कम्यूनिस्ट पार्टी राष्ट्रीय नीति को ताक पर रखकर 'जन-युद्ध' के नाम पर अग्रेजो को समर्थन देने लगी। कम्यूनिस्टो की इस दोहरी चाल ने नये कवियों को दूर तक प्रभावित किया और राजनीति मे सक्रिय होने के लिए भी प्रेरित किया। काग्रेस एव कम्यूनिस्ट दोनो ही पार्टिया आजादी को कोई रूप देने से कतराती रही। उन्होंने आत्मनिणय एव आत्मसकल्पो के क्षणो को खो गवा दिया।

भारतीय राजनीतिक क्षेत्र मे ९ अगस्त १९४२ के 'भारत छोडो आन्दोलन' की घोषणा से एक बडा परिवतन आता है। लेकिन नेहरू जी की अग्रेजो के प्रति प्रेम मिश्रित घृणा के कारण भारत का पूरा राष्ट्रीय आन्दोलन यह नहीं जानता था कि इस आन्दोलन का रूप क्या होगा, नीति क्या होगी तथा अग्रेजो से लडाई का औचित्य क्या है। केवल कुछ नेता जैसे आचार्य नरेन्द्र देव, राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, यूसुफ मेहर अली, तथा जयप्रकाश नारायण आदि ऐसे थे, जो स्वतन्त्रता के रूप तथा अग्रेजो से लडाई के सम्बन्ध मे भी स्पष्ट थे। लेकिन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भारतीय राजनीति तब तक नेहरू के व्यक्तित्व से इतनी आक्रान्त हो चुकी थी कि उग्रवादी समाजवादी दल भी सुभाष बोस का साथ न दे सका।

इन सभी बदलती परिस्थितियो को देख रही थी—युवा पीढी अर्थात वे कवि, जिन्होने तभी या उसके बाद लिखना शुरू किया तथा जो पहले प्रयोगवादी हो कर नये कवियों के नाम से जाने जाने लगे तथा सन् '५० के बाद उभरने वाले युवा कवि। इन्ही के सबध में लिखते हुए लक्ष्मीकान्त वर्मा ने कहा है—'विचार और कम, आचरण और कथ्य, स्वप्न और सत्य के बीच अनावश्यक रूप से पीसी गई यह पीढी यथार्थ-द्रष्टा होने के बावजूद दुविधा की अकर्मण्यता मे पड कर आत्म निश्चय से वचित रह गई। वह एक प्रकार की अपराजेय विवशता मे पली, पनपी और बढी।'[1] यह इसी विवशता का परिणाम था कि नये कवि ने कहा—

कुछ लोग मूर्तिया बनाकर
फिर
बेचेंगे क्राति की (अथवा षड्यन्त्र की)
कुछ और लोग

---

१ कल्पना, मार्च-अप्रैल '६७ लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ३८

सारा समय
कसमें खायेंगे
लोकतन्त्र की।[1]

स्वतन्त्रता मिली। देश का विभाजन हुआ। राजनीतिक मूल्य फिर बदले। संविधान बना। नये राजनीतिक दलों के उदय से राजनीति जटिल होती गई। अधिकांश लेखक कवि वामपक्षी रहे तथा उन्हें प्रगतिशील कहलाने का मोह रहा, आज भी है। वामपक्षी होने पर भी वे भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों एवं मानववादी मूल्यों से सम्पृक्त रहे। जनसंघ, स्वतन्त्र पार्टी, संयुक्त सोशलिस्ट तथा प्रजासोशलिस्ट जैसी राष्ट्रीय पार्टियां अस्तित्व में आयीं तथा दूसरी ओर कांग्रेस के विघटन से बंगला-कांग्रेस, केरल-कांग्रेस तथा उत्कल-कांग्रेस और जन-कांग्रेस जैसे प्रादेशिक दल बने। बाद में आकर कांग्रेस नयी और पुरानी के विशेषणों में बट गई। नये-पुराने का संघर्ष राजनीति में व्यापक रूप से उभर कर आया।

इन सभी बदलती परिस्थितियों में व्यक्ति राजनीतिक न होकर राजनीति का तत्वदर्शी होता गया। इसी बात की अभिव्यक्ति नयी कृतियों में होने लगी। 'नदी के द्वीप' का भुवन, 'सूरज का सातवां घोड़ा' का माणिक मुल्ला तथा 'अन्धा-युग' का कृष्ण राजनीतिक न होकर राजनीति के तत्वदर्शी हैं। बदलते हुए राजनीतिक मूल्यों के अप्रत्यक्ष रूप से व्याख्याता है। वे उन समस्त मूल्यों और मर्यादाओं के प्रति जागरूक हैं, जिनके आधार पर किसी कालखण्ड की राजनीति का गठन होता है। वे राजनीतिक व्यवस्था को व्यापक मानवतावाद से सम्पृक्त करना चाहते हैं। इसीलिए 'अन्धा-युग' का रचनाकार स्वीकार करता है—'एक धरातल ऐसा भी है, जहां 'निजी' और 'व्यापक' का बाह्य अन्तर मिट जाता है। वे भिन्न नहीं रहते। 'कहियत भिन्न न भिन्न'।[2] नयी कविता राजनीतिक मूल्यों को संकीर्णता एवं संशय के साथ नहीं स्वीकारती, बल्कि उन्हें व्यापकता प्रदान करती है। स्वतन्त्रता के बाद की राजनीति दलगत अवश्य हुई है, लेकिन उस वैविध्य में भी प्रजातन्त्रात्मक एकता है तथा समाजवादी तत्वों से राजनीतिक मूल्यों का निर्माण होता है। जब कवि यह कहता है कि 'हर भूखा आदमी बिकाऊ नहीं होता', तो वह राजनीति को मानव-कल्याण के निमित्त स्वीकार करता है। राजनीति भूखे आदमी की विवशता का भरपूर लाभ उठाती है, लेकिन नयी कविता इस धारणा का विरोध करती है। सर्वेश्वर की 'पीस-पैगोडा' विपिन अग्रवाल की 'लड़ाई के बाद' तथा अज्ञेय की 'यह दीप अकेला' कविताएं मानव-विशिष्टता को स्वीकार करती हुई राजनीति को निमित्त ही स्वीकार कर पाती हैं।

---

१. माया-दर्पण : श्रीकान्त वर्मा, पृ० १०५
२. अन्धा-युग : धर्मवीर भारती, पृ० २

आम चुनाव-सत्ता-लोलुपता और राजनीति के आदर्शों से पलायन

स्वतन्त्रता मिलते ही गांधीजी ने कांग्रेस को भंग कर देने का सुझाव दिया, लेकिन नेहरू, पटेल आदि नेताओं की सत्ता-लोलुपता के कारण गांधीजी का प्रयास असफल हुआ। पहले आम चुनाव में कांग्रेस भारी बहुमत से विजयी हुई तथा केन्द्र एवं समस्त राज्यों में कांग्रेस सरकारों की स्थापना हुई। कहा जा चुका है कि नेहरू जी की राजनीति पाखण्ड-आडम्बर की राजनीति थी और राष्ट्रीय राजनीति में भी लगातार १८ वर्षों तक उन्होंने राष्ट्र को भ्रम-जाल में बांधे रखा। गांधीजी ने धर्म और राजनीति को एक सूत्र में पिरोना चाहा था, लेकिन नेहरू जी की दृष्टि धार्मिक न होकर वैज्ञानिक और तार्किक थी, अतः अतिशय तार्किकता एवं वैज्ञानिकता के कारण नेहरूजी गांधीजी द्वारा उपदिष्ट राजनीतिक आदर्शों से धीरे-धीरे पलायन करते रहे। गांधीजी की आत्मनिर्भरता एवं औद्योगीकरण न करने की नीति को नेहरू सरकार ने स्वीकार नहीं किया। विदेशी ऋण से देश दबता गया तथा राष्ट्रीय राजनीति विदेशी ताकतों से प्रभावित होती गई। तब तक नेहरू जी का व्यक्तित्व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इतना प्रभावशाली बन चुका था कि अन्य नेताओं की चेतावनियों की ओर किसी का ध्यान ही नहीं गया।

भारतीय राजनीति प्रजातन्त्रात्मक होते हुए भी तानाशाह जैसी रही। नेहरू जी ने जो भी किया, उस पर प्रश्न चिह्न लगाने वाला कोई भी नेता नहीं था, केवल राममनोहर लोहिया ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिनकी दृष्टि रचनात्मक थी। उनकी दृष्टि में सरकारों का कोई महत्त्व न था। वे तो आधारभूत मानव-मूल्यों के अन्वेषी थे। इसलिये वह अपने जीवन-काल में यथास्थिति का हमेशा विरोध करते रहे।

राजनीति को मोड़ना, बदलना उन चन्द व्यक्तियों के हाथ में था जो नेहरू जी को प्रभावित कर सकते थे। युवा कवियों के एक वर्ग ने तो यथास्थिति के साथ समझौता किया, लेकिन एक वर्ग ने बहुत बाद में लड़खड़ाते हुए देश पर अपना क्षोभ प्रकट करते हुए कहा—

> मैं उस देश का क्या करूं
> जो धीरे-धीरे लड़खड़ाता हुआ।
> मेरे पास बैठ गया है।[1]

स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय राजनीति का आदर्श गांधीजी थे। उन्होंने अपार जनसमूह को कुशल नेतृत्व प्रदान किया, लेकिन उनके अनुयायियों द्वारा सत्ता संभालते ही गांधीजी का नाम तो शेष रहा, लेकिन उनके सिद्धान्तों एवं आदर्शों को धीरे-धीरे ताक पर उठा कर रख दिया गया। गांधीजी के आदर्शों एवं सिद्धान्तों का दुरुपयोग राजनीति में किस सीमा तक हुआ, उस पर व्यंग्य करते हुए नये कवि ने कहा—

---

१ गर्म हवाएं सर्वेश्वरदयाल सक्सेना पृ० १०

मैं जानता हूं
क्या हुआ तुम्हारी लंगोटी का
उत्सवों में अधिकारियों के
बिल्ले बनाने के काम आ गई
भीड़ से बचकर
एक सम्मानित विशेष द्वार से
आखिर वे उसी के सहारे ही तो जा सकते थे
और तुम्हारी लाठी ?
उसी को टेक कर चल रही है
एक बिगड़ी दिमाग़ डगमगाती सत्ता
और तुम्हारा चश्मा !
इतने दिनों हर कोई
उसे ही लगाकर
दिखाता रहा है अन्धों को करिश्मा
तुम्हारी चप्पल
गरीबी की चांद गंजी
करने के काम आ रही है
और घड़ी ?
देश की नब्ज की तरह बन्द है
अच्छा हुआ
तुम चले गये
अन्यथा तुम्हारे तन का
ये जननायक क्या करते
पता नहीं ।[1]

चीनी आक्रमण और अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में भारत के प्रति उदासीनता तथा मोह-भंग की स्थिति

सन् ६२ में चीनी आक्रमण से देश बिफर गया । राष्ट्रीय राजनीति डावांडोल हो उठी । एक के बाद एक चौकियों के पतन से राष्ट्र में अवसाद और आतंक छा गया । 'चीनी आक्रमण के कारण भारत की अन्दर की विषम हालत एवं भावनात्मक स्तर नये चिन्तन और परिस्थितियों के कारण भारतीय व्यक्ति में निराशा, भय, संशय और शंका की स्थिति ने घर किया ।'[2]

---

१. गर्म हवाएं : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ० ३०-३१
२. वातायन, दिसम्बर '६६ : पूनम दईया, पृ० ११

राजनीति के बाह्य और तात्विक दोनो रूपो मे परिवर्तन आये। पहली बार भारतीय राजनीति मे जन-समूह के कोलाहल को इतनी जल्दी से सुना गया, जिसके कारण तत्कालीन रक्षामन्त्री श्री वी० के० वी० कृष्णमेनन को तत्काल अपने पद से हट जाना पडा। युद्ध ने पूरे राष्ट्र को हिला दिया। विश्व के सभी राष्ट्रो ने चुप्पी साध ली। अमरीका के तत्कालीन राष्ट्रपति कैनेडी ने तुरन्त आणविक सहायता का आदेश दिया, लेकिन तब तक युद्ध विराम हो चुका था। जैसा कि डा० रामदरश मिश्र ने कहा है—'युद्ध एक ऐसी घटना है, जिसका सम्बन्ध केवल अनुभूति से नही है, मूल्यों से, विवेकानुभव जीवन-दृष्टि से है।'[1] ऐसे ही अनुभव से उस समय देश गुजरा उस समय की परिस्थितियो को रूपायित करते हुए डा० देवीशकर अवस्थी ने कहा—'चीनी आक्रमण ने देश के मानस को बदला अवश्य था। एक बार फिर से अपने सन्दर्भ और परिवेश को पारिभाषित करने की आकाक्षा जागी थी। युद्ध के सीमित और विराट् अर्थों के द्वन्द्व वाले सन्दर्भ ने तमाम चीजो को उलटने-पुलटने के लिए विवश किया था।'[2]

चीनी आक्रमण के साथ ही अन्तर्राष्ट्रीयता के प्रति मोह-भग हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय जगत मे भारत के प्रति बरती गई उदासीनता ने भारतीय राजनीति को अधिक राष्ट्रीय बनने की ओर प्रेरित किया। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का ब्योरा नयी कविता ने इस प्रकार से दिया—

> वे पहले हमारी छातिया पोली कर देते हैं फिर
> इन्जेक्ट करते हैं
> वे हमारी हड्डियों मे छेद कर देते हैं।
> उस पर प्लास्टर बाधते हैं
> वे अकेले कमरों में बिजली के कोडे सटकारते हैं
> बाहर गले मिल लेते हैं
> वे हमारे सिर की निहाई पर छुपे हथियार पीटकर पिजाते हैं
> सभ्यता का सुन्दर इतिहास लिख रहे हैं—
> ये क्रूर ये आदिम
> ये अत्याचारी नकाबपोश आह क्या कोई समझेगा।
> यह 'सच' सचमुच कितना अनहोना है।[3]

अन्तर्राष्ट्रीय जगत् मे भारत ने किसी का भी मोहरा बनने से इन्कार कर दिया। इनसे भारत की अर्थ-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था दूर तक प्रभावित हुई। राजनीति के बदलते मानदण्डो ने पूरे समाज और पूरे परिवेश को प्रभावित किया।

---

१ लहर, जनवरी '६६ डा० रामदरश मिश्र, पृ० ४३
२ वही, डा० देवीशकर अवस्थी, पृ० २४
३ अपनी शताब्दी के नाम, दूधनाथ सिंह, पृ० ७५ ७६

आगे-पीछे सहयोग और मित्रता की दुहाई देने वाले देशों की पोल युद्ध के समय ही खुलती है। इसलिए नया कवि क्षुब्ध होकर समस्त राष्ट्रों पर आरोप लगाता है—

ठीक वक्त पर भी बोल जाते हैं
सभी लुजलुजे हैं, थुलथुले हैं, लिबलिब हैं
पिलपिल हैं
सबमें पोल है, सबमें झोल है
सभी लुजलुजे हैं।[1]

युद्ध, उदासीनता और मोहभंग की स्थिति के बाद राजनीति की एक और चाल शुरू होती है—'शीत-युद्ध'। कैलाश वाजपेयी की कविता 'शीत-युद्ध' निम्न शब्दों में शीत-युद्ध को अंकित करती है—

सबके पास डंक है।
सबको
यह ज्ञात है
डसने के बाद
मधुमक्खी
मर जाती है।[2]

राजनीतिक विफलता और युद्ध में भी विफलता से आहत कवियों की वाणी दो रूपों में निकली। एक ओर तो ऐसी कविताएं लिखी गईं, जिनमें युद्ध-जनित उत्तेजना, आक्रोश, भय-क्रोध के भाव थे। ऐसी कविताओं की संख्या बहुत अधिक थी, लेकिन युद्ध समाप्त होते-होते वे कविताएं भी समाप्त हो गई। दूसरी वे कविताएं थी, जो युद्ध की विभीषिका और युद्धानुभवों से उद्भूत थी। नयी कविता में दोनों प्रकार की कविताएं लिखी गयी, लेकिन केवल वही कविताएं युद्ध का दस्तावेज बन पाईं, जिनमें अनुभूति की गहराई और अनुभव का मुलम्मा था।

पाकिस्तानी आक्रमण— राजनीतिक अस्थिरता
संयुक्त मोर्चों का गठन और दल-बदल की राजनीति

अभी चीनी आक्रमण से हुई हानि से राष्ट्र सम्भल भी न पाया था कि सन् '६५ में पाकिस्तान ने आक्रमण कर दिया। पाकिस्तानी आक्रमण के सन्दर्भ में बात करते हुए देवीशंकर अवस्थी ने कहा'''पाकिस्तान से होने वाला युद्ध इसी पिछले युद्ध की अगली कड़ी बन कर आया ''जो कभी राजनीति की बात नहीं करते थे, जिनके लिए चारों ओर से घेरता अकेलापन ही था, वे भी अचानक जैसे झंझोड़ दिये गये और युद्ध की मोर्चेबन्दियों की ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक दांवपेचों की चर्चा करने

---

१. सीढ़ियों पर धूप में : रघुवीर सहाय, पृ० १४०
२. देहान्त से हटकर : कैलाश वाजपेयी, पृ० १५

लगे इस लडाई ने बुद्धिजीवी को बदला।"[1] बुद्धिजीवी वर्ग ने राष्ट्रीय हितो पर अधिक बल दिया। नयी कविता ने सतही तौर पर इस बात को न पकड़ कर अधिक गहराई से पकड़ा। नयी कविता ने पाक हिन्द की बात न करके मानव मात्र की बात की, लेकिन राष्ट्रीय हितो को सुरक्षित रखने के स्वर नयी कविता मे झलकने लगे। रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, कैलाश वाजपेयी, मणिमधुकर आदि कवियो की कविताए राजनीति के बदलते सन्दर्भों को रूपायित करती रही।

सन् '६८ के आम चुनाव के बाद राजनीतिक अस्थिरता आयी। अधिकाश राज्यो मे किसी भी दल को बहुमत न मिलने से सयुक्त मोर्चों का गठन हुआ तथा 'आया राम और गया राम' की नीति शुरू हुई। जितनी तेजी से राजनीति बदलती है, उतनी तेजी से कविता नही बदल पाती। क्योंकि—'राजनीतिक पार्टियो के सामने सिद्धान्तो का प्रश्न नही रहता, सामयिक उपयोगिता की बात रहती है।'[2] जबकि कविता के सामने सामयिक उपयोगिता का प्रश्न न होकर चिरन्तन उपयोगिता का प्रश्न रहता है। दल बदल की राजनीति ने नये कवियो को भले ही प्रभावित किया, लेकिन नयी कविता को वह अधिक दूर तक प्रभावित नही कर पायी।

राजनीतिक अस्थिरता से स्थिरता की ओर तथा व्यापक राजनीतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास

चुनावो के बाद की राजनीतिक अस्थिरता तीन वर्ष तक चलती रही, लेकिन मध्यावधि चुनावो तथा ससद भग करके नये चुनावो से केन्द्र तथा राज्यों मे भी राजनीतिक स्थिरता आने लगी। राजनीति अर्थ-व्यवस्था से जुडी हुई होती है, इसीलिए राजनीति ने इन दोनो को बदलना आरम्भ किया। जनसघ भारतीय क्रातिदल तथा सयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के साथ मिल जाने के प्रयास सफल न हो सके। काग्रेस मे गतिरोध उत्पन्न होने से वह दो दलो मे बट गई। ससद के नये चुनावो से नयी काग्रेस को छोड कर प्राय शेष सभी दलो की प्रतिष्ठा को आघात लगा। केन्द्र में स्थिरता आने से राजनीतिक स्थिरता आई।

इन्दिरा गाधी के नेतृत्व मे बनी सरकार ने एव दल ने राजनीति को व्यापक मानवीय आयाम देने का प्रयास किया। तत्कालीन राजनीति और सत्ता का मूल्याकन करना सम्भव नही होता, लेकिन इन्दिरा सरकार के समाजवादी कार्यक्रमो प्रयासो तथा बगला देश के स्वतन्त्रता-सग्राम मे किये गये सहयोग को देखते हुए यह कहना असगत नही लगता कि भारतीय राजनीति दल-बन्दी से निकल कर आत्मस्वतन्त्रता, आत्मस्वाभिमान और मित्रता जैसे स्थायी मानवीय मूल्यो की ओर अग्रसर हो रही है। नयी कविता इन्हें पहले से ही स्वीकार कर चुकी है और वह बदलते हुए राजनीतिक

---

१ लहर, जनवरी '६६ डा० देवीशकर अवस्थी पृ० २५ २६
२ कल्पना, सितम्बर ६६ धर्मवीर भारती पृ० ८६

सन्दर्भों में इनका पुनः पुनः आकलन न करेगी, ऐसा कहना असम्भव प्रतीत होता है।

सांस्कृतिक और दार्शनिक मूल्य

सांस्कृतिक और दार्शनिक मूल्यों से अभिप्राय

'कल्चर' शब्द के लिए अंग्रेजी बेकन की ऋणी है। 'संस्कृति' मानव-जीवन के बाह्य, आंतरिक, बौद्धिक, नैतिक तथा धार्मिक जीवन को अभिव्यक्त करती है। आन्तरिक और बाह्य जीवन और मन और कर्म का समंजन ही संस्कृति के मूल में स्थित है। 'दर्शन' का अर्थ है 'जिसके द्वारा दर्शन हो' (दृश्यतेऽनेन इति दर्शनम्) अर्थात् जिसके द्वारा सत्य का साक्षात्कार हो, वह दर्शन कहलाता है। यहाँ यह कहना आवश्यक न होगा कि 'दर्शन' सृष्टि का विश्लेपण केवल वैचारिक स्तर पर करता है, प्रयोगात्मक स्तर पर नहीं। दर्शन वैचारिक स्तर पर सत्य का अन्वेपण करता है। इसीलिए यशदेव शल्य का कहना युक्तियुक्त है कि 'दर्शन सत्यान्वेपण का ही एक सन्दर्भ है।'[1]

'सांस्कृतिक मूल्यो से अभिप्राय उन तत्वों का है जो सत्य के सन्धान और सिद्धि मे सहायक होते है, जीवन की कल्याण-साधना अर्थात् भौतिक और आत्मिक विकास में योगदान करते हैं और सौन्दर्य-चेतना को जागृत एवं विकसित करते है।'[2] दार्शनिक मूल्यों से अभिप्राय उन तत्वो से है, जो सृष्टि का समग्र एव अखण्ड रूप में विश्लेपण करने की दृष्टि देते है तथा अन्तिम या चरम सत्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर करते हैं।

भारतीय संस्कृति की अपनी थाती विदेशी संस्कृति का प्रभाव और नयी कविता

भारत की अपनी संस्कृति की एक लम्बी परम्परा है। उसके अपने सास्कृतिक मूल्य है। मध्यकालीन सास्कृतिक मूल्य देवी-देवताओं की वन्दना, तीर्थ-यात्रा तथा सामाजिक आदर्शों के साथ जुड़े हुए थे। रीतिकालीन सामन्तीय सांस्कृतिक मूल्यों को अस्वीकार करके राष्ट्रीय सास्कृतिक मूल्यों का उदय हुआ, लेकिन स्वतन्त्रता मिलते ही वे अपनी गरिमा खो बैठे। छायावाद ने जिन सांस्कृतिक मूल्यो को प्रश्रय दिया, वे भारतीय तो थे, लेकिन तेजी से बदलते हुए युग की मांगो को पूरा न कर सकते थे। यही कारण है कि सांस्कृतिक मूल्यो का तेजी से विघटन हुआ और नयी कविता ने पूरी की पूरी संस्कृति को अस्वीकार करते हुए कहा—

> संस्कृति नाम की एक बूढ़ी औरत
> जो बहुत दिन हुए मृत्यु का बन चुकी है ग्रास
> अब भी करती है हमारे साथ चलने का प्रयास
> राजधानी के मध्य हमें साथ लेकर

---

१. ज्ञान और सत् : यशदेव शल्य, पृ० १०५
२. नयी समीक्षा : नये संदर्भ : डा० नगेन्द्र, पृ० ७९

हमारा उड़ाना चाहती है मजाक ।[1]

इस अस्वीकार के पीछे सन् '५० के बाद की निराशा, अवसाद, फ्रस्ट्रेशन और कुण्ठा ही काम कर रही थी ।

प्रजातन्त्र के असफल प्रयोगों के बीच नया कवि संश्लिष्ट एवं सुसंस्कृत व्यक्तित्व की खोज कर रहा था । इसी पुनरन्वेषण में वह महानगरों की पनपती हुई सभ्यता और संस्कृति की ओर बढ़ा तो उसे वहां भी अव्यवस्था नजर आई । उसने शहरी सभ्यता पर व्यंग करते हुए कहा—

> साप तुम सभ्य तो हुए नहीं
> नगर में बसना
> भी तुम्हें नहीं आया ।
> एक बात पूछूं (उत्तर दोगे ?)
> तब कैसे सीखा डसना
> विष कहां पाया ।[2]

शहरी संस्कृति का दंश नये कवि के मन में कितना गहरा था, इसका प्रमाण उपरोक्त कविता है ।

जब युग करवट लेता है तो पूरी संस्कृति बदल जाती है । यहां भी ऐसा ही हुआ । हर पीढ़ी का अपना इतिहास होता है, अपने सांस्कृतिक मूल्य होते हैं, वह उन सांस्कृतिक मूल्यों को कहीं स्वीकार और कहीं अस्वीकार करते हुए चलती है ।

योजनाओं, राजनीतिक पैंतरेबाजी, आर्थिक शोषण, राजनीतिज्ञों की अदूरदर्शिता, अवसरवादिता तथा अव्यवस्था से सांस्कृतिक मूल्यों में विघटन हुआ तो नये कवि ने विदेशी संस्कृति की ओर देखा तो पाया कि उधर भी 'न्यू-राइटिंग' में नये सांस्कृतिक मूल्यों का उदय हो रहा था । अंग्रेजी 'न्यू राइटिंग' की पृष्ठभूमि में मशीनी और युद्ध-प्रिय संस्कृति है ।[3] मशीनी संस्कृति और युद्ध-प्रिय संस्कृति के सम्पर्क में आयी भारतीय संस्कृति । नयी कविता ने संस्कृति की यातना को भोगते हुए स्वरों को सुना, उन्हें अभिव्यक्ति दी तथा युद्ध प्रिय संस्कृति को केवल आंशिक रूप में ही स्वीकार कर सकी । क्योंकि भारतीय संस्कृति शान्तिप्रिय संस्कृति है, और शान्तिप्रिय संस्कृति को ही अधिक प्रश्रय मिला । अवसाद, निराशा और कुण्ठा के कारण जो विस्फोट हुए, वे भी अंततः शान्ति-प्रिय संस्कृति के स्थापित करने के प्रयास में ही थे ।

दो महायुद्धों ने भी भारतीय संस्कृति को बदला । औद्योगिक क्रान्ति तथा

---

१ कटी हुई यात्राओं के पत्र प्रताप सहगल (अप्रकाशित)
२ इन्द्र धनु रौंदे हुए ये अज्ञेय, पृ० २६
३ हिन्दी नवलेखन रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ० २१०

राजनीतिक, दार्शनिक, धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक सभी प्रकार के पक्षों एवं मूल्यों ने सांस्कृतिक मूल्यों को बदला और नये सांस्कृतिक मूल्यों के उदय में भारत के अन्य देशों के साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध भी पार्श्व से कार्य करते रहे हैं।

नये सांस्कृतिक मूल्यों का उदय और नयी कविता

यहां पर सीधा प्रश्न यह उठता है कि वे कौन-कौन से सांस्कृतिक मूल्य हैं, जिनका उदय '५० के बाद हुआ और जिन्हें नयी कविता में अभिव्यक्ति मिली। यहां पर यह स्पष्ट कर देना अनावश्यक न होगा कि नये सांस्कृतिक मूल्यों के उदय में बेशक विदेशी संस्कृति का भी प्रभाव रहा, लेकिन वे सभी सांस्कृतिक मूल्य भारतीय परिवेश एवं जन-जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप ही उदित हुए। विदेशी युद्ध-प्रिय एवं मशीनी संस्कृति को भारतीय संस्कृति स्वीकार नहीं कर पायी, लेकिन विदेशी संस्कृति की उदारता एवं मानववादिता आदि गुणों से अवश्य ही प्रभावित हुई है। जिन नये सांस्कृतिक मूल्यों का उदय हुआ, उनमें सबसे पहली बात तो यह हुई कि नये कवि ने धार्मिक अन्धविश्वास का तिरस्कार किया तथा तीर्थों आदि को महत्व न देकर उसने व्यक्ति के अन्तःकरण को महत्व दिया और कहा—

पग पग पर तीर्थ हैं
मन्दिर भी बहुतेरे हैं
तू जितनी करे परिक्रमा, जितने लगा फेरे
मन्दिर से, तीर्थ से, यात्रा से
हर पग से, हर सांस से,
कुछ मिलेगा, अवश्य मिलेगा
पर उतना ही जितने का तू है, अपने भीतर से दानी।[1]

दूसरी बात हुई भाग्यवादिता का तिरस्कार, तीसरी धर्म-निरपेक्षता। धर्म-निरपेक्षता जैसे सांस्कृतिक मूल्य की सशक्त अभिव्यक्ति, राजकमल चौधरी की 'धर्म' कविता में मिली है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात तो यह हुई कि संस्कृति के बदलते हुए मूल्यों में मानवतावाद का उदय हुआ तथा उसके सम्मुख छोटी-छोटी बातों को दबा दिया गया। इसके साथ ही एक बात और हुई, जिसकी यातना कवि ने भोगी कि आदमी छोटा हो गया और 'पोस्टर' बड़े हो गये। एक प्रकार की पोस्टरी संस्कृति ने जन्म लिया, जिसने कहीं-न-कहीं मानवीय मूल्यों को आच्छादित कर लिया, इसलिए सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने कहा—

---

१. कितनी नावों में कितनी बार : अज्ञेय, पृ० ७०

जो पोस्टर हैं—
ये आज के युग मे
आदमी से अधिक बड़े सत्य हैं
उन्हें सब पहचानते हैं
ये ही महान् हैं ।[1]

कुल मिलाकर नयी कविता म बदलन हुए सास्कृतिक मूल्यो की अभिव्यक्ति के सम्बन्ध मे यह कहा जा सकता है कि नया कविता को सास्कृतिक मूल्यो की थाती का आभास है, तथा वह अतीत का सास्कृतिक चेतना से जुड कर ही भविष्य का अन्वेषण करती है । वर्तमान की यातना का भोगन क लिए वह प्रस्तुत है, तथा उदार भविष्य की कामना लिए हुए वह कहती है —

वह वरण नहीं
मानो खो देना था अपनी पहचान एक ।
आकार एक
जैसी आकृति की शर्तों से बाहर आये—
सन्दर्भ रहित,
पूर्वानुरागो से टूटा अस्तित्व, किन्तु
अपने को सिद्ध न कर पाये ।
नभ में भटकें
जल के थाह
क्षण मे
त्रिकाल जीना चाहे
लेकिन अपने को पुन न सीमित कर पाए ।[2]

आधुनिक सास्कृतिक चेतना के अन्य प्रमुख कवि है, मुक्तिबोध, नरेश मेहता राक्मीका त वर्मा, नीलाभ, प्रयाग शुक्ल तथा इन्दु जैन आदि ।

भारतीय दर्शन और नयी कविता की उपेक्षित दृष्टि

भारतीय दशन की परम्परा बडी समृद्ध रही है । आस्तिक दशनो मे साख्य, योग, वैशेषिक, पूव मीमासा, उत्तर मीमासा (वेदान्त) ने समय-समय पर कविता को प्रभावित किया है तथा विशाल मात्रा मे उपलब्ध जैन और बौद्ध साहित्य इस बात का प्रमाण हैं कि जैन-दशन और बौद्ध-दशन भी सवप्रचलित रहे है । इनके अतिरिक्त

---

१ काठ की घटियाँ सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ० ३८३
२ आत्मजयी कुँवर नारायण, पृ० ७५

चार्वाक दर्शन ने भी प्राचीन संस्कृत कविता को प्रभावित किया है। ये तीनों दर्शन नास्तिक हैं। मध्यकाल में शैव मत और वैष्णव मत के नाम से प्रचलित आस्तिक दर्शनों ने बड़ी मात्रा में भक्ति-साहित्य दिया। छायावाद के विभिन्न कवियों ने विभिन्न दर्शन स्वीकार किए। प्रसाद ने प्रत्यभिज्ञा दर्शन को अपने काव्य का आधार बनाया, तो निराला की कविता मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित है। महादेवी वर्मा की कविता आधुनिक होते हुए भी ऋग्वेद से जा जुड़ती है। पन्तजी का काव्य एक ओर तो गांधीजी के दर्शन से प्रभावित है, दूसरी ओर मार्क्सवादी दर्शन से और तीसरी ओर वह अरविन्द दर्शन से आक्रान्त है। प्रगतिवादी काव्य मार्क्सवादी दर्शन का ही दूसरा स्वरूप है और प्रयोगवादी कविता ने सभी दर्शनों का स्वरूप विखण्डित हो गया, धीरे-धीरे खो गया है। इस प्रकार से 'नयी कविता को उत्तराधिकार के रूप में न अध्यात्मवादी विचारधारा प्राप्त हुई, न भौतिकवादी।'[1]

परम्परा से जो दर्शन नये कवि को प्राप्त थे, उनकी उसने उपेक्षा की। उपेक्षा इसलिए की कि आधुनिक जीवन से उनकी संगति नहीं बैठ पाई। नये कवि को कोई भी भारतीय दर्शन आकृष्ट नहीं कर पाया। इसके प्रमुखतः दो कारण रहे। पहला तो सम्भवतः यह कि इन दर्शनों के पीछे कोई भी वैज्ञानिक आधार नहीं और विज्ञान प्रसार ने इन दर्शनों को पूरी तरह से खण्डित किया, तथा दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि नये कवि ने इन दर्शनों को अपना आधार बनाना पिष्टपेषण समझा और उस पिष्टपेषण की स्थिति को स्वीकार न करके नयी चुनौतियों का सामना किया।

इन दर्शनों की उपेक्षा का अर्थ यह नहीं कि कविता का विषय दर्शन नहीं हो सकता या नहीं होना चाहिए। वस्तुतः हर कवि के काव्य के पीछे कोई ना कोई दर्शन तो कार्य कर रहा ही होता है। यशदेव शल्य का मत तो यह है कि 'आज दर्शन विशेष रूप से काव्योपयुक्त है।'[2]

विदेशी प्रभाव

नयी कविता ने एक ओर तो भारतीय दर्शनों की उपेक्षा की तथा दूसरी ओर वह विदेशी दर्शनशास्त्रियों एवं दर्शनों से प्रभावित और कहीं-कहीं आक्रांत हो गई। जिन विदेशी दर्शनों ने नयी कविता को प्रभावित किया, उनमें प्रमुख हैं—सार्त्र का अस्तित्ववाद, मदाम पिकाट क्षणवाद, नीत्शे का महामानववाद (सुपरमैन), हीगेल और काण्ट का प्रत्ययवाद, डार्विन का विकासवाद, मार्क्स एवं एंजिल्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, एमर्सन का अध्यात्मवाद, बर्गसन का प्रगतिवाद (नेचुरलिज्म) तथा हेनरी जेम्स का प्रागवाद (प्रागमैटिज्म)।

---

१. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध : ग० मा० मुक्तिबोध, पृ० ३१
२. माध्यम, अप्रैल '६६ : यशदेव शल्य, पृ० १७

अस्तित्ववाद बनाम व्यक्तिनिष्ठ चेतना

इन दर्शनों में नयी कविता को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला दर्शन अस्तित्ववाद है। अतः पहले अस्तित्ववाद के स्वरूप को समझ लेना आवश्यक है। अस्तित्ववादी चिन्तन के उद्गम-स्रोत डेनिश दार्शनिक कीर्कगार्ड तथा जर्मन विचारक हुसरल और हेडेगर की विचार-पद्धतियों में देखे जा सकते हैं। लेकिन इसके प्रचारक और इसे प्रतिष्ठापित करने वाले फ्रेंच दार्शनिक सार्त्र को इस दर्शन का श्रेय अधिक है।

अस्तित्ववादी दर्शन का सूत्र-वाक्य है—'Existence precedes essence' अर्थात् अस्तित्व की स्थिति तत्व से पूर्व है। इस प्रकार से अस्तित्ववाद मनुष्य को उसके जीवित सन्दर्भ में सोचता है।

अस्तित्ववादी दर्शन का प्रारम्भ व्यक्ति की विवश तथा निरुपाय स्थिति से होता है। मानव के सम्मुख सब से बड़ी चुनौती मृत्यु है, वहाँ वह चुनाव नहीं कर सकता, बल्कि अवश हो जाता है। मृत्यु के सम्मुख वह हार जाता है, इसलिए उसे अल्प समय में ही जीवन को सार्थक करना है। यहाँ आकर इस चिंतनधारा के दो वर्ग हो जाते हैं। कीर्कगार्ड आदि चिंतकों का प्रथम वर्ग तो मनुष्य को ईश्वर के साथ जोड़ कर उसे सही मूल्य या अर्थ देना चाहता है, जबकि दूसरा वर्ग सार्त्र, अल्बर्ट कामू और सिमिन दे ब्यूवोर्ई का है, जो निरीश्वरवादी है और वह मानव-अस्तित्व का आकलन दिये गये परिवेश में करता है।

विभिन्न विद्वानों ने अस्तित्ववाद को अपने अपने ढंग से परिभाषित किया है। ज्यूलियन बेन्द्रा ने अस्तित्ववाद को भाव तथा विचार के प्रति जीवन का विद्रोह कहा है तो एमानुएल मोनियर के मत में भावों तथा वस्तुओं के अतिवादी दर्शन के विरोध में जो दर्शन आया, वह अस्तित्ववाद है। एलेन ने इसे 'दर्शक' की दृष्टि न होकर अभिनेता की दृष्टि कहा। सार्त्र ने स्वयं यूरोप की युद्धकालीन स्थितियों से उपजी व्यक्ति-मन की निराशा और अवसाद का विश्लेषण करते हुए मानवीय स्वातन्त्र्य का प्रबल समर्थन किया। यौन-सम्बन्धों में भी उसे किसी प्रकार का बन्धन स्वीकार नहीं।

अस्तित्ववाद की परिभाषा करते हुए डा० नगेन्द्र ने कहा है—'अस्तित्ववाद अमूर्त धारणा के विरुद्ध मूर्त जीवन-व्यापार का विद्रोह है, परोक्ष विचार के प्रति प्रत्यक्ष अनुभव का, समष्टि भावना या संस्था के प्रति व्यक्ति चेतना का, भौतिक अथवा आध्यात्मिक नियमों के विरुद्ध मानव की स्वतन्त्र निर्वाचन क्षमता का निर्जीव 'सामान्य' के प्रति जीवन्त 'विशेष' का विद्रोह है।'[1] डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' के मत से—'अस्तित्ववादी दर्शन ने... मानव को समस्त परम्परागत चिन्तन और मूल्यों से भी दूर करने की चेष्टा की है। वह नये मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा के

---

१ नयी समीक्षा, नये सन्दर्भ डा० नगेन्द्र, पृ० ४६

लिए आतुर रहा है।"[1] डा० छगन मेहता के विचार में अस्तित्ववाद सर्वग्रासी वस्तुवाद, तर्कवाद (रेशनलिज्म) प्रत्ययवाद आदि बहुमुखी परम्पराओं के प्रति आज भी क्षुद्र और दुर्बल किन्तु प्रबुद्ध और क्षुब्ध मानव को अपने अस्तित्व की सिद्धि के लिए विद्रोह का शुभारम्भ है।"[2] मानविकी पारिभाषिक कोश में अस्तित्व को सूत्रबद्ध करते हुए लिखा है—

(१) मनुष्य के निर्माण के मूल में कोई सजग प्रयोजन नहीं है।
(२) मनुष्य को उसकी इच्छा के बिना ही इस संसार में धकेल दिया गया है।
(३) इस संसार में आने के बाद मनुष्य का ही कार्य है कि वह अपने जीवन के अर्थ एवं प्रयोजन का निर्णय करे।[3]

नयी कविता अस्तित्ववादी दर्शन से बहुत दूर तक प्रभावित है। अस्तित्ववाद के प्रभाव से ही नयी कविता में जीवन की निरर्थकता और व्यक्ति की अवशता के स्वर आये हैं। अस्तित्ववादी चेतना व्यक्तिनिष्ठ है और यह व्यक्तिनिष्ठ चेतना आस्था के स्वर खो बैठी है। इसीलिए नया कवि नहीं जानता कि उसकी जीवन-यात्रा का प्रारम्भ कब, क्यों और कैसे हुआ। अपनी अन्तहीन यात्रा को निरर्थक मानते हुए वह कहता है—

यह यात्रा कब आरम्भ हुई थी ?
क्यों ?
किस अर्थ से ?
किन मोड़ों से होकर इस इतिहास तक आया हूं !
किन्तु काल की शत सहस्र परतों के पीछे
काली काली चट्टानों के पास झांकने के प्रयत्न सब
व्यर्थ हुए हैं।
यात्रा का कुछ स्पष्ट अर्थ
चेतना पटल पर नहीं संवरता
लगता है धारा में बहते सहसा
नाव भंवर में उलझ गई है
लगता है : हर नया मार्ग गन्तव्यहीन
आगे आगे प्रतिक्षण बढ़ता जाता
जिस पर बस चलते जाने का निष्कारण अभिशाप मिला है

१. आलोचना, अप्रैल, '६६ : डा० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश', पृ० ३२
२. वातायन, नवम्बर '६६ : डा० छगन मेहता, पृ० १४
३. मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड) : सं० डा० नगेन्द्र, पृ० ११५

मझको
अन्तहीन यात्री को।[1]

अस्तित्ववाद ने नयी कविता को अनास्था के स्वर एवं अविश्वास के स्वर दिए हैं। निराशा और अनास्था के स्वर नयी कविता में यूं पनपे हैं—

ये हाथ
जिनमे रहते थे
फल
अब इनमें श्वेत कांटे हैं
जैसे बबूल
माथे की चिन्ता की रेखाएँ
जो कभी थीं
पानी की लकीर
बनती जा रही हैं
पत्थर की लकीर।[2]

अस्तित्ववाद के प्रभाव स्वरूप जो तीसरी प्रवृत्ति नयी कविता में उभर कर सामने आयी, वह है ईश्वर से अविश्वास। अस्तित्ववाद ने ईश्वर की सत्ता को खण्डित करके व्यक्ति के 'अहं' को प्रतिष्ठित किया। इस संदर्भ में विजयदेव नारायण साही की पंक्तियों को उद्धृत किया जा सकता है—

प्रथम बार जब तुमने झूठा ईश्वर देखा
मानव के घायल मस्तक की साक्षी दे कर
मैंने अस्वीकार किया था।[3]

क्योंकि अस्तित्ववाद यौन सम्बन्धों में भी व्यक्ति स्वातंत्र्य को ही महत्व देता है, इसलिए नयी कविता में यौन-सम्बन्धों के नग्न और स्वतन्त्र यौन-सम्बन्धों को स्वीकार करने वाले अनेक बिम्ब मिल जाएंगे। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

छत पर बेसुध सोती हुई रातें
खुले स्तन तने स्तूप
और कसते कसते
उखड़ी हुई सी छतों में
कुछ रेशमी छाले।[4]

---

१ नयी कविता, अंक ३ प्रयागनारायण त्रिपाठी पृ० ८३-८४
२ नयी कविता, अंक १ श्याममोहन श्रीवास्तव, पृ० ५१ ५२
३ नयी कविता के प्रतिमान लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० १०२ से उद्धृत
४ इतिहासहन्ता, जगदीश चतुर्वेदी, पृ० ६८

अस्तित्ववाद का विराट् इतिहास नैरन्तर्य को स्वीकार न करके क्षण की सत्ता और उसके महत्व को स्वीकार करता है। यही कारण है कि कुंवर नारायण के लिए इतिहास की रागात्मकता अविच्छिन्नता की रक्षा करना और प्रयागनारायण के लिए उस अनाहत नैरन्तर्य की भव्यता की रक्षा करना एक समस्या है तथा विजयदेव नारायण साही उस नैरन्तर्य के भीतरी मापों को पहचानने में असमर्थ है। इतिहास और विराट् के सामने क्षण के महत्व को स्वीकार करते हुए कीर्ति चौधरी का कहना है—

> मैं प्रस्तुत हूं
> इन कई दिनों के चिन्तनों संघर्षों के बाद
> यह क्षण जो अब आ पाया है
> उसमें बन्ध कर मैं प्रस्तुत हूँ
> तुमसे सब कुछ कह देने को।[1]

इनके अतिरिक्त शून्यता, उबकाई तथा घृणा के कुछ और भी ऐसे स्वर हैं जो नयी कविता में पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं तथा जिन पर स्पष्ट ही अस्तित्ववाद का प्रभाव है।

अस्तित्ववाद ने सबसे बड़ा काम यह किया है कि उसने व्यक्ति को महत्व दिया। इससे पूर्व कविता में प्रगतिवाद आदि मे—व्यक्ति को प्रायः नकार दिया जाता था और सामाजिक चेतना तथा सामाजिक सत्ता और सामाजिक मूल्यों की बात ही अधिक होती थी, लेकिन व्यक्ति-चेतना और व्यक्ति की सत्ता को नयी कविता के माध्यम से स्थापित करने का श्रेय अस्तित्ववादी दर्शन को ही जाता है। इसलिए 'आत्मजयी' का नचिकेता यह प्रश्न करता है—

> ये चीजें मेरी हैं
> सम्बन्धी मेरे है
> धरा धाम सखा, बन्धु
> पिता, नाम वर्तमान···
> मुझमें हैं—मुझसे हैं—मेरे है—
> अनजाने, पहचाने, माने, वेमाने,
> सब मेरे हैं, मै सबका हूँ
> लेकिन मैं क्या हूं ?
> मैं क्या हूं ?
> मैं क्या हूं ?[2]

१. नयी कविता, अंक ३ : कीर्ति चौधरी, पृ० ९३
२. आत्मजयी : कुंवरनारायण, पृ० ४०

क्षणवाद

'सर्वंक्षणिकक्षणिकम्' कह कर बौद्ध-दर्शन ने सर्वप्रथम क्षणवाद को जन्म दिया। बौद्ध-दर्शन ने क्षण को सत्य बताते हुए जगत और जीवन को निस्सार कह दिया। मनुस्मृति मे तथा बाद मे शंकराचार्य ने भी क्षणवाद का विरोध किया है। उनकी दृष्टि मे आत्मा का अस्तित्व क्षणातीत है।

पश्चिम मे क्षणवाद को जन्म देने वाले दार्शनिक विलियम जेम्स, हेनरी बर्गसा, जोला तथा मैक्स पिकार्ट हैं। इनके मत से वर्तमान अनुभूत क्षण ही सत्य है। काल प्रवाह या ऐतिहासिक नैरन्तर्य को वे क्षणो का योगफल मानते हैं। 'क्षण-वाद' भविष्य के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता। क्षण के दो स्वरूप—स्थूल और सूक्ष्म—बताते हुए सूक्ष्म क्षण को सत्य की अनुभूति का क्षण माना है। यही क्षण मुक्ति का क्षण भी है।

इसी क्षणवाद को नयी कविता मे कहीं कहीं अभिव्यक्ति मिलती है। इस प्रकार की कविताएँ प्राय नीरस और निकृष्ट होती हैं तथा किसी प्रकार के विशिष्ट मानवीय मूल्यो में योग नहीं देतीं। इसीलिए 'क्षणवाद' ने कुल मिलाकर नयी कविता का अहित ही किया है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

नयी कविता द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के दर्शन से भी प्रभावित हुई है। इस दर्शन के अनुसार विश्व मे शोषित और शोषक तथा शासित और शासक—दो विरोधी शक्तियाँ कार्य कर रही हैं। इनमे सदैव परस्पर संघर्ष बना रहता है तथा अन्तत विजय शोषित अथवा शासित अर्थात् सर्वहारा वर्ग की होती है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सर्वहारा वर्ग का पक्ष लेता है। नयी कविता मे सर्वहारा वर्ग के प्रति जो सहानुभूति दिखाई देती है वह इसी दर्शन का परिणाम है। यहा पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि नयी कविता ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के दर्शन को उस प्रकार ग्रहण नहीं किया, जैसे कि प्रगतिवाद ने। नयी कविता मे सर्वहारा वर्ग के लिए नारो या झण्डों की बात नहीं, बल्कि उनकी यातना, दुःख और दर्द को समझने तथा समझ कर अभिव्यक्त करने की भावना है। सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति प्रकट करने वाली कविताओ की शुरूआत निराला की कविता 'गुलाब', 'भिक्षुक' तथा 'वह तोडती पत्थर' मे हो जाती है। परन्तु इधर नयी कविता मे यह जागरूकता एक साथ कई कवियो मे उभरी। रामविलास शर्मा, प्रभाकर माचवे मुक्तिबोध, सर्वेश्वरदयाल, नागार्जुन, धूमिल, रामदरश मिश्र आदि कवियो की अनेक कविताओं मे ये स्वर मिल जाएँगे। भवानीप्रसाद मिश्र की कविता 'गीत फरोश' सीधे रूप से समाज के कोढ पर व्यंग करती है।

अस्तित्ववाद तथा क्षणवाद ने नयी कविता को वैयक्तिक चेतना प्रदान की तो

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ने नयी कविता को समाजनिष्ठ चेतना से वंचित नही रहने दिया। सामाजिक सन्दर्भों से जुड़ी हुई दृष्टि का निर्माण करने में इस दर्शन का बड़ा हाथ रहा है। इसी दृष्टि की एक झलक दुष्यन्तकुमार की निम्न पंक्तियों से मिल जाएगी। वे लिखते हैं—

वे जो पसीने से दूध से नहाये थे
वे जो सच्चाई का झंडा उठाए थे
वे जो हमसे पहले इन राहों में आये थे
वे जो लौटे तो पराजित कहाए थे
क्या वे पराए थे ?
सच बतलाना तुमने उन्हें क्यों नहीं रोका ?[1]

अन्य दर्शन

उपर्युक्त दर्शनों ने तो नयी कविता को दूर तक प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त कुछ दर्शन ऐसे भी है, जो आंशिक रूप से ही प्रभावित कर पाये है। वे हैं डार्विन का विकासवाद, हीगेल तथा काण्ट का प्रत्ययवाद, बर्गसन का प्रकृतिवाद और हेनरी जेम्स का प्रागवाद। इन दर्शनो से प्रभावित प्रमुख कवि हैं—अज्ञेय लक्ष्मी-कान्त वर्मा, शकुन्त माथुर, कीर्ति चौधरी आदि—

नयी कविता के अपने दार्शनिक मूल्य

नयी कविता पर विदेशी दर्शनों का प्रभाव जान लेने के बाद यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि नयी कविता का अपना दर्शन या अपने दार्शनिक मूल्य क्या है ? यूं तो नयी कविता के दर्शन के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं है, लेकिन फिर भी कुछ ऐसे तत्व अवश्य है जो नयी कविता के दार्शनिक मूल्यों को निर्धारित करते है।

नयी कविता के दार्शनिक मूल्य एक ओर तो व्यक्ति-चेतना से जुड़े हुए तथा दूसरी ओर सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करना चाहते है। आज व्यक्ति के मन में जो आकुलता और जिज्ञासा है, नयी कविता उसका प्रतिनिधित्व करती है। 'संशय की एक रात' के राम के मन की आकुलता आज के व्यक्तिमन की ही आकुलता है, उसका युद्ध-दर्शन आज के व्यक्ति का युद्ध-दर्शन है और वह नयी कविता के दर्शन का एक हिस्सा है। राम कहते हैं—

''लक्ष्मण !
मैं नहीं हूं कापुरुष

---

१. नयी कविता, अंक ३ : दुष्यन्त कुमार, पृ० ७२

युद्ध मेरी नहीं है कुण्ठा
पर युद्ध प्रिय भी नहीं।'[1]

'आत्मजयी' के नचिकेता के माध्यम से प्रस्तुत किया गया जीवन दर्शन नयी कविता का ही जीवन-दर्शन है। नचिकेता के सम्बन्ध में कुँवरनारायण का कहना है कि, "उसके अन्दर वह वृहत्तर जिज्ञासा है, जिसके लिए, केवल सुखी जीवन जीना काफी नहीं है, सार्थक जीना जरूरी है, जो उसे साधारण प्राणी से विशिष्ट उन मनुष्यों की कोटि में रखती है जिन्होंने सत्य की खोज में अपने हित को गौण माना।"[2] अस्तित्ववाद से प्रभावित होने पर भी नयी कविता जीवन को सार्थकता देने के प्रयास करती है। इसलिए नचिकेता कहता है—

'मुझको इस छीना-झपटी में विश्वास नहीं
मुझको इस दुनियादारी में विश्वास नहीं
हर प्रगति चरण मानव का घातक पड़ता है।
हम जीते आपाधापी और दबावों में।
हम जितना पायें कम ही लगता है।'[3]

नचिकेता इसके विपरीत चाहता है—

'मिल सके अगर तो
एक दृष्टि चाहिए मुझे—
जीवन बच सके
अन्धेरा हो जाने से बस।'[4]

अस्तित्ववादी दर्शन मृत्यु के सम्मुख अवशता का दर्शन है, लेकिन नयी कविता का दर्शन मृत्यु से टक्कर लेना सिखलाता है। वह व्यक्ति को मृत्यु से भी बड़ा होने का सन्देश देते हुए कहता है—'मृत्यु के चिन्तन से जीवन के प्रति निराशा ही पैदा हो, ऐसा आवश्यक नहीं—कोई नितान्त मौलिक दृष्टिकोण भी जाना जा सकता है ... मृत्यु का सोचने का यही परिणाम नहीं कि आदमी उसके सामने घुटने टेक दे और हताश हो कर बैठ रहे। मृत्यु से सामना करना, उस पर विजय होने की कामना भी बिलकुल स्वाभाविक है। वह ऐसा कुछ करना चाह सकता है जिसे मृत्यु कभी, या आसानी से नष्ट न कर सके। मृत्यु से बड़ा होने के प्रयत्न में वह जीवन ही से बड़ा हो जाता है।'[5] अतः नयी कविता में—

जीवन धर्म है, कुत्सा नहीं

---

१ संशय की एक रात : नरेश मेहता, पृ० २७
२ आत्मजयी : कुँवर नारायण (भूमिका), पृ० ४
३ वही, पृ० १३
४ वही, पृ० १३
५ वही (भूमिका), पृ० ५

अधोगति को फेंक दूं खूंख्वार कुत्तों के लिए
या नालियों में लिथड़ने दूं असम्मानित…।'

इस प्रकार नयी कविता का जीवन-दर्शन आत्महत्या या जीवन को बिना किसी उद्देश्य के उत्सर्ग कर देने या तिरस्कार करता है।

बदलते हुए दार्शनिक मूल्यों को नयी कविता ने पूरी समर्थता के साथ समेटा है, भोगा है और अभिव्यक्त किया है। 'आत्मजयी' हो या 'संशय की एक रात' या फिर 'कनुप्रिया' हो या 'अन्धायुग', अथवा अन्य छोटी-बड़ी कविताएं। जब दर्शन की बात होती है, तो नयी कविता मानव को तुच्छ एवं लघु तथा मृत्यु के सम्मुख अवश स्वीकार करते हुए भी व्यक्ति को लड़ने का, सार्थक होने का साहस देती है। उसे निरन्तर सत्यान्वेषण की ओर प्रेरित करती है। नयी कविता का दर्शन सम्भावनाओं का दर्शन है। मानवीय चेतना के विकास का दर्शन है। यही इसकी उपलब्धि है।

सौन्दर्यगत मूल्य अर्थात् नयी कविता का सौन्दर्य-बोध

'सौन्दर्य' के सम्बन्ध में विश्व-मनीषा आज तक एकमत नहीं हो पायी है। भारतीय संस्कृताचार्यों ने 'सौन्दर्यालंकारः' कह कर कविता के बाहरी तत्व को ही सौन्दर्य मान लिया। संस्कृत आचार्यों की सौन्दर्य-सम्बन्धी धारणा अलंकारों से प्रारम्भ होकर रस तक पहुंचती है—'रसात्मकं वाक्यं काव्यम्'। लेकिन काव्य का लक्षण रस भी स्थिर न हो पाया और 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' जैसे सूत्र की उद्भावना हुई। रमणीयता सौन्दर्य का ही पर्याय है। सम्भवतः इसी भाव की अभिव्यंजना संस्कृत के इस सूत्र में मिलती है—'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।' सौन्दर्य को आनन्द और रस से जोड़ दिया गया, लेकिन पश्चिम में रस की धारणा है ही नहीं। उनकी दृष्टि में सौन्दर्य ही कविता (तथा अन्य कलाओं) का मूल तत्व है। भारतीय विचारकों ने काव्य को अन्य कलाओं से अलग तथा श्रेष्ठ माना है, जबकि पश्चिम में काव्य की गणना भी अन्य कलाओं के साथ की गयी है, इसलिए जब वे सौन्दर्य की बात करते हैं तो उनकी दृष्टि में केवल काव्य नहीं, स्थापत्य तथा मूर्ति कला आदि अन्य कलाएं भी होती हैं।

जेनोफेन रचित 'मेमोरेबिलिया' के आधार पर सुकरात की दृष्टि में सुन्दर और शिव एक हैं, प्लेटो ने शिव के साथ सत्य और नैतिक भी जोड़ दिया, जो कि भारतीय दृष्टिकोण 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' के समान है, जबकि अरस्तू ने सौन्दर्य को आकांक्षा, वासना तथा उपयोगिता से ऊपर की वस्तु माना। प्लूटार्क ने सौन्दर्य को एक प्रकार की कलात्मक कुशलता तथा शापेनहावर ने इच्छाओं का सम्मूर्तन माना है। जर्मन दार्शनिक काण्ट की धारणा में सौन्दर्य चिन्तनशील धारणा का आनन्द

१. आत्मजयी : कुंवर नारायण, पृ० ४५

है। उसे आत्मनिष्ठ स्वीकार करते हुए कहा कि सौन्दर्य का उद्देश्य नैतिक शिवत्व की स्थापना है। प्रत्यय (आइडिया) के महत्व को स्वीकार करने वाले जर्मन दार्शनिक हीगेल की दृष्टि मे 'आइडियल' की अभिव्यक्ति का प्रयास ही सौन्दर्य सृजन है और इस का माध्यम या अनुकरण ही सुन्दर है। 'आइडियल' क्या है ? इसका निर्णय सम्भवत आज तक नही हो सका है।

इग्लैण्ड के आदर्श विचारक शेफ्टसबरी की दृष्टि मे सौन्दर्य और ईश्वर एक हैं तथा रस्किन के दर्शन के अनुसार सौन्दर्य ईश्वर की विभूति है, लेकिन बर्क ने वस्तु विशेष की वर्णगत चारुता, आंगिक कोमलता और उज्ज्वलता को ही सौंदर्य कहा है। सौन्दर्य को वस्तुनिष्ठ मानने वाले विचारको मे प्रमुख रूसी विचारको चेर्नीशेव्स्की के मत से सौन्दर्य ही जीवन है। बेलिन्स्की, हर्जेन तथा दोब्रोल्यूबाव आदि विचारको ने भी चेर्नीशेव्स्की के मत की पुष्टि की है। क्रोचे की दृष्टि मे आत्माभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है। क्रोचे का सौन्दर्य-बोध अत्यन्त सूक्ष्म और आत्मनिष्ठ है। उसमें वस्तुपक्ष और सामाजिकता की नितान्त अवहेलना की गयी है। हीगेल ने भी आइडिया (प्रत्यय) को स्वीकार करते हुए सौन्दर्य को आत्मनिष्ठ ही माना है। अल्फ्रेड नार्थ व्हाइटहेड के शब्दो मे—'सौन्दर्य, अधिकतम प्रभावोत्पत्ति हेतु अनुभव के अनेक पक्षों की एकानुरूपी आन्तरिक सरचना है। उस सौन्दर्य का सम्बन्ध सत्य मे अनेक घटको चाक्षुष बिम्ब के अनेक घटकों के पारस्परिक अन्त सम्बन्धो तथा बिम्ब और सत्य के अन्त सम्बन्ध से होता है। इसलिए अनुभव का कोई भी अश सुन्दर हो सकता है।'[1] इसलिए कविता मे अनुभव के किसी भी हिस्से की अभिव्यक्ति हो सकती है। सार्त्र तथा कीर्कगार्ड आदि अस्तित्ववादियो की दृष्टि मे सौन्दर्य चिन्तन और सृजन का एकान्वय है। सार्त्र ने सौन्दर्य को एक ओर तो समाज के साथ जोडने का प्रयास किया है लेकिन दूसरी ओर वह भी कहा है कि—'यथार्थ कभी भी सुन्दर नहीं होता। सौन्दर्य एक ऐसा मूल्य है, जिसका सम्बन्ध केवल कल्पना लोक के साथ है।'[2]

---

1 "Beauty is the internal conformation of the various items of experience with each other, for the production of maximum effectiveness Beauty thus concerns the inter relations of various components of Reality, and also the inter relations of the various components of Appearance and also the relations of Appearance to Reality Thus any part of experience can be beautiful '

Adventures of Ideas, by Alfred North Whitehead, page 264, (Edition 1961)

2 The real is never beautiful beauty is a value applicable only to the imagery

— The psychology of Imagination, by Jean Paul Satre, Translated by Bernard Frechtmen, page 252 (Ed 1966)

फ्रायड, चार्ल्स मोरो, एडलर तथा, युंग आदि मनोवैज्ञानिकों ने सौन्दर्य का विश्लेषण भी 'लिबिडो' तथा 'सेक्सुअल प्रॉब्लम' के आधार पर किया है। अब तो जीव-विज्ञान और वनस्पति-विज्ञान का भी सहारा लिया जाने लगा है।

अज्ञेय के मत में—'सौन्दर्य-बोध बुद्धि का व्यापार है। बुद्धि के द्वारा ही हम उन तत्वों को पहचानते हैं, मानव का अनुभव ही उन तत्वों की कसौटी है।'[1]

सौन्दर्य को मानव-मूल्यों से जोड़ते हुए डा० रामदरश मिश्र का मत है कि—'जिस रचनाकार के भीतर से गुजर कर यह सौन्दर्य एक नवीन रूप प्राप्त करता है, उसका मानव-मूल्य से जुड़ा होना अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में रचना-दृष्टि के पीछे मानवमूल्यवत्ता ही काम करती है। सौन्दर्य भी मानव-मूल्य का ही एक रूप है। जहां किसी भी प्रकार की मानवीय सार्थकता नहीं है, वहां सौन्दर्य क्या होगा ?'[2]

सौन्दर्य को सापेक्ष तथा सार्थक वस्तु-सत्य स्वीकार करते हुए लक्ष्मीकान्त वर्मा ने कहा है—'प्रत्येक सुन्दर वस्तु और उसका सौन्दर्यात्मक बोध हमारे अनुभवों की कड़ी में एक और अनुभव जोड़ता है। और यह ऐसे अनुभव हैं, जो मात्र अनुभव के स्तर पर ही नहीं, सार्थकता के स्तर पर भी हमें सम्पन्न बनाते हैं।'[3] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'सामंजस्यता' को ही सौन्दर्य कहा है।[4] डा० नगेन्द्र ने सौंदर्य को सापेक्ष और आत्मनिष्ठ स्वीकार किया है। उन्हीं के शब्दों में—'सौन्दर्य शब्द अत्यन्त व्यापक है, उसकी विवृत्ति के अनेक रूप एवं प्रकार हैं और इस दृष्टि में उसमें विकास तथा परिवर्तन की प्रचुर सम्भावनाएं हैं, किन्तु इस विकास और परिवर्तन की एक सीमा अवश्य है, जिसके भीतर ऐसे भावरूप और वस्तुरूप नहीं आ सकते जो प्रतीति और परिणति दोनों में ही अप्रीतिकर हों।'[5] लेकिन यहां पर यह स्मरण रखना आवश्यक होगा कि भाव-रूपों एवं वस्तुरूपों की प्रतीति और परिणति दोनों की अप्रीति का निर्णय करना कठिन है—क्योंकि यह एक नितान्त वैयक्तिक दृष्टिकोण हो जाता है।

हीगेल, क्रोचे तथा काण्ट आदि दर्शनशास्त्रियों ने सौन्दर्य को आत्मनिष्ठ स्वीकार किया है तथा चेर्नीशेव्स्की तथा हर्जेन आदि समाजवादी विचारकों ने सौन्दर्य को वस्तुनिष्ठ तथा सापेक्ष माना है।

---

१. हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिप्रेक्ष्य : अज्ञेय, संस्करण १९६७, पृ० १०
२. मधुमती, जनवरी-फरवरी '७० : डा० रामदरश मिश्र, पृ० ५२
३. नये प्रतिमान : पुराने निकष : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० २२२
४. द्रष्टव्य—अशोक के फूल : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १८४
५. आलोचक की आस्था : डा० नगेन्द्र, पृ० १२

नयी कविता के सौन्दर्य के मूल्य बनाम सौन्दर्य-बोध

नये कवि ने सौन्दर्य को न तो सामाजिक सदर्भों से काट दिया और न ही उसे अनिवचनीय बनाया है। नयी कविता नये भावबोध, नयी समझ तथा नये मानवीय स्तरो को उद्घाटित करती हुई आगे बढी है। यही कारण है कि नयी कविता सौन्दर्य को भी नये सन्दर्भों में देखती है और उसे नये आयाम देती है।

बीसवी शती मे दो तत्व तीव्रता से उभरे—वैज्ञानिकता और आधुनिकता तथा इन्ही दो तत्वो के कारण सौन्दय बोध भी तेजी से बदला या दूसरे शब्दो मे सौन्दय के मूल्य बदल गये। छायावादी कविता का सौन्दय झीने पर्दों के पीछे झिलमिलाता हुआ सौन्दय है लेकिन नयी कविता का सौन्दय अनावृत है। वह जीवन का साक्षात्कार उसके यथाथ रूप मे ही करता है। जीवन की समस्त विद्रूपताओ को स्वीकारता है, और उन्हे स्वर देता है। छायावादी सौन्दयबोध 'शिशुवत जिज्ञासा' है, जबकि नयी कविता का सौन्दर्य जिज्ञासा से आगे बढकर जीवन को उसके यथार्थ मे समझने का प्रयास करता है, केवल समझने का ही प्रयास नही करता, बल्कि उसका सामना करता है और सामना करने की प्रेरणा देता है। नयी कविता यथार्थ से भागी हुई या टूटी हुई कविता नही है, क्योंकि वह—'सौन्दय को यथार्थ से असम्पृक्त नही मानती। क्रियाशील यथार्थ सौन्दय के विविध आयामो का परिष्कार करता है और उसका निर्धारण भी । अलौकिक अदृश्य सौन्दय से तो वह कोसो दूर है।'[1] नयी कविता का सौन्दर्य अलौकिक एव अदृश्य तत्वो को प्रश्रय नही देता, बल्कि उसमे तो जीवन की विरोधी परिस्थितियो से उपजे सन्दभ पलते बढते और अभिव्यक्ति पाते है। नयी कविता का सौन्दय समग्र जीवन को उसके राग, विराग, समजन और विघटन, शान्ति और सघर्ष सृजन और प्रलय तथा अह और अह के विगलन को साथ लेकर चलता है। वह नदी के द्वीपो तथा डबरे के सूरजों की तरह से बटा होने पर भी बडा है, प्रेरणादायी है।

अज्ञेय ने नयी कविता के सौन्दर्य-बोध को दो रूपो मे देखा है। उनके मत से नयी कविता—सजीव विषय पर, आग्रह के साथ वह सौन्दय के—एस्थेटिक के—प्रतिमानो को और रूप-विधान को स्वीकार करती हुई चलती है। दूसरी का आग्रह विषय पर नही, विषय की स्थिति पर है—निर्जीव परिस्थिति पर और वह सौंदयशास्त्र की परवाह नही करती।'[2] यहा यह कह देना आवश्यक न होगा कि जो कविता सौन्दर्य शास्त्र की परवाह नहीं करती, वो नये सौन्दय-शास्त्र का निर्माण करती है। नयी कविता सौन्दय शास्त्र के प्रतिमानो मे स्वय को आबद्ध नही मानती, नहीं कर पाती। इसलिए नहीं कर पाती कि वह सौंदय को नये आयाम देना चाहती

---

१ अनामिका, जून '७० डा० रामफेर त्रिपाठी, पृ० ३२

२ हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य अज्ञेय, पृ० १४४

है। वे आयाम जिनमे जीवन का शुभ भी है और अशुभ भी, कोमल भी है और कठोर भी। नया कवि—'कमल के साथ कीचड का अस्तित्व स्वीकार करता है, अभिभूत क्षणों के साथ विक्षिप्त क्षणों को भी महत्व देता है, वह सुन्दर को विरूप से पृथक् नही मानता, दोनों का सम्बन्ध अनिवार्य मानता है, क्योंकि रूप उतना ही बड़ा सत्य है, जितना विरूप, सुन्दर उतना ही बड़ा सत्य है जितना असुन्दर, जीवन उतना ही बड़ा सत्य है जितना जीवन-परिवेश।'[1] लेकिन यहा पर यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि नयी कविता के सौन्दर्य मे रूप का अर्थ अश्लील, असुन्दर का अर्थ भोंडापन और जीवन-परिवेश का अर्थ खोखलापन नहीं है।

छायावाद का सौन्दर्य-बोध या तो फन्तासी है या फिर यूटोपिया जो निष्क्रियता से ग्रस्त तथा खण्डित है। प्रगतिवाद का सौन्दर्य-बोध एकदम मोटा और जीवन के यथार्थ सन्दर्भो से न्युन है। प्रयोगवाद का सौन्दर्य-बोध अभी पनप ही रहा था कि नयी कविता का आग्रह अधिक हो गया तथा नयी कविता के सौन्दर्य-बोध ने प्रयोगवादी सौन्दर्य को भी समेट लिया। छायावादी रहस्य को भी नयी कविता के सौंदर्य ने नकार दिया और उसके स्थान पर उसने जीवन को पूरी कठोरताओं और विसगतियों के साथ देखा।

छायावादी सौन्दर्य ने केवल सौन्दर्य के बाह्य रूप को स्वीकार किया और उसे जीवन की विस्तृत सीमाओं से मुक्त कर दिया। नये कवि की आत्मनिष्ठा तथा जीवन की सापेक्षता ने छायावादी सौन्दर्य की सीमाओं को तोड़ा तथा जीवन को क्षण भर का मानते हुए भी क्षण को महत्व दिया। क्षण की सापेक्षता, वैज्ञानिकता, विवेक, ज्ञान तथा यथार्थ दृष्टि ने नयी कविता के सौन्दर्य-बोध को परिमार्जित किया।

नयी कविता के सौन्दर्य-बोध को प्रभावित करने वाले मार्क्स, सार्त्र, फ्रायड, एडलर आदि विद्वान् है। सौन्दर्य को सामाजिक सन्दर्भों में समझ सकने का विवेक मार्क्सवाद ने दिया। मार्क्सवाद ने ही सौन्दर्य को नैतिकता के कटघरे से निकालकर उसे सामाजिक यथार्थ में आंका। यही कारण है कि नया कवि चलताऊ सौन्दर्य-बोध पर व्यंग करता है। वह कहता है—

> आज की दुनिया में
> विधाता,
> भूख,
> मृत्यु,
> सब सजाने के बाद ही
> पहचानी जा सकती है

1. नयी कविता के प्रतिमान : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ७८

बिना आकर्षण के दुकानें टूट जाती हैं
शायद कल उनकी समाधियाँ बनेंगी
जो मरने के पूर्व
कफन और फूलों का
प्रबन्ध नहीं कर लेंगे
ओछी है दुनिया
मैं फिर कहता हूं
महज उसका
सौन्दर्य-बोध बढ़ गया है।[1]

जब कवि कहता है कि विवशता, भूख, मृत्यु सब सजाने के बाद ही पहचानी जा सकती है, तो वह बाह्य सज्जा का विरोध करता है। वह विवशता, भूख और मृत्यु को कोरे सौन्दर्य के साथ न जोड़कर उसे सामाजिक यथार्थ में देखना चाहता है। जीवन के वृहद् सन्दर्भों में उनका आकलन करना चाहता है। ऊपरी आकर्षण से सौन्दर्य-बोध बढ़ा नहीं, घटा है। इस प्रकार से नयी कविता सौन्दर्य की सूक्ष्म और यथार्थ पहचान देती है।

संस्कार और सौन्दर्य बोध की समस्या

सौन्दर्य-बोध संस्कारों में पलता है, बढ़ता है। कमल या गुलाब या एक विशेष प्रकार की आकृति इसलिए सुन्दर लगती है कि उनका सम्बन्ध संस्कारों से होता है। हमारे यहां पतले होंठ सुन्दर माने जाते हैं तो अफ्रीका में मोटे होंठ। हमारे यहां सुन्दर चलने वाली स्त्री को गजगामिनी कहा जाता है तो अरब देशों में स्त्री की सुन्दर चाल की उपमा ऊंटनी की चाल से दी जाती है। संस्कारों से टूटकर सौन्दर्य बोध नहीं पनप सकता, लेकिन संस्कारों में परिष्कार अवश्य किया जा सकता है। संस्कार-गत सौन्दर्य का उदाहरण धर्मवीर भारती की इन पंक्तियों में मिल जाएगा—'जब मैंने देखा कि किनारे से दो जल सांप छप से कूदे और मेरी भूरी छाह को पानी में सौ-सौ टुकड़ों में काटते हुए, टेढ़े-मेढ़े लहराते, तैरते हुए कमल-नाल के चारों ओर खेलने लगे, जहां मेरा छाया कण्ठ था। मैंने दोनों हाथ अपने ठण्डे, सुबह की ओस से भीगे गले पर रखे। सांप कमल-नाल को लपेट कर आपस में कुलेल कर रहे थे। मैं नहीं जानता सौन्दर्य किसे कहते हैं। यह जानता हूँ कि कुछ चीजें बांध लेती हैं। उस दिन सुबह उन सांपों ने मुझे बांध लिया था।'[2] दूसरी ओर अज्ञेय ने 'उपमान मैले पड़ गये हैं' की घोषणा करके संस्कारों में परिष्कार करने का प्रयास किया। यहीं पर सौन्दर्य-बोध की समस्या उठती है।

---

१ काठ की घंटियां सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, पृ०४१०
२ पश्यन्ती धर्मवीर भारती, पृ० ८

एक ओर संस्कारगत सौन्दर्य तथा दूसरी ओर विदेशी सौन्दर्य-बोध नयी कविता ने जिस सौन्दर्य को संस्कार से ग्रहण किया, उसका उसने, जहाँ भी उचित समझा, परिष्कार किया। यह परिष्कार यूरोप के प्रभाव के तथा अपने बदले हुए परिवेश के कारण था। इस सन्दर्भ में उदाहरण दिया जा सकता है कि नयी कविता का सौन्दर्य-बोध केवल व्यक्ति की महानता को ही नहीं, उसकी लघुता को भी स्वीकार करता है। वह ऐसी महानता का विरोध करता है, जिसमें व्यक्ति अन्दर से छोटा और बौना हो जाय, बल्कि बात टूटने में भी सुख का अनुभव करता है—

टूटने का सुख :
बहुत प्यारे बन्धनों को आज झटका लग रहा है,
टूट जायेंगे कि मुझको आज खटका लग रहा है,
आज आशाएं कभी की चूर होने जा रही हैं
और कलियां बिन खिले कुछ धूर होने जा रही हैं,
बिना इच्छा, मन बिना,
आज हर बन्धन बिना,
इस दिशा से उस दिशा तक छूटने का सुख !
टूटने का सुख।[1]

—भवानीप्रसाद मिश्र

सौन्दर्य का यथार्थ रूप मानवीय करुणा से नहीं, मानव-स्वाभिमान से प्रकट होता है और नयी कविता का सौन्दर्य-बोध मानव-स्वाभिमान, मानव-विशिष्टता तथा मानव-निष्ठा को स्वीकार करता है। साथ ही वह अस्तित्ववादी सौन्दर्य-दर्शन से भी दूर तक प्रभावित है।

नयी कविता का सौन्दर्य जड़ नहीं है, वह गतिशील है। वह स्वयं शक्ति है—जीवन के साथ जुड़ी हुई शक्ति। नयी कविता का सौन्दर्य-बोध सक्रिय भोग और साहचर्य की स्थिति है। वह कहीं भी स्वयं को इन अनिवार्यताओं से काटता नहीं। श्रीकान्त वर्मा की कविता 'दिनचर्या' एक ओर तो नए बिम्ब और प्रतीक देती है, तथा दूसरी ओर मानव-लघुता को स्वीकार करती हुई कहती है—

एक अदृश्य टाइपराइटर पर साफ सुथरे
कागज सा
चढ़ता हुआ दिन,
तेजी से छपते मकान
घर, मनुष्य

1. दूसरा सप्तक : भवानीप्रसाद मिश्र, पृ० १५ (द्वितीय संस्करण)

और पूँछ हिला कर
गली से बाहर आता
कोई कुत्ता।

कहीं पर एक स्त्री
अकस्मात् उभर
करती है प्रार्थना
हे ईश्वर! हे ईश्वर
ढले मत उमर।'[1]

इसके अतिरिक्त अज्ञेय की कविता 'मैंने कहा पेड़' तथा 'पहचान' गिरिजा कुमार माथुर की 'तूफान एक्सप्रेस की रात', उदयभानु मिश्र की 'स्मृति', विजयदेव नारायण साही की 'पितहीन ईश्वर', जगदीश चतुर्वेदी की 'शिशु का जन्म' आदि अनेक कविताओं के नाम गिनाये जा सकते हैं।

नयी कविता का बिम्ब विधान और सौन्दर्य-बोध

नयी कविता की बिम्ब-योजना पर पाश्चात्य प्रभाव बहुत दूर तक पड़ा है। टी० एस० इलियट तथा सी० डे० लुईस आदि की रचनाओं के प्रणयन से नये कवियों में जो बिम्ब बोध जागृत हुआ, वह एक ओर तो भारतीय परम्परा से जुड़ता था तथा दूसरी ओर वह पाश्चात्य परम्परा से परिमार्जित हुआ था। कौन सा बिम्ब भारतीय है और कौन सा पाश्चात्य, इनके बीच कोई सीमा रेखा खींचना न तो सम्भव प्रतीत होता है और ना ही समीचीन, लेकिन नयी कविता की बिम्ब योजना कुल मिलाकर अत्यन्त सशक्त हो गयी है। नयी कविता के सौन्दर्य-बोध के सन्दर्भ में ही कोमल कान्त पदावली तथा बिम्बों एवं प्रतीकों का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत करना अवांछित न होगा।

सौन्दर्य बोध को लेकर कोमल कान्त पदावली तथा कोमल भावों की चर्चा छायावाद तक खूब होती रही है। लेकिन नयी कविता का सौन्दर्य बोध कोमल कान्त पदावली की बात नहीं करता तथा ना ही वह केवल कोमल भावों की ही चर्चा करता है, बल्कि वह कोमलता के साथ कठोरता और गुलाब के साथ काँटों को भी स्वीकार करता है, क्योंकि वह काँटे को भी उतना ही सत्य मानता है जितना पुष्प को, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि नयी कविता का सौन्दर्य अशिव को प्रश्रय देता है, बल्कि वह अशिव को भी मानवीय सत्य के रूप में स्वीकार करता है, स्वीकार करके ही उसका परिष्कार करता है।

---

१ माया-दर्पण श्रीकान्त वर्मा, पृ० ६

नयी कविता का सौन्दर्य-बोध बिम्बों तथा प्रतीकों को भी नये स्तर प्रदान करता है। बहुत पहले घोषणा हो चुकी है कि यह उपमान मैले पड गए हैं। नए उपमानों की खोज ने नये बिम्ब उभारे, नए प्रतीक संवारे। नयी कविता का सौन्दर्य-बोध बिम्ब (Images) बनाता है और प्रतीक (Symbols) देता है। यह बिम्ब और प्रतीक यथार्थ जीवन से जुड़कर अभिव्यक्ति पाते है, इसलिए अधिक सार्थक हो उठते हैं। गिरिजाकुमार माथुर की कविता 'बरकुल चिलका झील' इसका उदाहरण दिया जा सकता है। कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य है—

'भीतर तमाशे बन्द बक्से
ढक्कन शीशों के मोखे सहसा खुल गये
धीरे-धीरे खिलौनों से घूमते दृश्य सभी
छोटे होते गये
मैं जिनका दर्शक भी हूं
और तमाशा भी।'[1]

प्रायः नयी कविता पर यह आरोप लगाया जाता है कि उसके बिम्ब खण्डित और प्रतीक बिल्कुल अपरिचित होते है। इसलिए न तो वह कोई भाव ही जगा पाते हैं तथा ना ही सौन्दर्यानुभूति। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि नयी कविता के बिम्ब खण्डित तभी लगते हैं, जब कविता के संदर्भ को पाठक समझ नही पाता। यह जान लेना आवश्यक है कि प्रतीकों की नवीनता नयी कविता की प्रयोगशीलता तथा जड़ प्रतीकों को छोड़ने की प्रक्रिया है। रामदरश मिश्र की कविता 'एक और पृष्ठ' बिम्ब बनाती हुई नए सौन्दर्य बोध को जगाती है—

प्रकाश का डूबता सरोवर
कई खण्डों में कट कर थरथराया
और डूब गया
छिपकली जैसे अन्धकार के जबड़े में
पतिंगे की तरह लाल लाल दिशाएं कांपती रहीं
फिर निगल ली गईं।[2]

नवीन सौन्दर्य को जगाने में अज्ञेय, श्रीकान्त वर्मा, इन्दु जैन, गिरिजा कुमार माथुर आदि कवियों की कविताएं अत्यन्त सशक्त है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

अलसी भरी हवाएं डोलीं
मीठी हरी मटर की फूलीं

---

१. जो बंध नहीं सका : गिरिजाकुमार माथुर, पृ० १३
२. पक गयी है धूप : रामदरश मिश्र, पृ० २८

सरसों को गहबाही डाले—
अरहर के गहरे पत्तों में,
फूल पीले लाख सितारे
झड़बेरी मे मनके फूटे
तपी मटीली धूल उडी फिर
आसमान से धूप झरी थी।[1]

—इन्दु जैन

प्रस्तुत कविता एक प्रकृति-बिम्ब उपस्थित करती है, जिसमे प्रकृति पुरुष पर या प्रकृति पुरुष पर आश्रित नही, बल्कि प्रकृति का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है।

नयी कविता म स्थूल बिम्बो की रचना न हो, ऐसा नही है, लेकिन प्राय सूक्ष्म बिम्बो की सृष्टि नयी कविता मे मिल जाती है। सूक्ष्म बिम्बो की सृष्टि इसलिए हुई है कि आज व्यक्ति का भाव-बोध भी अत्यन्त सूक्ष्म हो गया है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

पिटारी में बीन
शाम—
पीले अमलतासों की अकेली—टहनियो से छूट
झर झर
विदा बजती है।[2]

नयी कविता के सौन्दर्य की एक विशिष्टता है उसका सश्लिष्ट बिम्ब विधान। सश्लिष्ट बिम्बो को यदि सन्दर्भ से काट दिया जाए तो उनका कुछ भी अर्थ नही रह जाता तथा सदर्भ के साथ जुडकर वे बिम्ब अर्थ भी देते हैं और सौन्दर्य बोध को भी जागृत कर जाते हैं। इन्दु जैन की निम्न कविता सश्लिष्ट बिम्ब का निर्माण करती है—

गुलाबी-सी सुबह में
काटे-सा कसकता मन,
याद के दर्पण में
चोट की तरेड
मेरी बिटिया के
बादल से पैर मे चुभी
शीशे की कनी[3]

---

१ चौसठ कविताएँ इन्दु जैन, पृ० ६२
२ जन्म पर स धूमलयज, पृ० ७
३ चौसठ कविताएँ इन्दु जैन, पृ० ५८

पश्चिम में बिम्बों का विस्तृत वर्गीकरण मिलता है। नया कवि उनसे प्रभावित भी है, लेकिन वह अपनी कविता मे आए बिम्बो को वर्गीकृत करके नही देख सकता। वे एक-दूसरे के साथ ऐसे गुथे हुए आते हैं कि यह निर्णय कठिन हो जाता है कि उसे किस नाम से अभिहित किया जाए। ऐसा ही एक बिम्ब प्रयोग नारायण त्रिपाठी की निम्न कविता प्रस्तुत करती है। यदि इसे कोई नाम दिया जा सकता है तो वह है विवृत बिम्ब का, जहां कवि ने कोमल एव कठोर दोनो को एक साथ अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है—

वृक्ष ! पूछूं
किसलिए निःशब्द तुम
इतने सटे से
निर्वसन,

निश्चेष्ट,
गुरु भू-वक्ष से—
जैसे कि बर्फ ?
बर्फ ! पूछूं
किस लिए निःशब्द तुम
इतनी सटी-सी
निर्वसन
निश्चेष्ट,
दृढ़ गिरि-वक्ष से—
जैसे कि चांद ![1]

इनके अतिरिक्त नयी कविता में स्मृति-बिम्बो, नाद-बिम्बो, गति-बिम्बों, प्रतीक-बिम्बों तथा संस्कृति-बिम्बो आदि की सृष्टि भी पश्चिम का ही प्रभाव है।

नयी कविता का सौन्दर्य-बोध जीवन की सफलता को उतना महत्व नही देता जितना कि उसकी सार्थकता को। नया कवि सार्थकता की तलाश में संघर्ष करता है और यहीं पर वह मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित होता है। सामाजिक दायित्वो को झेलता है। मुक्तिबोध, नागार्जुन तथा धूमिल की अनेक कविताओं के नाम इस प्रसग में लिए जा सकते हैं।

नयी कविता का सौन्दर्य-बोध यथार्थ के कोमलपन के साथ-साथ यथार्थ के

---

१. तीसरा सप्तक : प्रयागनारायण त्रिपाठी (सं० अज्ञेय), पृ० ९-१० (तृतीय संस्करण)

खुरदुरे पन को भी स्वीकार करता है, इसलिए नयी कविता का सौन्दय बोध भी कही कही खुरदुरा हो जाता है यह खुरदुरापन मुक्तिबोध की कविताओ मे पर्याप्त मिलता है। इस खुरदुरेपन को लिए हुई नयी कविता का सौन्दयबोध नयी नयी दृष्टियो को स्वीकार करता है। वह पश्चिम स प्रभावित अवश्य है, लेकिन पश्चिम से परिचालित नही है। अन्तत वह अपने देश की मिट्टी से, देश के सस्कारो से जुडकर ही नये सौन्दय बोध की सृष्टि करता है। उसमे अपूणता भले ही हो, लेकिन विभ्रम नही है।

□

मानव-मूल्य

मानवेतर मूल्यों के सन्दर्भ में मानव-मूल्य

सामाजिक मूल्य हों या राजनीतिक, आर्थिक मूल्य हों अथवा सांस्कृतिक या दार्शनिक, सबका अन्तिम लक्ष्य है मानव। अर्थात् बिना मानव के इन मूल्यों के अस्तित्व को सहज ही नकारा जा सकता है। जिन मूल्यों की स्थापना पूर्ववर्ती अध्यायों में की जा चुकी है, उन सभी मूल्यों को अन्ततः मानव-मूल्यों में समाविष्ट किया जा सकता है। यहाँ पर सामाजिक मूल्यों और वैयक्तिक मूल्यों में विरोध का प्रश्न उठाया जा सकता है। प्रगतिवाद ने सामाजिक मूल्यों पर ही अधिक बल दिया है। तो क्या सामाजिक मूल्य वैयक्तिक मूल्यों से अधिक महत्वपूर्ण हैं? कहा जा सकता है कि व्यक्ति और समाज में कौन अधिक महत्वपूर्ण है? इसका निर्णय करना आसान नहीं है। क्योंकि समाज और मानव का महत्व सापेक्ष है। एक स्थिति में यदि समाज अधिक महत्वपूर्ण होता है, तो दूसरी स्थिति इसके विपरीत भी हो सकती है। दूसरे यदि कोई समाज मानव विकास में अवरोध उपस्थित करता है, रूढ़िग्रस्त है, अन्ध-विश्वासी है, तो मानव-कल्याण एवं वहत्तर मूल्यों की स्थापना के लिए उस समाज का तिरस्कार भी करना पड़ता है। थोड़ी और सूक्ष्मता से सोचे तो यह निष्कर्ष भी सहज ही निकाला जा सकता है कि सामाजिक मूल्यों या वैयक्तिक मूल्यों का अंतिम लक्ष्य मानव मूल्यों की स्थापना ही है। सामाजिक एवं वैयक्तिक मूल्यों का मानव मूल्यों से कोई विरोध नहीं है। दोनों को मानव-मूल्यों का ही अभिन्न अंग स्वीकार किया जा सकता है। मानव एक इकाई है—और समाज उन इकाइयों का पुंज। अतः मानव-मूल्यों का अस्तित्व समाज के साथ ही है। समाज से इतर या समाज से बिल्कुल काटकर जिन मानव-मूल्यों की बात की जाती है—वे वायवी हैं, यथार्थ से उनका दूर का भी सम्बन्ध नहीं। इस प्रकार से मानव-मूल्यों और सामाजिक मूल्यों में किसी प्रकार के विरोध को स्थापित करना भ्रम उत्पन्न करना है।

मानव-मूल्यों के सन्दर्भ में मानव कल्पना के विभिन्न आयाम

मानव-विकास की लम्बी यात्रा के पश्चात् जो मानव-मूल्य उभर सके हैं, उन पर विचार करने से पूर्व मानव-कल्पना के विभिन्न आयामों पर विचार कर लेना

आवश्यक प्रतीत होता है। इन्ही के सन्दर्भ मे ही मानव-मूल्यो को स्थापित करना अधिक समाचीन होगा तथा इन्हीं के ही सन्दर्भ मे नयी कविता का आकलन भी किया जा सकेगा।

महामानव या महापुरुष

महामानव या महापुरुष की धारणा भारत और यूनान के इतिहास मे ई० पू० से मिलती है। राम और कृष्ण की चर्चा महामानव के रूप म ही मिलती है। यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस के मत से इतिहास विधाता कोई महापुरुष ही होता है। उन्ही की धारणाओ को सुव्यवस्थित ढग स प्रस्तुत करते हुए तथा अपने मत की स्थापना करत हुए कार्लाइल ने भी यही स्वीकार किया है कि समस्त इतिहास वस्तुत महापुरुषो का ही इतिहास है। उन्होंने महामानव या महापुरुषो को छ रूपो मे देखा है। वे हैं—अवतारी देवदूत, कवि, धर्मशास्त्री, साहित्यकार या राजा। उनके मत से महामानव इनमे स किसी भी रूप मे अवतरित हो सकता है और मानव-इतिहास का नियन्ता होता है।

वैज्ञानिक क्रान्ति से पूर्व इस दर्शन के विरोध का कोई आधार नही था, लेकिन विज्ञान ने महामानव की अवधारणा को खण्डित किया और मानव मात्र के अस्तित्व की धारणा प्रबल हो उठी। यूरोप मे यह स्थिति बहुत पहले आ चुकी थी। लेकिन भारत मे ऐसी स्थिति बहुत बाद मे आ पाई। आधुनिक युग मे गांधीजी को मानव के रूप मे न देखकर महामानव के रूप म देखा गया। इससे भी पूर्व हिन्दी का आदि-कालीन और भक्तिकालीन साहित्य महामानवों के ही गीत गाता है। भक्तिकाल तो महामानव का पहला स्वरूप (अवतार) स्वीकार करता है। रीतिकालीन सामन्तीय व्यवस्था भी महामानववाद का ही एक रूप है। स्वातन्त्र्योत्तरकाल मे महामानव खण्डित हुआ और उसका स्थान ले लिया वर्गमानव ने।

वर्गमानव

छायावाद का मानव एकांगी, सूक्ष्म तथा भीरू था। प्रगतिवाद ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को आधार बनाकर वर्ग चेतना और वर्गमानव की अभिव्यक्ति को ही जीवन माना। इसी तथ्य का आकलन करते हुए श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा का कथन है कि प्रगतिवादी अपने बहुजन जीवन के बारे मे 'बहु' के सग्रहण को ही स्थापित करना श्रेयस्कर समझते हैं। व्यक्तिमानव की इकाई का महत्व उनके सामने नही है। इसी-लिए व्यक्ति की बलि वे जीवन की दुहाई देकर कर डालते हैं।"[1] प्रगतिवाद ने 'रग-भूमि' के 'सूरदास' और 'विनयकुमार' को हटाकर नयी प्रतिमा की स्थापना का प्रयास किया, लेकिन सतत प्रयासो के बावजूद वह किसी भी प्रतिमा की स्थापना मे

---

१ नयी कविता के प्रतिमान लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० १३२

असफल रहा। विनयकुमार के बाद यदि कोई नायक उभर पाया तो वह था 'शेखर' जो एक ओर बौद्धिक था और दूसरी ओर क्रांतिकारी, एक ओर घोर अहम्वादी तो दूसरी ओर वैयक्तिक चेतना का प्रतिनिधि। यही कारण है कि 'शेखर' जैसा द्विविधा-ग्रस्त नायक मानव-विशिष्टता जैसे मानव मूल्य का प्रतिनिधि हो सका। सर्वहारा वर्ग मानव और वर्ग-मूल्यों के प्रचार में प्रगतिवाद मानव मूल्यों को स्वीकार न कर सका, क्योंकि प्रगतिवातिवादियों के पास पूर्वाधारित वर्ग मूल्य थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि - 'वे अपने पूर्वाधारित वर्ग-मूल्यों को बिना देश, काल और ऐतिहासिक सन्दर्भ के स्थापित करने लगे और इस शृंखला में उन्होंने साहित्यिक मूल्यों को भी विकृत करना आरम्भ कर दिया। वे यह भूल गए कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का विशेष गुण यह है कि वह किसी वस्तु को उसके ऐतिहासिक सन्दर्भ में देखने का एक विशेष आग्रह करता है। उसमें कम से कम यह प्रयास है कि वह किसी भी विशेष प्रवृत्ति को उसका उचित दाय दे। किन्तु प्रगतिवाद ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का यह अंश रूढ़ि के रूप में स्वीकार किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि सामाजिक यथार्थवाद की दृष्टि से भी जो मूल्य मानव-मूल्यों के तत्वों से ओतप्रोत थे, उनका बहिष्कार करना आरम्भ कर दिया।'[1]

ऊर्ध्व मानव या स्वर्णमानव

श्री सुमित्रानन्दन पंत ने अपनी रचनाओं 'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि', 'स्वर्ण-ज्वाल' तथा 'लोकायतन' में जिस महामानव, ऊर्ध्वमानव या स्वर्णमानव की स्थापना की है, वह सीधे रूप से अरविन्द दर्शन से प्रभावित है। अरविन्द ने 'ब्रह्मसत्य, जगत मिथ्या' के सिद्धान्त को गलत कहकर ब्रह्म तथा जगत् दोनों को ही सत्य माना तथा विकासवादी दर्शन के सूत्र को लेकर उन्होंने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि मानव का विकास अवरुद्ध नहीं हो सकता। मानव, अधिमानव तथा महामानव या ऊर्ध्व-मानव की कल्पना करते हुए उन्होंने अधिमानव को बीच की कड़ी माना और भविष्य में अवतरित होने वाले ऊर्ध्वमानव की स्वर्णिम कल्पना की।

यह कहना आकर्षक लेकिन वायवी है। नयी कविता ने जिस मानव और जिन मानव मूल्यों को रूपायित किया, वे ठोस यथार्थ में पनपे हैं, इसलिए स्वर्णमानव की चकाचौंध को नयी कविता स्वीकार नहीं कर पायी, क्योंकि नयी कविता के लिए उसका समकालीन मानव अपनी अपनी सम्पूर्ण विसंगतियों, विपद्रू-ताओं और कमियों के साथ ही सत्य है, यथार्थ है। नयी कविता इस यथार्थ से आँख फेरकर वायवी लोक में विचरण नहीं करती, बल्कि वह मानव को ही मानव-भविष्य और मानव निर्णय का नियन्ता मानती है—

नियति नहीं है, पूर्व निर्धारित—

---

1. नयी कविता के प्रतिमान : लक्ष्मीकांत वर्मा, पृ० ५३८

उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता मिटाता है।[1]

अतिमानव (सुपरमैन)[2]

इधर भारत मे अरविन्द ने ऊर्ध्वमानव की रोमांटिक कल्पना की, तो उधर यूरोप मे नीत्शे ने वर्ग-मानव के विरोध मे तथा ऊर्ध्वमानव से भिन्न अतिमानव (सुपरमैन) का दर्शन किया। उसकी दृष्टि मे सम्पूर्ण मानव जाति का सुधार या विकास सम्भव नहीं है क्योंकि मानव जाति एक अमूर्तता है, इसलिए वह अतिमानव को अंतिम लक्ष्य मानता है।[3]

नीत्शे के दर्शन की चर्चा करते हुए विल ड्यूरा ने लिखा है कि पहले तो नीत्शे को लगा कि वह एक नई जाति या वर्ग की उत्पत्ति कर रहा है लेकिन बाद में उसने विकासवाद के प्राकृतिक चुनाव के जोखिम को न मानकर सावधानी से किए गए पोषण पर बल दिया और मानव जाति मे विशाल स्तर पर सामान्य योग्यता के स्तर से ऊपर उठते हुए श्रेष्ठतर व्यक्ति की चर्चा की और उसे सुपरमैन कहा।[4] नीत्शे के दर्शन के अनुसार सुपरमैन ही सम्पूर्ण मानव जाति का भाग्य विधाता और इतिहास का निर्माण करने वाला हो सकता है। सुपरमैन की विशिष्टता की चर्चा करते हुए कहा है कि खतरे और संघर्ष के प्रति प्रेम उसकी विशिष्टता होगी, लेकिन

---

१ अन्धायुग, धर्मवीर भारती, पृ० २४ (द्वितीय सं०)

२ कुछ लोग 'सुपरमैन' का अनुवाद 'महामानव' करते हैं लेकिन यह अनुवाद अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता, क्योंकि 'महा' शब्द अंग्रेजी के 'ग्रेट' (Great) का रूपान्तर और 'सुपर' का अर्थ 'महान्' नहीं हो सकता। इसलिए 'सुपर' का अनुवाद 'अति' ही अधिक उपयुक्त लगता है डा० कामिल बुल्के ने अपने शब्दकोश में सुपरमन का अनुवाद 'अति-मानव' ही किया है।

3 "Not mankind but superman is the goal" 'The very last thing a sensible man would undertake would be to improve mankind mankind does not improve, it does not exit, it is an abstraction, all that exists is a vast ant hill of individuals "
—The Story of Philosophy, by will Durant, page 424 (20 th Edition)

4 "At first Nietzsche spoke as if his hope were for the production of a new species, later ha came to think of his superman as the superior individual rising precariously out of the mire of mass *mediocrity*, and owing his existence more to deleberate breeding and careful nurture then to the hazards of natural selection "
—The Story of Philosophy, by Will Durant, p 425 (20th dition)

उस खतरे और संघर्ष का कोई उद्देश्य अवश्य होना चाहिए।[1] शक्ति, प्रतिभा और गौरव सुपरमैन के तीन अनिवार्य गुण हैं।[2]

सुपरमैन की विशद चर्चा करते हुए नीत्शे ने आज के मनुष्य को निरर्थक माना। उसकी दृष्टि में मूल्यों का उद्‌गम-स्रोत वर्तमान मानव नही है। 'वह तो केवल पिछली जीव सृष्टि और आगे आने वाले एक महामनव (सुपरमैन) के बीच की एक कड़ी है, सेतु है, उसका हित-अहित, या उचित-अनुचित का मापदण्ड वह नही है, बल्कि उसका वास्तविक मापदण्ड भविष्य में आने वाला महामानव है।"[3] इस तथ्य से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नीत्शे का दर्शन वर्तमान मानव के मानवीय गौरव और उसके वैशिष्ट्य का विरोधी है। नीत्शे प्रजातन्त्र का उपहास करके सामान्य मानव के अस्तित्व और उसके 'पोटेन्शल' की उपेक्षा करता है। छायावाद ने इसी प्रकार के महामानव को अपना आदर्श माना था, लेकिन नयी कविता का यहाँ पर विरोध है।

नीत्शे जहाँ वर्तमान मानव के मानवीय गौरव और मानव-विशिष्टता की उपेक्षा करता है, वहां नयी कविता इसे स्वीकार करती है। नयी कविता में जिन मानव-मूल्यों को अभिव्यक्ति मिली है, उसमें 'सुपरमैन' का स्थान नही है। नई कविता जहाँ भी मानवीय गौरव या मानव विशिष्टता पर व्यंग करती है, तो उसके पीछे 'सुपरमैन' की स्थापना का प्रयास नही, बल्कि मानवीय गौरव पर होने वाले आघातों से उत्पन्न अकुलाहट होती है, आक्रोश होता है।

'सुपरमैन' का दर्शन अहंकारग्रस्त है, जब कि नयी कविता में अहंकार नहीं 'अहं' है और वह 'अहं' भी मानव-कल्याण के लिए विसर्जित होने की कामना रखता है। नयी कविता का मानव न वर्ग मानव है, न ऊर्ध्व, न सुपर बल्कि वह सिर्फ मानव है। अपनी विशिष्टताओं को लिए हुए

'सुपरमैन' भीड़ का विरोध करता है, नयी कविता भी भीड़ को स्वीकार नही करती। लेकिन दोनों में अन्तर है। नीत्शे भीड़ को इसलिए स्वीकार नहीं कर पाता कि सुपरमैन भीड़ नही हो सकता, वह भीड़ से ऊपर, भीड़ का नेता होगा, जबकि नया कवि भीड़ के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी भीड़ नही हो सकता। वह भीड़ में शामिल प्रत्येक व्यक्ति का अपना अस्तित्व मानता है। वह उनके वैशिष्ट्य

---

1. The dominant mark of superman will be love of danger and strife, provided they have a purpose.
2. ' Energy, intellect and pride—these make the superman."
—The Story of Philosophy, by Will Durant, page 427 (20th Edition)

३. मानवमूल्य और साहित्य :धर्मवीर भारती, पृ० २४

को खो देना नहीं चाहता। 'वह लोगो के बीच से एक यात्रा' करता है। उसे लोगो के साथ-साथ अपने होने का बोध भी है।'[1] इस भाव की अभिव्यक्ति प्राय सभी नए कवियो मे मिल जाती है।

लघुमानव

सम्भवत नीत्शे के अतिमानव के विरोध मे या उससे प्रेरित होकर श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने लघुमानव की कल्पना की है। अपने लेख 'मानव विशिष्टता और आत्मविश्वास के आधार' मे उन्होंने 'सुपरमैन' के सन्दर्भ मे लघु मानव की चर्चा भी की है, दूसरे लेख मानवमूल्यो के सन्दर्भ मे वे अरविन्द दर्शन के महामानव के विरोध में भी लघु-मानव की ही स्थापना करना चाहते हैं। इनके शब्दों मे लघु मानव एक संज्ञा है, 'जिसे समस्त व्यापक मानवात्मा का लघुतम आत्मबोध कहा जा सकता है।'[2] सुमित्रानंदन पंत द्वारा स्थापित महामानव का विरोध करते हुए तथा साहित्य के खोखले ऐतिहासिक उपक्रम को नकार कर 'लघुमानव' की अवधारणा की पृष्ठभूमि की चर्चा करते हुए लक्ष्मीकान्त वर्मा ने लिखा है—'मानव सत्य के रूप मे हमें मिला था जिसमे एक ओर प्रगतिवाद का खोखला समाजवादी यथार्थ अपना शोर मचा रहा, था, और दूसरी ओर 'स्वर्णकलश,' 'स्वर्णधूलि' और 'स्वर्ण-ज्वाल' के ताने बाने मे नपुंसक 'महामानव' अवतरित किया जा रहा था। हमारी जिज्ञासा थी कि इसमें हम कहा है, हमारा अस्तित्व कहा है, व्यक्ति कहाँ है, व्यक्ति की अनुभूति कहा है, आत्मदृष्टि कहा है और उस आत्मदृष्टि के लिए क्या यह आवश्यक है कि वह भीड के साथ चले।'[3] लघुमानव की व्याख्या करते हुए वर्मा जी का कहना है—'लघुमानव प्रत्येक क्षण के यथार्थ को जागरूक चेता प्राणी के रूप मे पूर्ण रूप से भोगता है। वह स्वप्न विगलित आम्र-मंजरियो पर कल्पित कोयल की कूक के प्रति द्रवित नहीं होता, तो इसके लिए वह दोषी नहीं ठहराया जा सकता। वह जो जीता है, जो भोगता है, जो क्षण-क्षण उसके व्यक्तित्व मे परिव्याप्त है, उसी को अभिव्यक्ति देता है।'[4]

लघु-मानव पर नामवरसिंह तथा जगदीश गुप्त आदि कतिपय आलोचकों ने प्रश्नचिन्ह लगाए हैं? नामवरसिंह ने उसे 'छोटा-आदमी' कहा तो जगदीश गुप्त ने लघुता को मानव स्वाभिमान जैसे मानव मूल्य का विरोधी कहा। इस खण्डन का उत्तर देते हुए श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा ने कहा कि—'यह लघुता लघुतम का 'पोटेन्शल' है, हीनता का नहीं, क्योंकि यह युग बिना लघुता को 'पोटेन्शल' को

---

१ द्रष्टव्य, नयी कविता अक ५ ६ अशोक वाजपेयी की कविता 'लोगो के बीच एक यात्रा', पृ० २२२ २२५

२ नये प्रतिमान पुराने निकष लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ६३

३ वही, पृ० ६३

४ वही, पृ० ६६

सार्थकता के आगे नही बढ़ सकता।"[1] उनके मत से यही लघुता वह अंश है जो हर विनाश और झंझावात के बाद भी बचा रहता है तथा पुनर्निर्माण और पुनःसृजन करता है।

लघु-मानव पर आक्षेप लगाए गये कि वह जिस मनुष्य का बिम्ब देता है, वह कुण्ठित, सन्त्रस्त, आत्मकेन्द्रित तथा थका हारा और टूटा हुआ आदमी है। पूनम दईया के अनुसार लघुमानववाद ने मनुष्य को 'संघर्ष करने की बजाय कुण्ठित बना···हीन बना दिया।[2] लेकिन लक्ष्मीकान्त वर्मा ने लघुता को हीनता या कुण्ठा न मानकर 'लघुतम का 'पोटेन्शल' माना है। एक लघु अस्तित्व की सार्थक माँग में उन्होंने कहा है—

मैं अपना मैं नहीं
किसी महान् का उच्छिष्ट मैं नही
किसी सम्भाव्य की अनुक्रमणिका नहीं
किसी समाप्ति का समापन चिन्ह नहीं
मै हूं अपने ही लघु अस्तित्व में जन्मा
व्यापक परिवेश का साक्षी और साक्ष्य
प्रज्ञ
विज्ञ
आत्मस्थित
क्रियाशील
यथार्थवादी
निश्शंक
प्रबुद्ध
मेरी लघुता है परमाणुवादी सार्थकता
क्योंकि
मैं अपना मैं नहीं
मैं तुम्हारा तुम सब का हूं
आत्मस्थित
क्रियाशील।[3]

मानव-मूल्यों के सन्दर्भ में लघुमानव की परिकल्पना आत्मविश्वास, मानव स्वाभिमान और मानव-विवेक को स्वीकार करके चलती है। इन्ही वस्तु-सत्यों को अ

---

१. नये प्रतिमान पुराने निकष : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ८६
२. वातायन, अक्तूबर '६६ : पूनम दईया, पृ० ५८
३. अतुकान्त : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ११

संकेत करते हुए श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा का कहना है—'निजी की लघु से लघु संवेदना पृथक् भग्न ही हो, उस भीड की सम्वेदना नही है। जो भीड की सम्वेदना नही है, विवेक और आत्मसाक्षात्कार पर आधारित सम्वेदना है, वह चाहे जितनी नगण्य हो, चाहे जितनी अवहेलना के योग्य हो, इस समूहवाद से अधिक मूल्यवान है, जो केवल यन्त्र द्वारा हमारी इन्द्रियो को चालित करके अपना मन्तव्य तो सिद्ध कर लेता है, किन्तु जो भीड की हर इकाई को खोखला, रिक्त, ठूठ बनाकर छोड देता है।"[1] इसलिए नया कवि भीड द्वारा लगाए गए नारो या किए गए कार्यों पर प्रश्न-चिन्ह लगाता है और पूछता है कि यह सब किन मूल्यो की रक्षा के लिए हो रहा है—

> कहीं से
> एक नारा उछलता है
> और भीड जुड जाती है
> पत्थर फेंकने लगती है।
> दूसरी तरफ से
> आती है एक और भीड
> (कुछ ज्यादा अनुशासित)
> जो अफसर के आदेशो पर
> लाठियाँ चलाने लगती है।
> स्वाधीन देश का आत्मीय समाज
> भीडो मे बट गया है।
> नारे उछालने वाले चुपचाप चले गये है
> समझौता करने।
> आदेश देने वाले
> जीपकार मे बठे है सुरक्षित।
> अरक्षित भीड
> टकरा रही है गधो की तरह
> जाने किन मूल्यों की रक्षा के लिए ?[2]

सहज मानव

मानव मूल्यो के सदर्भ म 'लघुता' को मानव मूल्य स्वीकार न करने वाला मे से जगदीश गुप्त अग्रणी हैं। उनके मत मे, 'मानव कहने से मनुष्य के प्रति जो

---

१ नये प्रतिमान पुराने निकष लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ६४

२ 'अ' से अनुपस्थित दिनकर सोनवलकर, पृ० ५०

सार्थकता का भाव उत्पन्न होता है, 'लघु' विशेषण जोड़ने से उसका निषेध हो जाता है।'[1] उनका यही प्रमुख तर्क है जिसके आधार पर लघुता को वह मानव-मूल्य मानने के लिए तैयार नही। उन्ही के शब्दों मे—'सबसे प्रमुख कारण लघुता को मूल्य न मानने का यह है कि किसी अमूर्त क्षमता को 'लघु' या 'दीर्घ' की संज्ञा देना निरर्थक है। यदि Potentiality से अभिप्राय है तो उसे लघु कहना और भी अनुपयुक्त दिखाई देता है। लघुता को मूल्य मानने से बहुत सी ऐसी वस्तुओं को महत्ता मिल जाने की सम्भावना है जो वास्तव मे महत्वपूर्ण नहीं है।'[2] 'महा-मानव' तथा 'लघु-मानव' दोनों को मूल्यबोध का आधार न स्वीकार करते हुए जगदीश गुप्त ने सहज मानव की स्थापना इन शब्दों मे की है—'मूल्य बोध का आधार महामानव (सुपर-मैन) को माना जाय अथवा लघुमानव को या किसी और को, यह भी एक समस्या है। मेरी धारणा है कि मानव मूल्यों का आधार इनकी अपेक्षा 'सहज-मानव' को मानना अधिक युक्तिसंगत है। कारण यह है कि सहज मानव ही विशिष्ट स्थितियों मे उक्त विभिन्न रूपो मे लक्षित होता है। जीवन की चेतना सहज मानव मे अधिक प्रकृत रूप मे क्रियाशील होती है। विकृतियो का निराकरण करके बौद्धिक स्तर पर सहज मानव को ग्रहण करना कठिन नही है।"[3]

साहित्यिक सन्दर्भ और मानव मूल्य

इस चर्चा के बाद सहज प्रश्न यह उठता है कि मानव-मूल्य साहित्य के सौन्दर्यात्मक मूल्यों से कहाँ तक संगति रखते हैं? क्या उनमें परस्पर कोई विरोध है? साहित्य के सन्दर्भ में साहित्यिक मूल्य प्रधान है या मानव मूल्य? इन प्रश्नों के उत्तर में कहा जा सकता है कि साहित्य (कविता) का मूलाधार प्रामाणिक अनुभूति तथा अनुभव की परिपक्वता है। अनुभूति और अनुभव मिलकर ही साहित्य के सुन्दर एवं शिव को गढ़ते हैं। इनका सश्लेषण ही काव्य को गरिमा प्रदान करता है। अतः साहित्यिक मूल्यों (सौन्दर्यात्मक मूल्य) और मानव मूल्य (साहित्य का शिव पक्ष) में परस्पर विरोध नहीं हो सकता। जो मूल्य सम्वेदनशील व्यक्तित्व में संश्लिष्ट होकर अभिव्यक्ति पाते हैं, उनमें विरोध कैसा।

मूल्यों की प्रधानता के झण्डे उठाना विभ्रम पैदा करना है, क्योंकि साहित्यिक मूल्य और मानव मूल्य तत्वतः एक ही हैं, इसलिए उनके साथ 'प्रधान' या 'गौण' विशेषण नही लगाए जा सकते। इस सन्दर्भ मे जगदीश गुप्त का कथन द्रष्टव्य है—'एक मानव-मूल्य को ऊपर से ओढकर यदि कलाकार अपनी कृति को प्रभावपूर्ण बनाने की चेष्टा करता है, तो प्रकारान्तर से दूसरे मानव-मूल्य का निषेध करता है।

१. लहर, सितम्बर '६० : जगदीश गुप्त, पृ० ४०
२. वही, पृ० ४०
३. वही, पृ० ३९-४०

कला जगत का यह एक विचित्र 'पेराडाक्स' है। अतएव मानव-मूल्यो की स्थापना साहित्यकार से इस बात की अपेक्षा रखती है कि वह साहित्यिक मूल्यो को उतना ही समादर प्रदान करे जितना मानव-मूल्यो का, क्योकि तत्वत दोनो एक ही हैं।"[1] इस सम्बन्ध मे हेनरी आसवान टेलर के मत से भी मानव मूल्यो तथा कलात्मक मूल्यो मे कोई विरोध नही है। उनके मत म, 'किसी भी कविता या चित्र से जो आनन्द या सन्तोष प्राप्त होता है, उसम मानव मूल्य निहित ही रहता है।'[2] इस सम्बन्ध मे नयी कविता पर एक विहगम दृष्टि डाल ली जाय तो निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नयी कविता ने साहित्यक मूल्यो तथा मानव-मूल्यो—दोनो के दायित्व का निर्वाह किया है। मानव मूल्य व्यक्ति के शिव की रक्षा करते है तथा साहित्यिक मूल्य सौन्दर्य के, आनन्द के द्योतक हैं। कहा जा चुका है कि साहित्यिक मूल्यों और मानव-मूल्यो मे कोई विरोध नही है, दोनो तत्वत एक ही हैं। नयी कविता शिवत्व बोध मानव मूल्य तथा सौन्दर्य-बोध (साहित्यिक मूल्य) दोनो को सश्लिष्ट रूप से उपस्थित करती है। 'कनुप्रिया', 'सशय की एक रात', 'आत्मजयी' और 'अन्धायुग' जैसी कृतियाँ तथा 'चाद का मुह टेढा है', 'चकित है दुख', 'सूर्य का स्वागत', 'आवाजो के घेरे' तथा अज्ञेय के काव्य-सकलन आदि अन्य कविता सग्रह इस तथ्य को प्रमाणित करने म सहायक हो सकते हैं। इसी सन्दर्भ मे द्रष्टव्य है एक उदाहरण—

> ताजगी तराते निकल आये बच्चे
> सडकों पर कच्चे से पौधे उगने लगे
> गेंद सी उछलती सुबह
> प्रस्तुत हो गई उनके लिए
> दुध मुहा सा दिन समर्पित हुआ
> दुध मुहों के लिए।
> जी हुआ
> पूरी सुबह भर गोद मे
> उठा ले जाऊ कहीं
> रोप दू अमोल की तरह
> जहा हवाए शोर झेलती धूलों मे नहीं घुटती
> जहा सडक भीड ढोती

---

१ लहर, सितम्बर '६० जगदीश गुप्त, पृ० ४२

2 'The most obvious value of any poem or picture consists in the pleasure of satisfaction and stimulus it brings"

—Human Values and Varities, by Henry Osbort Taylor P 214

बूढ़ी नहीं होतीं ।'

यह कविता सुबह का सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत करती है तथा इस सुन्दर सुबह को नया कवि वहां ले जाना चाहता है जहां 'सड़कें भीड़ होती बूढ़ी नहीं होतीं', वह इन पंक्तियों में मानव विशिष्टता को स्थापित करना चाहता है। 'मानव-विशिष्टता' आधुनिक युग में उभरा हुआ एक मानव-मूल्य है। स्पष्ट है कि नयी कविता साहित्यिक मूल्यों एवं मानव-मूल्यों का संश्लिष्ट रूप ही प्रस्तुत करती है ।

मूल्य-बोध का आधार तथा मानव-मूल्य और नयी कविता

मूल्य-बोध का आधार महामानव को माना जाय या वर्ग-मानव (Collective Man) को, ऊर्ध्व मानव को माना जाय या अतिमानव (सुपरमैन) को, लघु मानव को स्वीकार किया जाय या सहज मानव को, यह एक समस्या है। द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा का मूल्य-बोध महामानव है तो प्रगतिवाद का वर्ग-मानव। डा० रामविलास शर्मा और डा० नामवरसिंह वर्ग-मानव के महत्व को ही स्वीकार करते हैं। पन्त ने ऊर्ध्व मानव को मूल्य बोध का आधार स्वीकार किया। अन्य छायावादी कवि भी उनसे सहमत प्रतीत होते हैं। निराला की दृष्टि अवश्य ही कुछ भिन्न है। बच्चन, नरेन्द्र शर्मा नीरज, नेपाली आदि वैयक्तिक गीतकारों के मूल्य-बोध का आधार नहीं बन पाया। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने मूल्य बोध का आधार लघु-मानव को जगदीश गुप्त ने सहज मानव को स्वीकार किया है। धर्मवीर भारती ने मूल्य-बोध का आधार व्यक्ति मानते हुए कहा है—'मानवीय मूल्य अन्ततोगत्वा मनुष्य के वैयक्तिक जीवन से ही पनपते हैं और उसका विकास व्यक्ति से समूह या समाज की ओर होता है।'[2] यह कहकर उन्होंने मानव-मूल्यों तथा सामाजिक मूल्यों में किसी प्रकार के विरोध का परिहार भी कर दिया है। अज्ञेय ने मूल्य-बोध के लिए मध्यम मार्ग स्वीकार करते हुए कहा है—'उसे न समष्टि में विलीन हो जाना है, न निरे स्वच्छंदतावाद में पराजित होना है, न सर्वसत्तावाद स्वीकार करना है, न सम्पूर्ण अराजकता।'[3]

इन सभी विचारकों में एक बात समान है कि सभी ने मनुष्य के साथ कोई न कोई विशेषण लगाकर देखने का प्रयास किया है। लक्ष्मीकान्त 'लघुता' की बात कह 'महत्ता' की स्थापना स्वयं ही कर देते हैं। क्योंकि कोई भी अवधारणा निरपेक्ष नहीं हो सकती। इसी प्रकार से जगदीश गुप्त 'सहज मानव' कहकर 'असहज-मानव' को, पन्त जी 'ऊर्ध्व-मानव' से 'निम्न-मानव' को तथा प्रगतिवाद

१. माध्यम, अक्तूबर '६५ : नित्यानन्द तिवारी, पृ० ५३
२. मानव-मूल्य और साहित्य : धर्मवीर भारती, पृ० ५०
३. आत्मनेपद : अज्ञेय, पृ० ११८

'वर्ग-मानव' से 'एकल-मानव' की तथा 'नीत्शे' 'सुपरमैन' से 'लोअरमैन' की स्थापना कर देते हैं।

इस समस्या का समाधान विशेषणो मे नही, मनुष्य मे है। उस मनुष्य मे, जिसने दो आणविक युद्धो के बाद जन्म लिया है, जिसने युद्धो की विभीषिका को झेला और भोगा है जिसने मानव-परतन्त्र्य से संघर्ष किया हैं। वह मनुष्य जो प्रकृति पर दूर तक अधिकार करके भी अपनी सीमाओं से मुक्त नही हो सका। जिस ने उपनिवेशवाद को समाप्त करने के लिए संघर्ष किया, उस नये मनुष्य को किसी प्रकार के विशेषण लगाकर नही समझा जा सकता। नया मनुष्य उस काल-चेतना का प्रतीक है, *जिससे नए मानव-मूल्यो का उदय हुआ है। डा० जगदीश गुप्त के शब्दो मे*, 'नया मनुष्य रूढ़िग्रस्त चेतना से मुक्त, मानव-मूल्यो के रूप मे स्वातन्त्र्य के प्रति सजग, अपने भीतर अनारोपित सामाजिक दायित्व का स्वयं अनुभव करने वाला, समाज को समस्त मानवता के हित मे परिवर्तित कर नया रूप देने के लिए कृतसंकल्प, कुटिल स्वार्थ भावना से विरत, मानव मात्र के प्रति स्वाभाविक सह-अनुभूति से युक्त, संकीर्णताओ एव कृत्रिम विभाजनो के प्रति क्षोभ का अनुभव करने वाला, हर मनुष्य को जन्मत समान मानने वाला, मानव-व्यक्तित्व को उपेक्षित, निरर्थक और नगण्य सिद्ध करने वाली किसी भी दैविक शक्ति या राजनैतिक सत्ता के आगे अनवनत, मनुष्य की अन्तरंग सद्वृत्ति के प्रति आस्थावान प्रत्येक व्यक्ति के स्वाभिमान के प्रति सजग, दृढ एव संगठित अन्तःकरण सयुक्त, सक्रिय किन्तु अपीडक सत्य निष्ठ तथा विवेक-सम्पन्न होगा ऐसे मनुष्य की प्रतिष्ठा करना ही नयी कविता का उद्देश्य है।'[1] कहा जा सकता है कि मूल्य-बोध का आधार यही नया मनुष्य है और नयी कविता का उद्देश्य भी इसी नये मनुष्य को प्रतिष्ठित करना है।

आधुनिक युग मे जिन मानव मूल्यो का उदय हुआ, वे इस प्रकार हैं—

(१) मानव-स्वातन्त्र्य,
(२) मानव स्वाभिमान,
(३) मानव-विशिष्टता,
(४) मानव विवेक,
(५) मानवनिष्ठा या मानव आस्था, तथा
(६) आत्मविश्वास।

१६वी शताब्दी म अधिनायकवाद और उपनिवेशवाद का बोलबाला था। *दास प्रथा, गोरे-कालो मे भेद तथा दलित वर्ग और शासक वर्ग थे*। विजय बहादुर सिंह न कहा है कि—'मानव-चेतना के विकास के लिए इतना ही काफी है कि उसको

---

१ नयी कविता, स्वरूप और समस्याए डा० जगदीश गुप्त, पृ० ३६

बुद्धि को ही दासता से मुक्त कर दिया जाय, तभी वह अपनी अस्मिता में विश्व को आक सकता है।'[1] लेकिन अधिनायकवाद ने ऐसा नहीं किया और भेद-पूर्ण नीतियां ही अपनायीं।

पश्चिम में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के स्वर बहुत पहले ही उठ चुके थे। Liberty, Fraternity and Equality का नारा लग चुका था। भारत में स्वतन्त्रता आंदोलन राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और फिर उसके बाद मानव-स्वातंत्र्य जैसे कैसे मानव-मूल्य का उदय हुआ। नये कवि के सम्मुख यह समस्या थी कि वह मानव-मूल्यों को प्रतिष्ठित करे। मानव-स्वातन्त्र्य को नयी कविता का विषय बनाये। उसकी दृष्टि में—'समस्या का रूप नया और जटिलतर होते हुए भी मूलतः समस्या वही है। एक स्वाधीन व्यक्तित्व का निर्माण, विकास का रक्षण।'[2] मानव-स्वातन्त्र्य मूल्य की समस्या के साथ-साथ उसके साथ जुड़े दायित्व के प्रति भी वह सजग था। भारती ने कहा—'वैयक्तिक स्वातन्त्र्य की अदम्य घोषणा का अर्थ—अराजकता, उच्छृंखलता, *निरंकुशता और दायित्वहीनता नहीं। उसके साथ दायित्व भी है।'[3] यह दायित्व* सम्पूर्ण मानव-जाति के प्रति था। मानव-स्वातन्त्र्य की रक्षा के लिए ही नया कवि शान्ति का हामी है। युद्धों और फिर शीतयुद्धों से उत्पन्न अशान्ति के प्रति नये कवि की चिन्ता राजनीतिक स्तर की न होकर शुद्ध मानवीय स्तर की है। इस सन्दर्भ में सर्वेश्वर की कविताओं—'कलाकार और सिपाही', 'सिपाहियों के गीत' तथा 'पीस-पैगोडा' का उल्लेख किया जा सकता है। इनके अतिरिक्त अज्ञेय, लक्ष्मीकांत वर्मा, जगदीश गुप्त आदि कवियों की कविताओं में मानव-स्वातंत्र्य की अदम्य लालसा की अभिव्यक्ति मिल जाती है।

नयी कविता में अभिव्यक्त दूसरा मानव-मूल्य है मानव-स्वाभिमान। मानव-स्वातन्त्र्य के साथ ही मानव स्वाभिमान (Human Dignity) को मानव-मूल्य के रूप में स्वीकार किया गया है। मानव-स्वाभिमान का अर्थ है प्रत्येक व्यक्ति के स्वाभिमान की सामाजिक अर्थों में स्वीकृति, क्योंकि—'मानव-स्वाभिमान की सार्थकता अन्य व्यक्तियों के स्वाभिमान की सामाजिक स्वीकृति में निहित है।'[4] इस संबध में श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा का कथन है कि—'मानव-स्वाभिमान की मांग है कि प्रबुद्ध चेतनाशील प्राणी बनकर जीवन को भोगने का प्रयास करे, उसके सन्दर्भ को समझने का प्रयास करे, उसके विभिन्न स्तरों में क्रियाशील होकर प्रस्तुत हो और व्यक्ति द्वारा उस मानवीय स्वाभिमान की रक्षा कर सके जिसे छायावाद-रहस्यवाद के चरणों पर झुका था तो प्रगतिवादी तथाकथित प्रगतिवाद के माध्यम से मानव-अनुभूतियों

---

१. माध्यम, सितम्बर '६८ : विजयबहादुर सिंह, पृ० २४
२. आत्मनेपद : अज्ञेय, पृ० ११४
३. मानव मूल्य और साहित्य : धर्मवीर भारती, पृ० १२७
४. लहर, सितम्बर '६० : जगदीश गुप्त, पृ० ३८-३९

को भेड़-बकरी के समान हाँकना चाहते थे।" नयी कविता मानव-स्वाभिमान की रक्षा करते हुए ही मानव अनुभूतियों को उनके परिवेश मे आँकती है, उन्हें यथार्थ से सम्पृक्त करके ही रूप प्रदान करती है। 'आत्मजयी' का नाचिकेता इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। वह 'जीवन के प्रति असम्मान नही दिखाता, क्योंकि उसके स्वभाव मे कुण्ठा या विकृति नही। बाद मे उसका जीवन को फिर से स्वीकार करना इस बात का द्योतक है कि उसका विरोध जीवन से नही, उस दृष्टिकोण से है जो जीवन को सीमित कर दे।"[2] इसी प्रकार से 'संशय की एक रात' का राम युद्ध न चाहते हुए भी स्वाभिमान की रक्षा करना चाहता है। इसलिए अन्तत स्वाभिमान की रक्षा करने के लिए वे युद्ध स्वीकार कर लेते हैं—

अनन्त सूर्यों को
एक सम्भावना की तरह
घटित हो जाने दो
अपने पारथत्व मे
सम्भव है
ओ शिला !
यह घटना ही सूर्यत्व दे जाय।[3]

मानव-स्वाभिमान के समान ही मानव विशिष्टता भी एक महत्वपूर्ण मानव-मूल्य है, जिसे नयी कविता ने स्वीकार किया। नयी कविता की दृष्टि मे प्रत्येक व्यक्ति विशिष्ट है, वह भीड नहीं है, उसकी अपनी विशिष्टताए हैं। नया कवि वर्ग-मानव को नकार कर विशिष्ट मानव को प्रतिष्ठित करता है। उसके अभावो, उसकी अच्छाइयो एव बुराइयो सहित वह विशिष्ट है। आज का मनुष्य जानता है कि 'मनुष्य ईश्वर और धर्म के रूढिबद्ध रूप से किनारा करके भी अपनी सार्थकता, मानव-मूल्यो पर दृढ आस्था रखकर तथा प्रकृति से अपने आदिम सम्पर्क-सूत्रो को सजीव बनाकर ही विशेषता प्राप्त कर सकता है।"[4] नयी कविता मानव-विशिष्टता को व्यापक रूप मे आँकती है। और यह व्यापकता स्वचेतना तथा स्वानुभूति की स्वतत्रता प्रदान करती है। इस सम्बन्ध मे लक्ष्मीकान्त वर्मा का कथन द्रष्टव्य है—'स्वानुभूति और चेतना की स्वतत्रता ही मानव विशिष्टता की व्यापकता के प्रति आस्था करने का स्वर है। क्योंकि बिना इस मत के और बिना इसके समर्थन के मानव विशिष्टता की स्वीकृति ही नहीं हो सकती। मानव-विशिष्टता किसी

---

१ नयी कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० १४५
२ आत्मजयी कुंवर नारायण (भूमिका), पृ० ८
३ संशय की एक रात नरेश मेहता, पृ० ११२
४ हिमविद्ध जगदीश गुप्त (पूर्व कथन), पृ० ६

भी मतवाद से अधिक मूल्यवान, मानव-मात्र के व्यक्तित्व की पवित्रता में विश्वास करती है।"[1]

मानव-विशिष्टता न तो 'सुपरमैन' को स्वीकार करती है तथा न ही अधिनायकवाद को। 'वर्ग-मानव' में मानव-विशिष्टता का प्रश्न ही नहीं उठता। लघु-मानव के प्रवेता लक्ष्मीकान्त वर्मा के मत 'लघु-मानव' और 'मानव-विशिष्टता' में तत्वतः कोई विरोध नहीं है। इन मतवादों से दूर हटकर कहा जा सकता है कि मानव-विशिष्टता मानव-मात्र को उसके परिवेश और यथार्थ में स्वीकार करती है। मानव-विशिष्टता व्यक्ति के 'अहं' के परिष्कृत रूप को ही स्वीकार करती है, न कि विकृत और कुण्ठाग्रस्त अहं को।

युद्ध की अवहेलना कर मानवीय सत्य की खोज आज के शंकाकुल मानव की विकट समस्या है। यही कारण है कि 'संशय की एक रात' के राम सृष्टि के विनाश को बचाकर मानव-विशिष्टता को बनाये रखना चाहते हैं। इसलिए वह अपने युद्धायुधों को जल में समर्पित कर देते हैं। युद्ध-सामग्री को नष्ट करने के पीछे आज के प्रतीक पुरुष राम के हृदय में जो पीड़ा है, उसे नरेश मेहता इस प्रकार से अभिव्यक्त करते हैं—

मैं सत्य चाहता हूं
युद्ध से नहीं
खड्ग से भी नहीं
मानव का मानव से सत्य चाहता हूं।
'मैं केवल युद्ध को बचाना चाहता रहा हूं बन्धु!
मानव में श्रेष्ठ जो विराजा है
उसको ही
हां उसको ही जगाना चाहता रहा हूं।"[2]

'आत्मजयी' का रचयिता भी मानव-विशिष्टता को जीवन की अनिवार्य शर्त मानता है—

केवल भौतिक शर्तों पर ही
जीवन कोई सान्त्वना नहीं।
वह जीना मरने से बदतर
जिसमें कोई वैशिष्ट्य नहीं—कल्पना नहीं।'[3]

---

१. नयी कविता के प्रतिमान : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० १५६
२. संशय की एक रात : नरेश मेहता, पृ० ३६
३. आत्मजयी : कुंवर नारायण, पृ० ७७

मानव विशिष्टता मे जो व्यापकता है, वह भवानी प्रसाद मिश्र, शमशेर, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती आदि कवियों मे मिलती है। 'कनुप्रिया' के कनु का नाम भी इस प्रसग मे लिया जा सकता है। मानव-विशिष्टता का प्रबल अहं और उसकी व्यापकता तथा समाजीकरण का श्रेष्ठ उदाहरण अज्ञेय हैं।

मानव-मूल्यो की शृखला मे अगली महत्वपूर्ण कडी मानव-विवेक है। 'विवेक अन्तरात्मा के सहायक तत्वो मे सम्भवत सबसे प्रमुख, सबसे विश्वसनीय है। मानवीय अर्थ के गौरव यह, है कि मनुष्य को स्वतन्त्र, सचेत, दायित्व युक्त माना जाए जो अपनी नियति अपने इतिहास का निर्माता हो सकता है। इसलिए उसके विवेक और मनोबल को सर्वोपरि और अपराजेय माना जाय।'[1] विभिन्न क्षेत्रो मे वादो, प्रतिवादो तथा अनक विचारधाराओ के कारण कही भी सम्भ्रम जो उपस्थित हुआ तो अन्तत बात मानव-विवेक पर ही छोड दी गयी। युद्धो का निर्णय या अच्छे बुरे का निर्णय तर्क से नही, मानव-विवेक से ही सम्भव है। विवेक ही *नीर क्षीर करने का सामर्थ्य प्रदान करता है तथा विवेक ही व्यक्ति के मनोभावों* को उदात्त रूप प्रदान करता है। छायावादी दृष्टि वेदना को अवश दया के रूप मे देखती है, जब कि नया कवि वेदना को मानवता के स्तर पर पहचानकर अभिव्यक्ति देता है—

> दुःख सब को माँजता है
> और
> चाहे स्वय सब को मुक्ति देना वह न जाने, किन्तु—
> जिनको माजता है
> उन्हें यह सीख देता है कि सब को मुक्त रखें।[2]

इसी प्रकार सर्वेश्वर और मुक्तिबोध यातना को सहनशीलता के रूप मे तथा रघुवीर सहाय ने व्यग के रूप मे देखा। नयी कविता ने मानव-विवेक को सर्वोपरि और अपराजेय माना है। अज्ञेय ने कहा है—

> ज्ञान अधूरा है सही विवेकी थोडे हो सो जाता है?[3]

मानव विवेक के स्वीकार ने ही मानव को मानव म आस्था तथा आत्म-विश्वास प्रदान किया। फैज अहमद 'फैज की नज्म' मुझसे पहले की मुहब्बत मेरे महबूब न माग' नए मानव-मूल्यो की ओर सकेत करती है। इसी प्रकार नया कवि *परम्परा को अवश दर्द के साथ अस्वीकार करता हुआ 'सूर्य का स्वागत' करता है।*

---

१ मानवमूल्य और साहित्य धर्मवीर भारती, पृ० २१
२ हरी घास पर क्षण भर अज्ञेय, पृ० ५५
३ इन्द्रधनु रौंदे हुए ये अज्ञेय, पृ० ५१

भविष्य में आस्थाशील होते हुए नया कवि मानव में निष्ठा रखता है। उसे ही अपने भाग्य, परिवेश या भविष्य का नियन्ता मानता है। इस प्रकार से नया कवि एक सुदृढ़, मानवीय संदर्भ की खोज करता है। नवीन संवेदनाओं एवं अनुभूतियों से एक समग्र जीवन-दृष्टि का विकास करता है। मनोहर श्याम जोशी की कविता 'निर्मल के नाम', नित्यानंद तिवारी की 'जो सहज ही उगेगा' तथा श्रीराम शर्मा की 'चक्रव्यूह' नए संदर्भों में मानव के प्रति निष्ठा अभिव्यक्त करती है। 'मानव-आस्था' में कवि की आस्था इतनी है कि वह कहता है—

आस्था न कांपे, मानव फिर मिट्टी का भी देवता हो जाता है।[1]

मानव-जीवन के प्रति आस्था की प्रतिध्वनियां श्रीकान्त वर्मा के शब्दों में कहती हैं—

समय का हृदय हमको चिर जीवित रखता है।
इसीलिए हम इतनी तेजी से दौड़ रहीं
रथ अपने मोड़ रहीं,
पथ पिछले छोड़ रहीं
परम्परा तोड़ रहीं
लौ बनकर हम युग के कुहरे को दाग रहीं
सन्नाटे में ध्वनियां बनकर हम जाग रहीं।
जीवन का तीर्थ बनी, जीवन की आस्था।[2]

बीसवीं शताब्दी के मानव में जागा 'आत्मविश्वास' भी मानव-मूल्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। जितनी ईमानदारी के साथ नया कवि अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है, वह उसके आत्मविश्वास का ही परिणाम है। शमशेर की निम्न पंक्तियां आत्मविश्वास की ही परिचायक है—

बात बोलेगी
हम नहीं
भेद खोलेगी
बात ही
सत्य का मुख।[1]

इस सम्बन्ध में लक्ष्मीकान्त वर्मा का यह कथन द्रष्टव्य है—'आदमी आज खीजता है, पकता है, टूटता है, बनता है, और इन परिस्थितियों में वह अपने और अपने से बाहर विषाक्त वातावरण से जूझता है। इस जूझने में, इस टूटने में, इस खीझने में और पकने की प्रक्रिया में निश्चय ही उसका आत्मविश्वास विकसित होता

---

१. इन्द्रधनु रौंदे हुए ये : अज्ञेय, पृ० ५१
२. नयी कविता-अंक ३ : श्रीकान्त वर्मा, पृ० ७३-७४
३. नयी कविता के प्रतिमान : लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० १५४ पर उद्धृत।

है।"[1] हरिनारायण व्यास के लिए विश्व के आदर्श की भुजाएं भी छोटी हैं इसलिए वह नये आदर्श का निर्माण चाहता है। नये आदर्श के निर्माण के पीछे आत्मविश्वास ही झलकता है। 'संशय की एक रात' में मानवीय पौरुष तथा आत्मविश्वास का प्रतिनिधित्व लक्ष्मण करते हैं। वे कहते हैं—

लंका यदि ध्रुव पर भी होती तो
भाग नहीं पाती बन्धु
लक्ष्मण के पौरुष से।"[2]

'आत्मजयी' के नचिकेता का आत्मविश्वास ही उसे सत्य की उपलब्धि की ओर अग्रसर करता है। कनुप्रिया के 'कनु' का आत्मविश्वास प्रेम को विराट इतिहास की धारा में आँकता है और राधा का आत्मविश्वास कनु को उसके सहज रूप में ही स्वीकार करना चाहता है। अन्धायुग का वृद्ध याचक प्रभु का नाम लेकर जो आशा का सन्देश देता है, वह वस्तुतः आत्मविश्वास का ही परिचायक है। कहा जा सकता है कि *आत्मविश्वास भी अन्य मानव-मूल्यों की तरह से एक नया मानव-मूल्य है*, और नयी कविता ने उसे दूर तक प्रतिष्ठित किया है।

मानव चेतना का विकास निरन्तर हो रहा है। उसे सीमाओं में बाँधना उसे अवरुद्ध करना है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के भावों को अपनी भाषा में अभिव्यक्त करते हुए सौमेन्द्रनाथ टैगोर का कहना है— सार्वभौमिकतावाद मानव चेतना का लक्ष्य है इसके विकास का मार्ग तब तक अवरुद्ध नहीं हो सकता। जब तक कि यह सम्पूर्ण विश्व को एक मंच पर ला खड़ा नहीं करती।"[3]

मानव चेतना ने चिन्तन के स्तर पर सार्वभौमिकतावाद को प्रतिष्ठित किया है लेकिन व्यावहारिक स्तर पर व्यक्ति आज भी खण्ड खण्ड होकर जीता है। एक ही व्यक्ति कई रूपों में जीता है। वह कहीं महान होता है तो कहीं लघु, कहीं सहज होता है तो कहीं असहज। कहीं वह भीड़ के साथ भीड़ हो जाता है तो कहीं उसका 'अहं' उसे विशिष्ट बना देता है—

तुम भी तो वहीं थे
भीड़ में साथ-साथ
और यहाँ भी साथ हो

१ नयी कविता के प्रतिमान लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० १५५
२ संशय की एक रात नरेश मेहता, पृ० २२
3 Universalism is of the essence of human conciousness it canno rest in its march till it has embaraced the universe "
—Rabindra Nath Tagore and Universal Humanism, by Saumyendra Nath Tagore, p 10

सागर के तल में ।[1]

भीड़ होकर भी वह अपनी विशिष्टता को खो नहीं पाता—

इतना मत भूलो—
हम तो यहां भी विशेष हैं ।
इतना ही काफी है—
एक साथ जीने में
थोड़े पल शेष हैं ।[2]

वह जीवन को सार्थकता देना चाहता है । ये सार्थकता के स्वर नयी कविता में कहीं रोष बनकर फूटे हैं तो कहीं क्षोभ बनकर ।

मानव-चेतना आज खण्डित है । इस खण्डित मानव-चेतना और खण्डित व्यक्तित्व को नयी कविता सार्थकता प्रदान करती है । परिवेश के दबाव और परिस्थितिवश व्यक्ति प्रत्येक स्थान पर एक जैसा नहीं रह सकता । यह आज के व्यक्ति की नियति है । वह इसे स्वीकार करके जीता है तथा मानव-मूल्यों के प्रति निष्ठावान है ।

नयी कविता खण्डित व्यक्तित्व के सन्दर्भ में ही मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा करती है और सार्वभौमिकता की उसकी कामना न हो, ऐसा कहना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता । नयी कविता की दृष्टि उदार, व्यापक और मानवतावादी है तथा विश्व को एक मंच पर लाने के सदसद् प्रयासों में वह भी अपना योगदान दे रही है ।

| J

1. चौसठ कविताएं : इन्दु जैन, पृ० २२
2. वही, पृ० २२

उपलब्धि और सम्भावना

मूल्य-सन्दर्भ और विभिन्न कविता आन्दोलन

दो महायुद्धो के बाद जीवन मूल्य तेजी से बदले। कविता भी उसी तेजी से बदली, क्योकि कविता ही एक ऐसी विधा है जो तेजी से बदलते हुए मूल्यो के अनुरूप बदल सकती है। शेष साहित्यिक विधाए धीरे धीरे बदलती हैं। छायावादी कविता तथा उसके बाद प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविता अपने दायित्व का निर्वाह कर चुकी थी। पाचवें दशक से भी अधिक क्षिप्र गति से परिवतन छठे तथा सातवें दशक की कविता मे हुआ।

नयी कविता प्रारम्भ में एक आन्दोलन और बाद मे एक अनिवर्यता बन गई। तेजी से उभरते हुए नए भाव-बोधो को अभिव्यक्त करना छायावाद के लिए तो दूर की बात हो गयी, प्रगतिवादी कविता भी उसका निर्वाह नही कर पायी। प्रयोगशीलता ने प्रयोगवाद नाम को जन्म दिया, जो सम्भवत प्रयोगशील कवियो को स्वीकार नही था और उन्होने प्रयोगवाद को भी 'नयी कविता' मे ही बदल देने का आग्रह किया।[1] दूसरा सप्तक मे भी अज्ञेय ने प्रयोगवाद नाम का खण्डन करते हुए कहा है—'प्रयोग का कोई वाद नही है। हम वादी नहीं रहे, नहीं हैं। न प्रयोग अपने आप मे इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह से कविता का भी कोई वाद नही है, कविता भी अपने-आप मे इष्ट या साध्य नही है। अत हमे प्रयोगवादी कहना उतना सार्थक या निरर्थक है, जतना हमें कवितावादी कहना।'[2] बाद मे प्रयोगवाद के सभी कवि नयी कविता

---

१ इस सम्बन्ध म अज्ञेय की निम्न पक्तिया द्रष्टव्य हैं—

"But it is a profound ethical concern The quest for new values and regarding examination of the basic sanctions or sources of values may be called experiment, the new movement may deserve the name Poets of this school generally prefer to call their writing new poetry"

—डा० देवेश ठाकुर की पुस्तक 'नयी कविता के सात अध्याय' के पृ० १८७ पर उद्धृत।

२ दूसरा सप्तक अज्ञेय, पृ० ६ (द्वितीय सस्करण)

के कवि कहलाए। यहां यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि कविता के संदर्भ में उभरे अन्य आन्दोलनों का औचित्य क्या था ? और बदलते मूल्यों, जीवन-परिवेश और भावबोधों के प्रति उन कविता आंदोलनों की भूमिका क्या थी तथा उन्होंने किन दायित्वों का निर्वाह किया ? इन प्रश्नों के उत्तर के लिए विभिन्न कविता-आंदोलनों पर एक विहंगम दृष्टिपात कर लेना अनुचित न होगा।

१९५४ में नयी कविता का पहला अंक प्रकाशित हुआ। इसी के समानान्तर बिहार में 'कविता' का प्रकाशन हुआ। नयी कविता तथा बदलते हुए मूल्यों को लेकर प्रकाशित होने वाली केवल यही दो पत्रिकाएं थीं, लेकिन इनके बाद तो छोटी पत्रिकाओं का तांता लग गया। हर नयी पत्रिका किसी आन्दोलन की शुरुआत होती थी। नयी कविता का प्रारम्भ एक सुदृढ़ पृष्ठभूमि को लेकर हुआ था। अन्य कविता-आन्दोलना नयी कविता के ही सन्दर्भ में कमजोर आधारों को लेकर पनपे और शीघ्र ही मरते भी गये। इन सभी कविता-आन्दोलनों को सूचीबद्ध करते हुए डा० जगदीश गुप्त ने कहा है—'यहां कविता के नये-नये नामों को सूचीबद्ध करने की चेष्टा की जा रही है। यह सूची पर्याप्त रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक लगेगी। मैं क्या, इस बात का कोई भी दावा नहीं कर सकता, कि यह सूची पूरी हो गयी है, क्योंकि यह असम्भव नहीं है कि इनके छपतेछपते, लोगों तक पहुँचते-पहुँचते दो-चार नाम वर्षा-मेंढकवत् और पैदा हो जाएं।"[1]

'नयी कविता : स्वरूप और समस्याएं' के साक्ष्य पर ही विभिन्न कविता-आंदोलनों या कविता-नामों की सूची इस प्रकार है।

'सनातन-सूर्योदयी कविता, अपरम्परावादी कविता, सीमान्तक कविता, युयुत्सावादी कविता, अस्वीकृत कविता, अकविता, सकविता, अन्यथावादी कविता, विद्रोही कविता, क्षुत्कातर कविता, कबीरपंथी कविता, समाहारात्मक कविता, उत्कविता, विकविता, अ-अकविता, अभिनव कविता, अधुनातन कविता, नूतन कविता, नाटकीय कविता, एण्टी-कविता, निर्दिशायामी कविता, लिग्वादलसोतवादी कविता, एब्सर्ड कविता, गीत-कविता, नवप्रगतिवादी कविता, साम्प्रतिक कविता, बीट कविता, ठोस कविता, (कांक्रीट कविता), कोलाज कविता, बोध कविता, मुहूर्त की कविता, द्वीपान्तर कविता, अति कविता, टटकी कविता, ताजी कविता, अगली कविता प्रतिबद्ध कविता, शुद्ध कविता, स्वस्थ कविता, नंगी कविता, गलत कविता, सही कविता, प्राप्त कविता, सहज कविता, आज कविता...'[2]

ऊपर गिनाए गए कुछ कविता-आन्दोलन तो केवल एक-दो गोष्ठियों की चर्चा के बाद मर गए और किन्हीं के घोषणा-पत्र प्रकाशित हुए तथा बाद में उनका भी दाह-संस्कार हो गया। कुछ आन्दोलन कुछ समय चले और उन्होंने नयी कविता

---

१. नयी कविता, स्वरूप और समस्याएं : डा० जगदीश गुप्त, पृ० २२०
२. वही, पृ० २२०

की 'जडता' को तोडने का प्रयास किया। एक बात जो इन सभी आन्दोलनो मे समान रूप से उभर कर आयी, वह यह कि यह सभी आदोलन नयी कविता के विरोध म चले और दूसरी बात इस सम्ब ध म यह भी कही जा सकती है कि हर आन्दोलन के पीछे कुछ चेहरे होते थे, जिन्हें कविता की अपेक्षा स्थापित होन का, चर्चित होन का का मोह अधिक होता था और ज्यो ही वे स्थापित हो जाते। उस आन्दोलन की तो मत्यु हो जाती और वे भी नयी कविता के ही कवि कहलान के अधिकारी हो जाते।

शोध की सीमाओ को देखते हुए कुछ बातें ऐसी भी है, जिन्हें अनावृत करके नही कहा जा सकता, लेकिन फिर भी कुछ आन्दोलनो का जायजा तो लिया ही जा सकता है।

सनातन सूर्योदयी कविता

सनातन सूर्योदयी कविता का प्रारम्भ 'भारती' सन '६२ के माच अक मे होता है जिसमे वीरेन्द्रकुमार जैन ने नई कविता के 'उच्छृखल अहवाद' के विरोध म स्वर उठाते हुए सनातन सूर्योदयी कविता को 'अल्प से महन मे ले जाने वाली, अध-कार से प्रकाश मे ले जाने वाली मृत्यु से अमृत मे ले जाने वाली और सीमा मे असीम को उतार लाने वाली' कविता कहकर स्थापित करन का 'प्रयास' किया।[1] दो वर्षों बाद ही डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ने सनातन सूर्योदयी कविता को सुमित्रानन्दन पन्त की अध्यात्मवादी कविता के साथ जोड दिया।[1] और उसके बाद सन '६५ मे भारती' के ही फरवरी अक मे धूमिल ने इसे 'नूतन कविता' कहना अधिक उपयुक्त समझा। उन्ही के शब्दो म 'लोक-कल्याण के लिए सामुदायिक स्तर पर नीलकण्ठ बन जिस दिन हमारा कवि सूर्योदय रेखा मे अ धकार की परतो को चीरता हुआ अग्नित्राण सा उदित होगा, उसी मगल प्रभात मे वतमान के अश्रुजल से नयी कविता की कालिमा धुलेगी। इतिहास स्वण प खो पर उडगा और नयी कविता होगी पुनर्जीवित 'नूतन कविता।'[1]

इस आन्दोलन का इतिहास इतना ही है। उपलब्धि के नाम पर कुछ घोषणा पत्र और कुछ कविताए। बदलते हुए मूल्य-सन्दभ की पहचान की अपेक्षा स्थापित होने का ही मोह अधिक था। धूमिल ने नयी कविता की प्रगतिशील धारा मे अपना स्थान बनाया है। आन्दोलन से हटकर उनकी कविताओ का मूल्याकन अवश्य ही सम्भावनाओ को जन्म देता है।

---

१ द्रष्टव्य–'भारती', मार्च ६२ यानी 'होली रगोत्सव विशेषाक।'
'भारती', जनवरी ६४ डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का लेख 'नयी कविता में चित्रित मानव'।
भारती, फरवरी '६५ मे धूमिल का लेख 'नयी कविता और उसके बाद।'

सके। उनके पास कोई मौलिक दृष्टि नही है, इसलिए अकविता के नाम पर या तो कविता छापते हैं या घटिया कविता।[1]

अकविता आन्दोलन एक विकृत, उच्छृखल, अर्थहीन-सन्दभ-च्युत तथा जघन्य शब्द स्फोट था, जिसके पीछे चर्चित होने की, स्थापित होने की स्पृहा काम कर रही थी और जैसे ही अकविता के 'अ-कवि' स्थापित हुए, अकविता-आन्दोलन बिना किसी देन के मर गया।

अभिनव काव्य

अभिनव कविता का सूत्रपात दिल्ली-चण्डीगढ मे हुआ। 'अभिव्यक्ति-१' मे अभिनव की रूपरेखा को स्पष्ट करते हुए उसे कविता की तमाम रूढियों से अलगाने का प्रयास किया गया है। जगदीश चतुर्वेदी के शब्दो में अभिनव काव्य के कवियो मे 'अतीत के प्रति ऐन्द्रजालिक सम्मोहन की रोमाण्टिक दुर्बलता नही पायी जाती। वे सब अपनी पूरी तल्लीनता के साथ भोगे क्षणो को एक तटस्थ अन्वेषक की तरह अभिव्यक्ति देते हैं। उनकी भाषा, प्रतीक-योजना, बिम्ब विधान, सभी उनके पूर्ववर्ती (या बहुत से समकालीन) कवियो से नितान्त भिन्न हैं। जीवन की एकाग्रता, विसगति तथा कचोट को अपने बौद्धिक स्तर पर उसने लिया है और उसे सप्राण अभिव्यक्ति प्रदान की हैं। उनके कृतित्व की यह सचेतनता ही उन्हे अत्याधुनिक दृष्टि से सम्पृक्त करती है और काव्य की पुरातन परम्परा से पृथक उनकी उपलब्धि का हम 'अभिनव काव्य की सज्ञा दे सकते हैं।'[2] गगाप्रसाद विमल के मत से अभिनव कविताए' नयी वस्तु-चेतना की तथा नये माध्यम की सजीव उदाहरण हैं।'[3] यह नयी वस्तु चेतना क्या थी, इसका कोई भी स्पष्ट रूप अभिनव काव्य नही उभार पाया। अभिनव काव्य के नाम पर लिखी गयी कविताए गगाप्रसाद विमल की 'यातना', दूधनाथ सिंह की 'खून उगलते फव्वारों के बीच', तथा 'धरती का एक नया गीत', प्रयाग शुक्ल की यात्राए तथा श्रीकान्त वर्मा की 'लोक-पर्व' और 'पटकथा' नयी कविता से न तो वस्तु चेतना मे भिन्न हैं और ना ही शिल्प मे। तब सम्पूर्ण मूल्य-प्रसग मे इस आन्दोलन का औचित्य क्या था ? स्थापित होने के मोह मे भण्डे उठाने के अतिरिक्त इसका कोई और उत्तर नही प्रतीत होता।

बीट कविता

बीट कविता की शुरुआत का श्रेय प्रभाकर माचवे न स्वय लेते हुए बीट कविता आन्दोलन की रूपरेखा इन शब्दो मे स्पष्ट की है, 'हिन्दी मे कई शब्द पहली बार

---

१ द्रष्टव्य धर्मयुग, ४ दिम्बर १९६९

२ अभिव्यक्ति–१ जगदीश चतुर्वेदी (स० ग० प्र० विमल, रमेश कुन्तल मेघ), पृ० १०८ १०९

३ अभिव्यक्ति–१ गगाप्रसाद विमल, पृ० १४

प्रयुक्त करने का श्रेय मुझे है…अमेरिका में सेन-फ्रान्सिस्को के बीच एरिया में और न्यूयार्क में मेरा सम्पर्क 'बीट' कवियों, चित्रकारों, आलोचकों, शिल्पकारों से हुआ।… वहाँ अति लक्ष्मी, अति विज्ञान, अति विलास, अति-यौन-स्वातन्त्र्य से एक तरह की ऊब है, क्लान्ति है, जैसे चूहेदानी में विवश चूहे हों—वैसे मनुष्य-रेट रेस। उसके विरुद्ध उनका आक्रोश है।"[1] इस कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत में न तो अभी अतिलक्ष्मी है, न अति विज्ञान, न अति विलास और न ही अति-यौन-स्वातन्त्र्य। फिर इस प्रकार की कविता की अनुभूति यहा के कवियो को कैसे हो सकती है।

इसी पीढ़ी को 'हंग्री जेनरेशन : भूखी पीढ़ी'[2] के नाम से जाना गया। धर्मवीर भारती ने अपने लेख 'तलाश ईश्वर की वजरिए अफीम' मे बीट कविता के 'ग्लैमर' और 'क्रेज' की शव-परीक्षा करते हुए कहा—'कैसी व्यंग्यात्मक परिणति है, वे अपना विद्रोह शुरू करते है एक ऐसी दुनिया के खिलाफ जहा बुद्धि और विवेक झूठा पड गया है, जहा झूठे मुखौटे और पाखण्डी मूल्य है और अन्त मे आश्रय पाते है एक ऐसी दुनिया मे जो अफीम या मारिजुआना या एल० एस० डी० द्वारा उनके लिए कल्पना मे निर्मित कर दी गयी है।'[3] उनमे 'न प्रतिभा है, न सच्ची सृजनात्मकता, न अदम्य विद्रोह, न पराजय की पीड़ा।'[4] इसीलिए झूठे मुखौटों से लड़ाई शुरू करने वाला यह आन्दोलन स्वयं एक मुखौटा बन गया। श्याम परमार ने बीटनिक कवियो को 'विण्ड बाक' कहा।[5] डा० कुमार विमल के मत से 'बीट जेनरेशन के पास सही अर्थ मे आध्यात्मिक और अभौतिक मूल्यों एवं सत्यों के अन्वेषण की कोई भूख नही है।[6] डा० रमानाथ त्रिपाठी ने बीट कविता पर 'भूखी पीढ़ी' लेख के अन्तर्गत कहा—"वासना के प्रबल आवेग के समय नारी-अंगो के साथ जो उखाड़-पछाड़ करने की तीव्र, असह्य एव कष्टदायक तीव्र लालसा जागती है उसी का सत्य (ट्रू) वर्णन अधिकांशत: भूखी कविता का सत्यवाद रह गया है…जीवन-मूल्यों का निर्धारण क्या आचारहीन इन विक्षिप्तो के द्वारा होगा!"[7]

बीट-कविता और भूखी पीढ़ी के दर्शन को यदि मानव-समाज स्वीकार कर ले तो परिणाम सिवाय अराजकता के और कुछ नही हो सकता। मूल्यो को बदलने

---

१. अभिव्यक्ति-१ : प्रभाकर माचवे 'डा० ग० प्र० विमल, रमेश कुन्तल मेघ', पृ० १३६
२. द्रष्टव्य-लहर, भारतीय काव्यांक '१९६४' मे राजकमल चौधरी का लेख 'हंग्री जेनरेशन : भूखी पीढ़ी।'
३. पश्यन्ती धर्मवीर : भारती, पृ० १७०
४. वही, पृ० १७१
५. द्रष्टव्य नमिधा, अगस्त १९६५ मे श्याम परमार का लेख 'बीमार, बुभुक्षित, हिंसाकुंठा।'
६. माध्यम, जनवरी '६६ मे डा० कुमार विमल का लेख 'बीट जेनरेशन'।
७. वातायन, मार्च ६६, डा० रमानाथ त्रिपाठी, पृ० ४०-४१

के नाम पर केवल यौन-स्वातन्त्र्य की अदम्य लालसा मानव मूल्यों को प्रतिष्ठित नही कर सकती।

इन आन्दोलनो के अतिरिक्त कुछ और काव्य आन्दोलन भी नयी कविता के साथ साथ उभरे। गीत कविता नवगीत, अगीत और एण्ठीगीत को आदिम कविता के साथ जोडने का प्रयास किया गया और गीत की प्रचलित धारणा को बदलने पर बल दिया गया।[1] ओम प्रभाकर ने नवगीत को 'भारतीय कविता' के रूप मे देखने पर बल दिया।[2] वीर सक्सेना ने नवगीत को रूमानियत से लगा कर देखा।[3]

युयुत्सावादी कविता ने घोषणा की, 'आवश्यकता है गलता हाथो की पकड से यान्त्रिकता को मुक्त कराने के लिए सन्तुलित विद्रोह की। विद्रोह जो एक विचार-धारा के व्यक्तियो द्वारा चिन्तन के स्तर पर हो।'[4] युयुत्सावाद का प्रवर्तन करते हुए शलभ श्री रामसिंह ने कहा—'आज कही भी समवेत नही है—नही रहा। केवल युयुत्सव है। और वह तथ्य है—प्रत्यक्षत एक प्रिय तथ्य।'[5] इन कवियो की दृष्टि मे युयुत्सा एक 'सनातन' वृत्ति है, एक 'आदिम स्वभाव' है।

निर्दिशायामी कविता की आधारशिला 'आधुनिकता की निर्दिशायामी दृष्टि' है। लक्ष्मीकान्त वर्मा ने ताजी कविता (फ्रेश पोएट्री) की स्थापना 'ताजी कविता कुछ जोड बाकी' लेख को पढकर किया तथा काव्यानुभूति की पहली शर्त उसकी रागात्मकता माना।[6]

अस्वीकृत कविता की बात करने वालो में श्रीराम शुक्ल प्रमुख है। उनकी दृष्टि मे कवि कविता नही लिखते, बल्कि कविता का धन्धा खडा करते हैं और उन्होने एक अस्वीकृत कविता लिखी 'मरी हुई औरत के साथ सम्भोग।'[7] अस्वीकृत कविता 'शाटमूड' की कविता है और मुद्राराक्षस के मत से अस्वीकृत कविता का कवि पाठको के लिए नही लिखता, क्योकि पाठक-वर्ग मूर्ख होता है।[8]

'आज की कविता' अर्थ की लेन-देन की समाप्ति के साथ व्यक्ति सम्बन्धो मे आते हुए खालीपन को भरना चाहती है। नवप्रगतिशील कविता 'उत्पीडन के विरुद्ध विद्रोह की कविता है। इसके साथ ही 'भावी कविता', 'अगली कविता', तथा 'सहज

---

१ द्रष्टव्य–साप्ताहिक हिन्दुस्तान अक ३७, सन् १९६७, पृ० ४ राजकुमार
२ लहर–कविताक '६७, 'उत्तरार्द्ध' में ओमप्रभाकर का लेख 'सवाल नवगीत का'।
३ लहर–कविताक, '६८, 'उत्तरार्द्ध' मे वीर सक्सेना का लेख 'नवगीत, समानान्तर स्थापना और उभरे प्रश्न चिह्न।
४ युयुत्सा, अक्तुबर '६६ सम्पादकीयवत्।
५ वही, दिसम्बर ६६, शलभ श्रीराम सिंह, पृ० ९०
६ क ख, ग, अक १३ लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ० ५०
७ द्रष्टव्य–उत्कर्ष, जुलाई ६६
८ कविताएं जन '६२ मुद्राराक्षस, पृ० २२

कविता' आदि आन्दोलनों का बोलबाला कुछ समय तक रहा, लेकिन अन्ततः सभी कविता-आन्दोलन नयी कविता में अन्तर्धान हो गये ।

विभिन्न कविता-आन्दोलनों के सन्दर्भ में नयी कविता की मूल्यगत उपलब्धियां और अभाव

नयी कविता के विरोध में या नयी कविता के सन्दर्भ मे जितने भी कविता-आन्दोलन उठे, अब उनका केवल ऐतिहासिक महत्व शेप रह गया है। वे सभी आन्दोलन किसी न किसी रूप में नयी कविता से ही जुडते गये । जो वरेण्य था, जो श्रेष्ठ और मानव-मूल्यों का हामी था, वह बचा रहा, शेप धीरे-धीरे मर गया । काव्य-आन्दोलनों ने आने वाली कविता के लिए भूमिका का निर्वाह किया है। किसी भी आन्दोलन की शुरुआत से पूर्व अब सोच-समझ की आवश्यकता हो गयी है । ये सभी आन्दोलन नयी कविता के ही 'आफ शूट्स' थे, कुछ हितकर, कुछ अहितकर, लेकिन अधिकांश केवल विरोध के लिए ।

नयी कविता की मूल्यगत उपलब्धियों को संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है—

- सामाजिक मूल्यों के क्षेत्र में नयी कविता ने यथार्थ जीवन को अभिव्यक्ति दी। सर्वहारा वर्ग तथा सामान्य वर्ग—दोनों वर्ग के मानव की संकुल अनुभूतियों को अभिव्यक्ति देते हुए नयी कविता ने रूढ़ि, आडम्बर और जर्जर मूल्यों का विरोध करते हुए प्रगतिशील दृष्टिकोण दिया तथा विभिन्न सामाजिक जीवन-सन्दर्भों का आधुनिक दृष्टि से मूल्यांकन किया। वैयक्तिक सत्यों, वैयक्तिक अनुभूतियों एवं वैयक्तिक हितों को स्वीकार करते हुए भी सामाजिक सत्यों तथा सामाजिक हितों की स्थापना की और समाज को किसी दर्शन के मोहरे के रूप मे नहीं देखा ।
- नैतिक मूल्यगत उपलब्धि के नाम पर नयी कविता ने मध्यकालीन नैतिक मूल्यों एवं नैतिक निषेधो को स्वीकार न करके नैतिकता को वृहद् मानवीय सत्यों के रूप में उद्घाटित किया । नैतिकता को सकीर्णता के घेरों से मुक्त करने का स्तुत्य प्रयास तथा उदार दृष्टि की स्थापना नयी कविता की उपलब्धि है ।
- राजनीतिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनो के पीछे अमानवीय दृष्टि पर नयी कविता ने व्यंग किया तथा मानव को राजनीति से ऊपर मानते हुए प्रचलित राजनीतिक मानों की उपेक्षा की । मानव-कल्याण तथा सामाजिक सदर्भों मे ही राजनीति को महत्वपूर्ण स्वीकार किया ।
- नयी कविता ने प्रगतिशीलता को महत्व देते हुए वर्तमान अर्थ-तंत्र पर गहरे आघात किए हैं । वर्तमान अर्थ-तंत्र को अमानवीय करार देते हुए

नयी कविता ऐसे अर्थ तन्त्र की कामना करती है, जो शोषण से रहित हो। अर्थ-तन्त्र मे पीडित पारिवारिकइकाइयो की पीडा की अभिव्यक्ति नई कविता इस उद्देश्य की ओर सकेत करती है।

- नयी कविता जर्जर सास्कृतिक एव दार्शनिक मूल्यो को स्वीकार नही करती। छायावादी अध्यात्मवाद तथा प्रगतिवाद मार्क्सवाद और हनुमान-सस्कृति को नयी कविता नकारती है। इसके स्थान पर वह सस्कृति और दर्शन का वैज्ञानिक आधार खोजती है। वह न तो 'मशीनी सस्कृति' को स्वीकार करती है तथा ना ही 'हिप्पी सस्कृति' को, बल्कि वह सस्कृति एव दर्शन को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर देती है।
- कविता का अन्यतम् मूल्य सौ दर्य है। नयी कविताका सौन्दर्य सुन्दर के साथ असु दर, शिव के साथ अशिव, हितकर के साथ अहितकर को भी स्वीकार करता है, क्योंकि उसकी दृष्टि मे दोनो सत्य यथार्थ और जीवन से सम्पृक्त हैं। शिल्प, बिम्ब और प्रतीक विधान के स्तरपर नई कविता ने नए बिम्बो और नये प्रतीको की खोज की है। उनमे वर्तमान जीवन और भोगे हुए क्षणो को देखा है।
- मानव मूल्यो की स्थापना नयी कविता की अन्यतम उपलब्धि है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, मानव स्वाभिमान और मानव-एकता तो पहले ही स्वीकृत मूल्य थे। इनके अतिरिक्त नयी कविता ने मानव-वशिष्ट्य, मानव निष्ठा तथा आत्म विश्वास आदि मानव-मूल्यो का भी प्रतिष्ठित किया। उन्हे सामाजिक सन्दर्भों से काटा नहीं, बल्कि सामाजिक संदर्भों से जोडकर ही उनको नये अर्थ दिए, नये आयाम उदघाटित किए।
- भोगे हुए यथार्थ, झेले हुए यथार्थ, प्रामाणिक अनुभूतियो के साथ-साथ सार्थक अनुभूतियो की अभिव्यजना नयी कविता की अन्य उपलब्धियां कही जा सकती हैं।

अभाव

अभाव के नाम पर नयी कविता पर लगाए गए आक्षेप हैं। और सबसे बडा आक्षेप है नयी कविता की दुरूहता को लेकर। इसके अतिरिक्त नये बिम्ब विधान नयी प्रतीक-योजना, नये सौंदर्य-बोध तथा नयी कविता की अतिशय वैयक्तिकता को लेकर उस पर आक्षेप लगाए गए हैं।

उत्तर मे कहा जा सकता है कि नयी कविता सन्दर्भ से कटने पर ही दुरूह होती है, दूसरे वर्तमान जीवन की सकुल एव दुरूह अनुभूतियों के कारण नयी कविता भी कही-कही दुरूह हो उठी है। यह दुरूहता शमशेर तथा मुक्तिबोध मे अत्यधिक है। अज्ञेय मे भी है, लेकिन उनमे सहजता भी है। सहजपन लिए हुए अन्य कवि सर्वेश्वर

रघुवीर सहाय, श्रीकान्त वर्मा, दिनकर सोनवलकर, धर्मवीर भारती, लक्ष्मीकांत वर्मा विजयदेव नारायण शाही तथा जगदीश गुप्त आदि हैं।

बदलते हुए परिवेश, जीवन-मूल्यों तथा साधन और उलझी हुई संवेदनाओं के कारण नये बिम्बों और प्रतीकों की आवश्यकता होती है। इसे एक वर्ग नयी कविता का अभाव मानता है तो दूसरा वर्ग इसे नयी कविता की शक्ति और सौन्दर्य मानता है। नयी कविता में निःसन्देह वैयक्तिकता है, लेकिन सामाजिकता भी तो है।

निष्कर्ष यह है कि अभावों के होते हुए भी नई कविता की मूल्यगत उपलब्धियां अधिक हैं और फिर नयी कविता एक विकसनशील धारा है। निकट भविष्य में इससे काफी सम्भावनाएं हैं।

□

परिशिष्ट

मूल्य-परिवर्तन का क्रम कभी नहीं रुकता। कभी परिवर्तन की गति धीमी होती है और कभी क्षिप्र तथा कभी मूल्य-परिवर्तन अचेतन-स्तर पर होता है और कभी चेतन स्तर पर। सन ६५ के आसपास और उसके बाद एक पीढ़ी और उभरती हुई दिखायी दे रही है। इनके लेखन को 'युवा लेखन', 'छात्र लेखन' और 'विश्वविद्यालयी लेखन' आदि नामों से अभिहित किया गया है, लेकिन इनकी कविताओं के अध्ययन से जो भाव-बोध और सौन्दर्य-बोध उभरता है, वह नयी कविता का ही सहज विकास प्रतीत होता है।

सन '७० मे सुखबीर सिंह के सम्पादन मे 'दिविक' का प्रकाशन हुआ, जिसमे पन्द्रह कवि सकलित हैं। इनके नाम है—कृष्ण कुराडिया, प्रताप सहगल, महेश मिश्र, मीरा अहलूवालिया, रामकुमार शर्मा, रमेश साही, रामसिंह, रमेश शर्मा, वीणा ठाकुर, सुरेश ऋतुपर्ण, सुरेश किसलय, शैलेन्द्र मेहता, उषा अग्रवाल गोविन्द नीराजन तथा सुखबीर सिंह। उसके बाद डा० सावित्री सिन्हा के सम्पादन मे 'मुट्ठियो म बन्द आकार' सकलन मे कुछ कवि प्रकाशित हुए, जिनमे 'दिविक के भी कुछ कवि सक-लित हैं। उसमे कुल पचपन उभरते हुए तरुण कवियो की कविताए सकलित हैं। इससे पूर्व दिल्ली विश्वविद्यालय से ही सम्बद्ध छ कवियत्रियो की कविताओ का सकलन छ × दस भी इसी शृखला की एक कडी है। इसम सकलित कवियत्रियो के नाम हैं—उषा, मजु किशोर, कानन, अचना सिन्हा, प्रमिला शर्मा तथा कृष्णा चतुर्वेदी, 'एक और तारसप्तक' मे सात नय कवि सकलित हैं। शम्भू प्रसाद श्रीवास्तव के सम्पादन मे इनका पकाशन हुआ है। ये कवि-नवल, उपल, माहेश्वर तिवारी नीलम राजकिशोर, दयानन्द श्रीवास्तव तथा किशन' 'सरोज' हैं। 'सदभ' मे चार कवि विनय, कृष्ण वात्स्यायन, कृष्णदत्त पालीवाल तथा देवेन्द्र उपाध्याय हैं। इसका सम्पादन विनय ने किया है। रमेश कौशिक के 'समीप और समीप', केदारनाथ कोमल के 'चौराहे पर' तथा देवेन्द्र उपाध्याय के 'अजनबी शहर म' आदि काव्य-सकलनो का भी इसी सदर्भ मे आकलन किया जा सकता है। छोटी पत्रिकाओ मे कुछ और नाम भी उभरते हुए दिखाई पडते हैं।

इन सभी कवियो ने अभी अपनी काव्य-यात्रा प्रारम्भ की है, अतः किसी के संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना सभव नही है। लेकिन इनकी कविताओ पर दृष्टि निक्षेप करने से कुछ सभावनाए और कुछ सकेत हाथ आते है।

नयी कविता के पूर्ववती कवियों ने इनके लिए भावभूमि तो तैयार कर ही दी है, फिर भी बदलते हुए मूल्य-प्रसंग मे यह कवि अपनी भूमिका का निर्वाह स्वयं करना चाहते है।

नयी कविता पर दुर्गंधता एव दुरूहता का आक्षेप लगाया जाता है, यह आक्षेप इन कवियों की कविताओं पर लगाना सम्भव प्रतीत नही होता, क्योकि सपाटबयानी इनकी कविताओं की विशेषता है। डा० नगेन्द्र ने इसे अनगढ़ता मानते हुए कहा है, 'इनके अनगढपन मे सौन्दर्य की गहरी छवियां भी झलक उठती है और इनकी गद्यात्मकता मे यत्र-तत्र भावना के निर्मल सकेत मिल जाते है।'[1] सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के मत मे इनकी 'कविताओ मे मजाव और कलात्मक उपलब्धि का न होना......इनकी शक्ति है।'[2] इनकी सपाटबयानी का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

मैंने जब भी
एक वृहत कैनवस पर
तुम्हें अंकित करना चाहा है
तब तब
एक विकृत चेहरा
इस बीच छप जाता है...
शायद
यह हमारे और तुम्हारे बीच का
सम्बन्ध दानव है।[3]

इसके अतिरिक्त देवेन्द्र उपाध्याय की 'मेरा गाव', रमेश कौशिक की 'शब्द' केदारनाथ कोमल की 'चौराहे पर', मंजु किशोर की 'हाशिया', नवल की 'आधी रात के बाद शहर' तथा प्रताप सहगल की कविताए 'तुम्ही बताओ' और 'होना न होना' आदि के नाम इस प्रसंग मे लिए जा सकते है।

दूसरी स्पष्ट विशिष्टता इन कवियो मे उभर कर यह आयी है कि इनमें कुण्ठाओं से मुक्त होने की अदम्य लालसा तथा भविष्य के प्रति आशा है। वे टूटते हुए भी कही जुड़ना चाहते है। अनास्थाशील होते हुए भी किसी ऐसे आधार की खोज करते है, जहा वे आस्था रख सकें। 'आज साहित्य निरन्तर अनुभव,

१. दिविक : डा० नगेन्द्र, फ्लैप पर सं० गुरुवीर सिंह।
२. दिविक : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, फ्लैप पर सं० गुरुवीर सिंह।
३. दिविक : कृष्ण कुरड़िया, पृ० १५ सं० गुरुवीर सिंह।

बोध चिन्तन आदि के स्तर पर अपने आस-पास के जटिल समाज से जुडने का प्रयत्न कर रहा है।"[1] यह जुडने के प्रयास के कारण ही 'नयी पीढी की रचना दृष्टि की प्रखरता ऐतिहासिक आवश्यकताओं के अनुकूल अपनी पुनर्रचना की क्षमता की तलाश'[2] करती है। प्रयागनारायण त्रिपाठी के मत से इन 'कविताओ मे आज के जीवन और अनुभूति के स्वस्थ स्वर हैं।"[3] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार इस कवि का लक्ष्य 'जीवन को गहराई से पकडना और उसे जडता से मुक्त कर चैतन्य की ओर ले जाना है।'[4] डा० सुरेश सिनहा के मत से ये कविताए आस्था और सकलन की कविताएँ हैं तथा 'इनमें नए मल्यो की मर्यादित प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।"[5] स्वय कवि इस ओर सचेत है और कुण्ठा से मुक्त होने की कामना करता है—

हम अतृप्त !
हमें तृप्ति दो
पूर्ण हमारी रति हो
हम कुंठित हैं
हमें मुक्ति दो
हम वंचित हैं
सहज प्राप्ति का हमें इष्ट दो।[6]

सामाजिक प्रतिबद्धता और ताजा अनुभूतियाँ इन कविताओ की एक और विशिष्टता है। इसे रेखांकित करते हुए डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कहना है—'ये कविताएँ हमारे वर्तमान समय की गति के अनुरूप हैं। इनमे युवा कवियो की सामाजिक प्रतिबद्धता बडे स्पष्ट रूप से उभरी है। अपने समय के बोध सकट एव मनुष्य-जीवन की विभिन्न विसगतियो को गहराई से पहचाना है और उन्हे यथार्थ परिवेश मे अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। ये काव्यानुभूतियाँ नई हैं और ताजेपन का आभास देती हैं।'[7]

मूल्य-प्रसग मे इन कवियो की उपलब्धि के नाम पर अभी कुछ भी कहना समीचीन प्रतीत नही होता, लेकिन सम्भावनाओ के नाम पर बहुत कुछ कहा जा सकता है। हिन्दी काव्यधारा का भविष्य इन उभरते हुए कवियो के हाथ मे है। इनकी अभी तक की प्रकाशित कविताए भावना तथा सरचना—दोनो स्तरो पर वृहद सम्भावनाओं को जन्म देती हैं।

---

१ मुट्ठियो मे बन्द आकार डा० सावित्री सिनहा, प० ३
२ एक सप्तक और स० शम्भूप्रसाद श्रीवास्तव 'जुडती हुई कडियां' से उद्धृत।
३ छ दस प्रयाग नारायण त्रिपाठी, फ्लैप पर
४ चौराहे पर 'भूमिका' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी।
५ दिविक डा० सुरेश सिनहा, फ्लैप पर 'स० सुखबीर सिंह'।
६ समीप और समीप रमेश कौशिक, पृ० ४१
७ दिविक डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, फ्लैप पर सं० सुखबीर सिंह।

सहायक ग्रन्थ सूची (हिन्दी)

आलोचना

१. अज्ञेय का रचना संसार : सं० डा० गंगाप्रसाद विमल
२. अशोक के फूल : हजारीप्रसाद द्विवेदी
३. आत्मनेपद : अज्ञेय
४. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण : डा० रमेशकुन्तल मेघ
५. आधुनिक परिवेश और नवलेखन : शिवप्रसाद सिंह
६. आधुनिक साहित्य : नन्ददुलारे वाजपेयी
७. आलवाल : अज्ञेय
८. आलोचक की आस्था : डा० नगेन्द्र
९. इतिहास और आलोचना : डा० नामवर सिंह
१०. एक साहित्यिक की डायरी : गजानन माधव मुक्तिबोध
११. कला विवेचन : डा० कुमार विमल
१२. काव्य-सिद्धान्त और सौंदर्य-शास्त्र : डा० जगदीश शर्मा
१३. कविता के नये प्रतिमान : डा० नामवर सिंह
१४. ज्ञान और सत् : यशदेव शल्य
१५. तारसप्तक भूमिकाएं और
१६. तीसरा सप्तक वक्तव्य : अज्ञेय (सं०)
१७. नयी कविता के प्रतिमान : लक्ष्मीकांत वर्मा
१८. नयी कविता : नये कवि : विश्वम्भर मानव
१९. नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबन्ध : गजानन माधव मुक्तिबोध
२०. नयी कविता के सात अध्याय : डा० देवेश ठाकुर
२१. नयी कविता, नयी आलोचना और कला : डा० कुमार विमल
२२. नयी कविता स्वरूप और समस्याएं : डा० जगदीश गुप्त
२३. नयी समीक्षा : नये संदर्भ : डा० नगेन्द्र

२४ नये प्रतिमान पुराने निकष — लक्ष्मीकांत वर्मा

२५ नए साहित्य का सौंदर्यशास्त्र — गजानन माधव मुक्तिबोध

२६ पश्यन्ती — डा० धर्मवीर भारती

२७ प्रतिक्रियाएँ — डा० देवराज

२८ प्रयोगवाद और नयी कविता — डा० शम्भूनाथ सिंह

२९ प्रयोगवादी काव्यधारा तथोक्त नयी कविता — डा० रमाशंकर तिवारी

३० फिलहाल — अशोक वाजपेयी

३१ भाषा और सम्वेदना — रामस्वरूप चतुर्वेदी

३२ मनोविश्लेषण — सिगमण्ड फ्रायड (अनु० देवेन्द्र कुमार)

३३ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य — स० गगाप्रसाद पाण्डेय

३४ मानव मूल्य और साहित्य — धर्मवीर भारती

३५ मुक्तिबोध का रचना ससार — स० डा० गगाप्रसाद विमल

३६ मूल्य और मीमांसा — कुमार विमल

३७ यौन विज्ञान — हैवलाक ऐलिस (अनु० मन्मथनाथ गुप्त)

३८ विवेक के रग — स० देवीशकर अवस्थी

३९ समकालीन हिन्दी कविता — रवीन्द्र भ्रमर

४० समस्या और समाधान — डा० नगेन्द्र

४१ साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य — डा० रघुवश

४२ साहित्य और उसके स्थायी मूल्य — डा० रामविलास शर्मा

४३ सौंदर्यशास्त्र के तत्व — डा० कुमार विमल

४४ हिंदी कविता तीन दशक — डा० रामदरश मिश्र

४५ हिंदी नवलेखन — रामस्वरूप चतुर्वेदी

४६ हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य — अज्ञेय

सस्कृत ग्रन्थ

१ काव्यालकार — भामह

२ काव्यालकार — रुद्रट

३ रसगगाधर — जगन्नाथ

अंग्रेजी

	Title		Author
1.	Adventures of Ideas	...	Alfred North Whitehead
2.	A Manual of Ethics	...	John S. Mackenzie
3.	A Short History of Ethics	...	Alasdair Macintyre
4.	An Introduction of Ethics	...	William Lillie
5.	Contemporary Philosophy	...	G E. Moore
6.	Constitution of India	...	Govt. Publication
7.	Constitution of India	...	Mangl Chandra Jain Kagzi
8.	Differentiations and Variations in Social Structures (Theories of Societies)	...	Talcott Parkson
9.	Ethics	...	Nicolai Hartmann
10.	Human Values & Varieties	...	Henery Osborn Taylor
11.	India, A Modern History	...	Percival Spear
12.	Industrial Change in India	...	Georg Rosene
13.	Impact of Assistance under P. L. 480 on Indian Economy	...	Nilkanth Nath and V. C. Patvardhan
14.	Key to Modern Poetry	...	Lawrence, Dusell
15.	Literary Criticism-A Short History	...	William K. Wimsatt. Jr. and Cleanth Brooks
16.	Man in the Modern world	...	Jullian Huxley

17 Marxism — Marx & Angels
18 My Picture of Free India — M K Gandhi
19 Outlines of the History of Ethics — Henny Sidgwick
20 Poetry and Anarchism .. — Hurbert Read
21 Practical Ethics — Viscount & Samuel
22 Rabindranath Tagore and Universal Humanism — Saumendranath Tagore
23 Selections fos Basic Readings in Marxism Leninism — Prepared by Polit Bureau, Communist Party of India (Marxist)
24 The Analysis of Value — Dewitt H Parker
25 The Methods of Ethics — Henry Sidgwick
26 The Philosophy of Humanism — Corliss Lamout
27 The Poetry of Ezra pound — Hugh kenner
28 The Psychology of Imagination — Jean Paul Satre translated by Bernard Fretchman
29 The Story of Philosophy — Will Durant

हिन्दी कोश

अंग्रेजी हिन्दी शब्द कोश (भाग १) — स० कामिक बुल्के
मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड) — स० डा० नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य कोश (भाग १) — स० धीरेन्द्र वर्मा

अंग्रेजी कोश

1 Chamber's Encyclopaedia, Vol IX Edition 1959
2 Encyclopaedia of Religion & Ethics, Vol IX — Edited by James Hastings, Edition 196

3. The Concise Oxford Dictionary — Edited by H. W. Fowler & F. G. Fowler (Fifth Edition)

4. Websceter's Third New International Dictionary, Vol. II (Edition 1959)

□

काव्य-संकलन

१ 'अ' से असभ्यता — दिनकर सोनवलकर

२ अकेले कण्ठ की पुकार — अजितकुमार

३ अजनबी शहर में — देवेन्द्र उपाध्याय

४ अन्धायुग — धर्मवीर भारती

५ अपनी शताब्दी के नाम — दूधनाथ सिंह

६ अर्द्ध शती — बालकृष्ण राव

७ अरी ओ करुणा प्रभामय — अज्ञेय

८ अतुकांत — लक्ष्मीकान्त वर्मा

९ अनुपस्थित लोग — भारतभूषण अग्रवाल

१० अभिव्यक्ति — स० रमेशकुन्तल मेघ, गंगाप्रसाद विमल

११ आग का आइना — केदारनाथ अग्रवाल

१२ आँगन के पार द्वार — अज्ञेय

१३ आत्मजयी — कुँवरनारायण

१४ आत्महत्या के विरुद्ध — रघुवीर सहाय

१५ आवाजों के घेरे — दुष्यन्त कुमार

१६ इन्द्रधनु रौंदे हुए ये — अज्ञेय

१७ इतिहास पुरुष तथा अन्य कविताएं — देवराज

१८ इतिहासहन्ता — जगदीश चतुर्वेदी

१९ एक उठा हुआ हाथ — भारतभूषण अग्रवाल

२० एक सप्तक और — स० शम्भूप्रसाद श्रीवास्तव

२१ ओ अप्रस्तुत मन — भारतभूषण अग्रवाल

२२ कनुप्रिया — धर्मवीर भारती

२३ कटी हुई यात्राओं के पक्ष — प्रताप सहगल (अप्रकाशित)

२४. कविताएं १९६३ ... सं० विश्वनाथ त्रिपाठी व अजितकुमार

२५. कविताएं १९६४ ... सं० विश्वनाथ त्रिपाठी व अजितकुमार

२६. काठ की घंटियां ... सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

२७. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ ... अज्ञेय

२८. कुछ कविताएं ... शमशेर बहादुर सिंह

२९. कुछ और कविताएं ... शमशेर बहादुर सिंह

३०. कितनी नावों में कितनी बार ... अज्ञेय

३१. खरी खोटी ... हरिश्चन्द्र 'निरंकुश

३२. खुले हुए आसमान के नीचे ... कीर्ति चौधरी

३३. गर्म हवाएं ... सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

३४. गीत-फरोश ... भवानीप्रसाद मिश्र

३५. चकित है दुःख ... भवानीप्रसाद मिश्र

३६. चक्रव्यूह ... कुंवर नारायण

३७. चांदनी चूनर ... शकुन्त माथुर

३८. चांद का मुंह टेढ़ा है ... गजानन माधव मुक्तिबोध

३९. चौसठ कविताएं ... इन्दु जैन

४०. चौराहे पर केदारनाथ कोमल

४१. छः+दस ... उषा, मंजु किशोर, कानन अर्चना सिन्हा, प्रमिला शर्मा तथा कृष्णा चतुर्वेदी,

४२. जख्म पर धूल ... मलयज

४३. जूझते हुए ... सुरेन्द्र तिवारी

४४. जो बंध नहीं सका ... गिरिजाकुमार माथुर

४५. तलघर ... प्रमोद सिन्हा

४६. तारसप्तक ... सं० अज्ञेय

४७. तीसरा अंधेरा ... कैलाश वाजपेयी

४८. तीसरा सप्तक ... सं० अज्ञेय

४९. दिनारंभ ... श्रीकांत वर्मा

५०. दिविक --- सं० सुखबीर सिंह

५१. दीवारों के खिलाफ ... दिनकर सोनवलकर, सत्यमोहन विट्ठलभाई पटेल

५२	दूसरा सप्तक	स० अज्ञेय
५३	देहात से हटकर	कैलाश वाजपेयी
५४	धूप के धान	गिरिजाकुमार माथुर
५५	नए शिशु का जन्म	श्यामसुन्दर घोष
५६	नाव के पाव	जगदीश गुप्त
५७	ठडा लोहा तथा अन्य कविताए	धर्मवीर भारती
५८	पक गई है धूप	रामदरश मिश्र
५९	पीढियो का दर्शक	दिनकर सोनवलकर
६०	पूर्वा	अज्ञेय
६१	बावरा अहेरी	अज्ञेय
६२	माया-दर्पण	श्रीकांत वर्मा
६३	मुट्ठियो म आकार	स० सावित्री सिन्हा
६४	य फूल नही	अजितकुमार
६५	रग ब्रह्म	डा० विनय
६६	रूपाम्बरा	सकलनकर्ता और सम्पादक स० ही० वात्स्यायन, सहायक सम्पादक सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
६७	विजय	गगाप्रसाद विमल, जगदीश चतुर्वेदी, परमार
६८	शहर अब भी सम्भावना है	अशोक वाजपेयी
६९	शिलापख चमकीले	गिरिजाकुमार माथुर
७०	शीत भीगा मोर	सुरेन्द्रपाल
७१	समुद्रफेन	कु० रमासिंह
७२	समीप और समीप	रमेश कौशिक
७३	सक्रात	कैलाश वाजपेयी
७४	सन्दर्भ	स० डा० विनय
७५	सशय की एक रात	नरेश मेहता
७६	सात गीत वर्ष	धर्मवीर भारती
७७	साठोत्तरी कविता	स० सलिल गुप्त
७८	सीढियो पर धूप मे	रघुवीर सहाय
७९	सुरग से लौटते हुए	दूधनाथ सिंह
८०	सूर्य का स्वागत	दुष्यन्त कुमार
८१	हरी घास पर क्षण भर	अज्ञेय
८२	हिमविद्ध	जगदीश गुप्त

नोट : प्रस्तुत अध्ययन में प्रायः सभी सहायक पुस्तकों के प्रथम संस्करण प्रयोग में लाए गए हैं। जिन पुस्तकों के किसी अन्य संस्करण का प्रयोग किया गया है, उनका निर्देश पाद-टिप्पणी में कर दिया गया है।

गद्य

१. नदी के द्वीप ... अज्ञेय
२. रंगभूमि ... प्रेमचन्द
३. सूरज का सातवा घोड़ा ... धर्मवीर भारती
४. शेखर : एक जीवनी ... अज्ञेय

□

पत्रिकाएं (हिन्दी)

१	अकविता	-	दिल्ली	२	अनास्था	-	दिल्ली
३	अनामिका	-	लखनऊ	४	आधार	-	बम्बई
५	आवेश	-	दिल्ली	६	आलोचना	-	दिल्ली
७	ओर	-	भरतपुर	८	उत्कप	-	लखनऊ
९	क ख ग	-	दिल्ली	१०	कल्पना	-	हैदराबाद
११	कृतिपरिचय	-	जबलपुर	१२	ज्ञानोदय	-	कलकत्ता
१३	तटस्थ	-	पिलानी	१४	दार्शनिक	-	दिल्ली
१५	दिशा	-	दिल्ली	१६	धर्मयुग	-	बम्बई
१७	नयी कविता	-		१८	नयी धारा	-	पटना
	अंक १ से ८	-	दिल्ली, प्रयाग			-	
१९	नये पत्ते	-	प्रयाग	२०	निकष	-	प्रयाग
२१	परिशोध	-	चण्डीगढ़	२२	बिन्दु	-	उदयपुर
२३	भारती	-	बडोदा	२४	मच	-	अम्बाला (छावनी)
२५	मधुमती	-	उदयपुर				
२६	माध्यम		प्रयाग	२७	युयुत्सा	-	कलकत्ता
२८	राष्ट्रवाणी	-	पूना	२९	लहर	-	अजमेर
३०	वातायन						कलकत्ता
३१	समवेत						
३२	हस						बनारस

अंग्रेजी (पत्रिका)

33	Enquiry	Delhi
34	Times Lit Sup	London